नवगीत विशेषांक

साक्षात्कार

संयुक्तांक : 505-506-507
जुलाई, अगस्त, सितम्बर, 2022

नवगीत विशेषांक

साक्षात्कार

डॉ. विकास दवे
सम्पादक

ISSN : 2456-1924

साक्षात्कार

जुलाई-अगस्त-सितम्बर, 2022
संयुक्तांक : 505-506-507

सम्पादकीय एवं ग्राहकीय पत्र-व्यवहार : निदेशक/सम्पादक, साहित्य अकादमी, संस्कृति भवन, बाणगंगा, भोपाल-462003

फ़ोन : 0755 - 2554782 (कार्यालय)

साक्षात्कार की प्रकाशनार्थ रचनाओं के लिए
email : sakshatkarnew@gmail.com पर मेल करें।

वार्षिक सहयोग राशि

व्यक्तिगत ग्राहकों के लिए : ₹ 250

संस्थाओं के लिए : ₹ 300

आजीवन : ₹ 3,000

यह अंक : ₹ 75 (रजिस्टर्ड डाक खर्च अतिरिक्त)

समस्त बैंक ड्रॉफ्ट/मनीआर्डर '**निदेशक, साहित्य अकादमी, भोपाल**' के नाम स्वीकार्य होंगे।

आवरण : अमरजीत कुमार

आकल्पन : राकेश सिंह

मुद्रण : मध्यप्रदेश माध्यम, अरेरा हिल्स, भोपाल

'साक्षात्कार' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार अपने हैं। सम्पादक या साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन का उनके विचार के प्रति सहमत होना आवश्यक नहीं है।

साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश का मासिक प्रकाशन

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

'नव' पर 'प्रगति' की कुंडली // 07

बातचीत

डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' से डॉ. विकास दवे की बातचीत // 09

चिन्तन

डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' भारतीयता का अभिनव स्वर नवगीत // 16

मधुकर अष्ठाना लोक जीवन की सांस्कृतिक अस्मिता लोकगीत और नवगीत // 24

डॉ. श्यामसनेही लाल शर्मा नवगीत की भाषा : सांस्कृतिक सन्दर्भ // 36

डॉ. शीला पाण्डेय नवगीतों में महिला नवगीतकारों के स्वर // 46

डॉ. भारतेन्दु मिश्र पास आती जा रही है जिन्दगी // 56

कृष्ण कुमार कनक हिन्दी नवगीत में लोकचेतना // 61

माणिक विश्वकर्मा 'नवरंग' मध्यप्रदेश के दिवंगत नवगीतकार // 65

डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' कुसुम-कोमलता से वज्र-कठोरता के गीत यात्री श्यामलाल शर्मा // 75

ब्रजनाथ श्रीवास्तव महेश अनघ : वक्त के दस्तावेजी गीतकर // 81

राजा अवस्थी आभासी दुनिया में नवगीत // 88

पूर्व पीठिका

माखनलाल चतुर्वेदी दूबों के दरबार में // 98

निराला आओ आओ // 98

केदारनाथ अग्रवाल नई जिन्दगी // 99

कालजयी स्वर

रामावतार त्यागी और मैं कैद हूँ // 100
डॉ. महेन्द्र भटनागर नवोन्मेष // 101
डॉ. शिव बहादुर सिंह भदौरिया नदी का बहना मुझमें हो // 102
डॉ. वीरेन्द्र मिश्र आखिरी साँस रात की // 103
उमाकान्त मालवीय वत्सल गंगा मइया // 104
डॉ. ठाकुर प्रसाद सिंह एक प्रहर // 105
देवेन्द्र कुमार बंगाली शामें अच्छी हों // 105
देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' कहो वासवदत्तिके // 106
डॉ. रवीन्द्र भ्रमर वंशी करो मुखर // 107
चन्द्रपाल शर्मा 'शीलेश' खाली हाथ // 108
नईम रह जाने को // 109
श्यामलाल 'शर्मा' शब्द // 110
चन्द्रसेन 'विराट' किरण के कशीदे // 111
अमरनाथ श्रीवास्तव मंजिल-दर-मंजिल // 112
रमेश रंजक अब की बरस // 113
शलभ श्रीरामसिंह शलभ गीत ही लिखो // 114
तारादत्त 'निर्विरोध' कडुवेपन में // 115
कुमार रवीन्द्र गीत गली के वासी // 116
ओम प्रभाकर सुबह हो गयी // 117
डॉ. कैलाश गौतम तोड़ते पत्थर // 118
डॉ. इसाक 'अश्क' जागते रहना // 119
गुरुदत्त अग्रवाल भोला बंजारा // 120
कुमार शिव ऐसा ही होता आया है // 121
डॉ. रामदरश मिश्र एक नीम मंजरी // 122

समकालीन स्वर

यतीन्द्रनाथ 'राही' जीवन // 123
डॉ. जीवन शुक्ल तुम पार करोगे // 124
सोम ठाकुर प्रश्न-वन के देवता // 125
सत्यनारायण आदिवासी // 126

किशोर काबरा चंदा की चिड़िया ने // 127
बालस्वरूप 'राही' गीत नया जन्मा // 128
मधुकर अष्ठाना दर्द के लम्बे सफर में // 129
डॉ. मधुसूदन साहा परदेशी दिन // 130
मयंक श्रीवास्तव हवा से कह दो // 131
राधेश्याम शुक्ल राम-जुहारी के // 132
आचार्य भगवत दुबे भूखे भील गये // 133
डॉ. शान्ति सुमन शहर की आँखें // 134
अनूप अशेष हाथ कटे हर बार // 135
नचिकेता गीत की जरूरत // 136
हृदयेश्वर गोपीचंदर // 137
सुभाष वसिष्ठ छलक गई धूप बूँद // 138
डॉ. वीरेन्द्र आस्तिक सैक्स उतर आया हिंसा पर // 139
विजय राठौर कुछ तो बोलें // 140
डॉ. योगेन्द्र दत्त शर्मा याद आया // 141
डॉ. ओम प्रकाश सिंह नदी चुपचाप है // 142
जगदीश पंकज सामने जब शव पड़े हों // 143
बृजनाथ श्रीवास्तव रिश्ते नदी नाव के // 144
दिनेश प्रभात और तुम्हारी अलग कहानी // 145
पूर्णिमा बर्मन कोयलिया बोली // 146
माणिक विश्वकर्मा 'नवरंग' चाँदी काट रहे हैं // 147
डॉ. श्यामसनेही लाल शर्मा बचपन का गाँव // 148
डॉ. सतीश चन्द्र शर्मा सुधांशु छाते तनावों के // 149
श्रीमती मधु प्रसाद चौमासा // 150
जय चक्रवर्ती न्यू-इण्डिया है ये // 151
रामकिशोर दाहिया मुँह में जमे दही // 152
शीला पांडे हम उजाले बेच आए // 153
राजकुमार महोबिया रेशे-रेशे लील गई // 154
डॉ. अरुण तिवारी भाइयो-बहनों! // 155
डॉ. अवनीश सिंह चौहान विज्ञापन की चकाचौंध // 156
संजीव वर्मा 'सलिल' नया लिखें // 157

विजय वागरी 'विजय' पश्चिम की आँधी // 158
नरेन्द्र दीपक दर्द नंगे पाँव // 159
सोनी सुगन्धा पश्चिम की आँधी // 160
डॉ. राज गोस्वामी सूरज को आने दो // 161

टटके स्वर

अनामिका सिंह 'अना' अम्मा की सुध आई // 162
राहुल शिवाय गुलाब का कलम // 163
रंजन कुमार झा हावी है बेचैनी // 164
गरिमा सक्सेना झूठी क्रांतियाँ // 165

दर्पण

डॉ. मंदाकिनी शर्मा नवगीत कोश // 166
राजा अवस्थी है छिपा सूरज कहाँ पर // 169
डॉ. इंदीवर पांडे सूरज है रूमाल में // 173
डॉ. मधुर नज्मी हिन्दी नवगीत का वर्तमान परिदृश्य // 177

समीक्षा

संजय सिंह यादव रूमान का प्रतिनिधि संकलन : मेंहदी और महावर // 180
डॉ. गंगाप्रसाद 'गुणशेखर' नवगीत वाङ्मय // 184

सम्पादकीय

'नव' पर 'प्रगति' की कुंडली

महाकवि निराला ने अपनी प्रख्यात सरस्वती वंदना में नवीनता के आव्हान के साथ एक अद्भुत प्रार्थना वीणापाणी के चरणों में की थी। 'वीणा वादिनी वर दे' शीर्षक इस रचना में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में रचना धर्मी क्या-क्या नव चाहता है, उसकी एक सुंदर रूपरेखा इस गीत में हमें दिखाई देती है। नव गति, नव लय, ताल छंद नव, नवल कंठ, नव जलद, नव युग, नव विहग वृंद, नव पर नव स्वर की याचना करती पंक्तियाँ इस नवीनता के साथ परंपरा के समन्वय का सुंदर प्रतीक बनकर उभरती है। किंतु दुर्भाग्य से साहित्य क्षेत्र में वामपंथी विचार ने एक नया शब्द गढ़ा 'प्रगति' और इस प्रगतिशीलता के नाम पर परंपराओं को लगातार पद दलित करने को ही 'नव' का पर्याय बनाने का कुचक्र रचा गया। इसकी शिकार साहित्य की लगभग सभी विधाएँ हुईं। नव, नवीनता और प्रगति एक-दूसरे का पर्याय बनकर तो उभरे पर इस प्रगति में परंपरा को एक खतरनाक वैचारिक सौतेलेपन और वैचारिक आतंकवाद का शिकार बनाया गया।

नवगीत परंपरा गीतिधारा के क्षेत्र में एक ऐसा अनूठा प्रयोग था जिसने छंदबद्ध रचनाकर्म के क्षेत्र में एक अनूठी क्रांति का सूत्रपात किया किंतु दुर्भाग्य से इस नवगीत को प्रगतिशील आंदोलन का प्रतीक बनाकर प्रस्तुत करने का बार-बार उपक्रम किया जाने लगा। गोबेल्स के सिद्धांत के अनुसार 'झूठ को जब बार-बार उच्च स्वर में मुखरित किया जाता है तो जगत उसे सत्य मानने लगता है'। यही कारण रहा कि नवगीत को प्रगतिशीलता का मुखौटा बनाकर लोग देखने लगे। भारतीय मनीषा और चिति को आधार बनाकर लेखन करने वाले देशभर के नवगीतकारों को यह आश्चर्य होता रहा कि आखिर नवगीत परंपरा को प्रगतिशीलता और वामपंथी विचार से जोड़कर इस तरह प्रस्तुत किया जाना आखिर कब तक चलता रहेगा?

वास्तविकता यह थी कि नवगीत के क्षेत्र में काम करने वाले सभी वरिष्ठ गीतकार विशुद्ध भारतीय सांस्कृतिक चेतना से ओतप्रोत गीत रच रहे थे। ऐसे में यह चिंता समकालीन नवगीतकारों में होना स्वाभाविक थी। इस दिशा में अनेक शोध कार्य भी संपन्न हुए और नवगीत पर केंद्रित अनेक ग्रंथों का संपादन भी देशभर में हुआ जो लगातार इस बात की पुष्टि करता रहा कि नवगीत विशुद्ध भारतीय सांस्कृतिक चेतना का प्रतीक था, है और रहेगा। इस क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण अवदान डॉ. रामसनेही लाल शर्मा यायावर ने दिया। वे लगातार भारतीय चेतना से ओतप्रोत नवगीतों की रचना तो करते ही रहे ऐसे सभी नवगीतकारों को एक जाजम पर भी एकत्र करने का उपक्रम करते रहे।

मेरे आग्रह पर उनके सहयोग से साक्षात्कार पत्रिका ने नवगीत का यह अनूठा विशेषांक तैयार किया है। इस विशेषांक में जहाँ चिंतन खंड में यायावर जी के साथ सर्व श्री मधुकर अस्थाना, डॉ. श्यामसनेही लाल शर्मा, डॉ. शीला पांडे, डॉ. भारतेंदु मिश्र, प्रिय अनुज श्री कृष्ण कुमार कनक, माणिक विश्वकर्मा जैसे रचनाकारों ने नवगीत की इसी चेतना को इस खंड में उतारने का प्रयास किया है। साथ ही ब्रजनाथ श्रीवास्तव और राजा अवस्थी जी ने भी अपनी लेखनी का प्रसाद इस खंड को दिया है।

पूर्व पीठिका खंड में नवगीत के पुरोधा रचनाकार और नींव के पत्थर रहे सर्वश्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री निराला जी और केदारनाथ जी अग्रवाल को रखकर हमने इस मजबूत नींव पर नवगीत का

सुंदर भवन खड़ा करने का प्रयास किया है।

दूसरा खंड कालजयी स्वर खंड है जिसमें सर्वश्री वीरेंद्र मिश्र, ठाकुर प्रसाद सिंह, देवेंद्र कुमार, चंद्रसेन विराट, शलभ जी, ओम प्रभाकर, कुमार शिव और डॉ. रामदरश मिश्र जी की पीढ़ी के उन पुरोधा रचनाकारों को सम्मिलित किया गया है जिनके नवगीतों ने सदैव भारत की आत्मा को जागृत करने का काम किया है। रामावतार त्यागी जी और महेंद्र भटनागर जी जैसे नवोन्मेषी नवगीतकारों ने इस खंड को चेतना प्रदान करने का काम किया है।

इन रचनाकारों की प्रेरणा से वर्तमान में हम सबको आशीर्वाद दे रही पीढ़ी और साथ ही इस आशीर्वाददाता पीढ़ी से स्नेह प्राप्त करते हुए पूरी की पूरी नवीन रचनाकार पीढ़ी जो नवगीतों में अपने हाथ आजमा रही है को भी स्थान दिया गया है।

समकालीन स्वर खंड में सर्वश्री यतींद्र नाथ राही, सोम ठाकुर, किशोर काबरा, बालस्वरूप राही, मयंक श्रीवास्तव, आचार्य भगवत दुबे, अनूप अशेष, ब्रजनाथ श्रीवास्तव, दिनेश प्रभात, शीला पांडे, नरेंद्र दीपक और सोनी सुगंधा जी जैसे वरिष्ठ नवगीतकारों ने अपनी लेखनी का प्रसाद प्रदान किया है।

नवोदित रचनाकारों को टटके स्वर खंड में स्थान प्राप्त हुआ है। सुश्री अनामिका सिंह, गरिमा सक्सेना, रंजन कुमार झा और राहुल शिवाय जैसे रचनाकारों को स्थान देना नई पीढ़ी द्वारा पिछली पीढ़ी को आश्वस्ति प्रदान करने जैसा है।

दर्पण खंड में हमने नवगीत के कुछ मील के पत्थर सिद्ध हुए ग्रंथों से पाठक वर्ग का परिचय कराने का प्रयास किया है। मेरा विश्वास है कि नवगीत विधा पर केंद्रित यह विशेषांक हिंदी साहित्य क्षेत्र में भारतीय मनीषा, चेतना और संस्कृतिनिष्ठ नवगीत लेखन करने वाले रचनाकारों को एक सांगठनिक शक्ति प्रदान करेगा। साथ ही यह विशेषांक उस विकृत विचार के ताबूत में अंतिम कील ठोकने का काम भी करेगा जो अब तक यह सिद्ध करता रहा है कि नवगीत प्रगतिशील वामपंथी विचार का प्रकट चेहरा है। मैं पूरी विनम्रता से इस अंक में संपादकीय सहयोग के लिए आदरणीय डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ कि उन्होंने मेरे साथ कंधे से कंधा मिलाकर इस उपक्रम को संपादित करने में श्रमसाध्य सहयोग प्रदान किया। मेरी अपेक्षा नवगीत रचने वाली नवीन पीढ़ी से भी है कि वे सब आगे आएँ और नवगीत विधा पर वैचारिक रूप से थोपे गए इस मुखोटे को उतार फेंके जो अब तक वामपंथ के नाम पर जबरदस्ती आरोपित किया गया है। नई पीढ़ी अपनी ऊर्जा का सदुपयोग करते हुए इस काम को निश्चित ही कर सकेगी। इस विश्वास के साथ यह नवगीत विशेषांक आप सबके हाथों में सौंप रहा हूँ।

आप सबकी सम्मतियाँ और प्रतिक्रियाएँ प्राप्त होने पर आगे भी इस प्रकार के वैचारिक यज्ञ संपन्न करने का साहस बना रहेगा। यायावर जी की तरह और भी मेरे साथ आते रहेंगे और नए विषयों पर कुछ अच्छे अंक आपको देने का प्रयास हम करते रहेंगे।

पुनः आप सबको प्रणाम सहित...

सदैव सा

-डॉ. विकास दवे

निदेशक एवं संपादक, साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश शासन, भोपाल

अपनी पत्रिका के शीर्षक के अनुरूप भारत भर के वरिष्ठ रचनाकारों से संवाद स्थापित करते हुए साक्षात्कार लेकर उनकी साहित्यिक यात्रा और रचना कर्म से अन्य रचनाकारों को परिचित करवाना यह इस स्तम्भ का मुख्य हेतु रहेगा। यूँ तो 'साक्षात्कार' पत्रिका अपने नाम के अनुरूप इस तरह के साक्षात्कारों का पहले भी प्रकाशन करती रही है किंतु इसमें एक प्रयोग प्रारंभ किया है। विगत दिनों भारतीय साहित्यिक पत्रकारिता के संदर्भ में एक पुस्तक पढ़ते हुए श्रद्धेय माखनलाल चतुर्वेदी जी और धर्मवीर भारती जी के संबंध में एक आलेख पढ़ते हुए यह ध्यान में आया था कि कोई भी साहित्यकार पत्रिका का संपादक बनते ही अपने आप को एक अलग पाले में खड़ा कर लेता है और रचनाकारों को दूसरे पाले में खड़ा कर देता है। यदि संपादक और रचनाधर्मियों के बीच सीधा संवाद स्थापित करने की सुचारू व्यवस्था बन जाए तो स्वाभाविक रूप से वह साहित्यिक पत्रिका साहित्यकार पाठकों के लिए भी अत्यंत आत्मीय हो जाती है। बस इसी बात को ध्यान में रखकर यह सोचा है कि पत्रिका में संपादकीय का आकार भले थोड़ा छोटा रहे किंतु मैं स्वयं चर्चा करके वरिष्ठ रचनाकारों के साक्षात्कार लूँ और उन्हें आप सबके समक्ष रखूँ। इस बहाने मेरा तो प्रशिक्षण होगा ही आप सब भी इन रचनाकारों के जीवनानुभवों से बहुत कुछ प्राप्त कर सकेंगे। इसी शृंखला में प्रस्तुत है यह साक्षात्कार। –सम्पादक

डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' से डॉ. विकास दवे की बातचीत

डॉ. विकास दवे : आपके जन्मस्थान का प्रारम्भिक परिवेश आपके रचनाकार के विकास में कितना सहायक रहा?

डॉ. यायावर : बन्धुवर! चूड़ियों और काँच के सामान के निर्माण के लिए विश्वविख्यात फिरोजाबाद नगर आज तो जनपद बन गया है परन्तु कभी यह आगरा जिले की तहसील हुआ करता था। इसी नगर के पश्चिम में 6 कि.मी. पर एक छोटा सा गाँव है तिलोकपुर, मेरा जन्म इसी गाँव में हुआ था। यह गाँव भी भारत के अन्य ग्रामों जैसा ही है। 27 दिसम्बर 1948 को स्वतन्त्र भारत में मेरा जन्म हुआ हालाँकि स्कूल में जन्मतिथि 5 जुलाई 1949 लिखी गयी। गाँव का वातावरण सौहार्दपूर्ण था। पिताजी स्वतन्त्रता सेनानी रहे थे। 14 वर्ष की अवस्था में सत्याग्रह में जेल गए थे। ब्रज के सभी सेनानी छोटी आयु के होने के कारण वृद्धावस्था तक उन्हें 'लला' का आत्मीय सम्बोधन देते थे। उन्होंने पहले भजन-गायन और फिर ढोला-गायन के द्वारा गाँव-गाँव घूमकर जन-जागरण किया था। केवल खादी पहनते थे। उनके पास अपना छोटा पुस्तकालय भी था। ढोला एक लोक महाकाव्य है जो चिकाड़ा (सारंगी की जाति का एक तन्तु वाद्य) ढोलक और मंजीरे या खंजरी पर गाया जाता है। पिताजी कभी-कभी घर पर रियाज भी करते थे। इसलिए लोकसंगीत और लोकधुनें मन में बस गयी। कक्षा 2 में ही पिताजी ने हमें और एक हमारे अग्रज चचेरे भाई को महाभारत की पूरी कथा सुना दी थी। वे उच्चकोटि के स्वाध्यायी थे। फीरोजाबाद के 1911 में स्थापित भारती भवन पुस्तकालय से चतुरसेन शास्त्री, वृन्दावन लाल वर्मा, प्रेमचन्द्र, शरदचन्द्र, गुरुदत्त आदि के उपन्यास और कहानियाँ लाया करते थे। उन्हें पढ़ने का व्यसन हमें कक्षा 2 से ही लग गया। हमारा प्राईमरी

स्कूल 3 किलोमीटर और जूनियर हाईस्कूल 5 किलोमीटर दूर था। पढ़ने पैदल ही जाते थे। उस समय के गुरुजन रात में स्कूल में रहकर अपने विद्यार्थियों को अतिरिक्त पढ़ाते थे। बदले में एक नया पैसा नहीं लेते थे। गाँव में सभी जातियों के लोग प्रेमपूर्वक रहते, त्यौहार मनाते और एक-दूसरे के सुख-दुख में सम्मिलित होते थे। पिताजी क्रान्तिकारी विचारों के थे उन दिनों ब्राह्मण अन्य जातियों के घर कच्चा भोजन (खीर, रोटी-दाल आदि) नहीं खाते थे परन्तु पिताजी खाते थे डंके की चोट पर। तो बन्धुवर जन्म स्थान और उसके परिवेश ने (1) स्वाध्याय का व्यसन (2) समाज की सभी इकाइयों को समान मानने की भावना (3) देशप्रेम (4) संगीत और साहित्य की समझ तथा (5) भारत के गौरवशाली अतीत को लेकर मन में गर्व ये 5 तत्व प्रदान कर दिए जो आगे चलकर सृजन की आधारभूमि बने।

डॉ. विकास दवे : आपका जीवन सरल सहज रहा या संघर्षपूर्ण, यदि संघर्षपूर्ण रहा तो संघर्ष कैसा रहा किस स्तर का रहा?

डॉ. यायावर : बेहद संघर्षपूर्ण जीवन रहा। आर्थिक कठिनाइयाँ सदा घेरे रहीं क्योंकि टयूशन न पढ़ाने व कवि सम्मेलनों में न जाने के दो व्रत ले रखे थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयं सेवक कक्षा 11 में ही बन गए थे। सो आदर्शवाद सदा सिर पर चढ़ा रहा। पारिवारिक सदस्यों : एक अनुज, अनुजा, तीन बेटियाँ और एक पुत्र सबको सर्वोच्च शिक्षा और परिवारिक संकटों से अकेले वेतन के बलपर जूझना था। भविष्य निधि से ऋण हमेशा लेते रहे और अन्य संसाधनों का दोहन भी करते रहे। परन्तु संकटों ने भी मन को दुर्बल नहीं बनाया। एक गीत लिखा था कभी-

छाती पर/ जमकर बैठे हैं/ कितने विंध्याचल/ माँ का दर्द/ पिता का गठिया/ पत्नी की खाँसी/ विदा बहिन की/ फीस पुत्र की/ लगा रही फाँसी/ छोटी सी पगार के सिर पर/ इतना बोझ लदा/ आधे महीने बाद/ कलेजे में होती हलचल।

यह स्वानुभूति का गीत है परन्तु फिर अगले एक दो दिन बाद ही एक और गीत लिखा-

''घायल है/ जिजीविषा रण में/ सपने हुए पराजित/ फिर भी/ हमने हारा नहीं युद्ध है''

यह अपने संकल्प का गीत है। प्रसन्नता का विषय यह है कि सेवा-मुक्ति के पहले तीन वर्ष तक चले जटिल संघर्ष के बाद आज परिवार के सभी सदस्य सर्वोच्च शिक्षित स्वाभिमानी, स्वावलम्बी और संस्कारवान है। संघर्ष का फल बहुत मीठा रहा।

पारिवारिक सदस्यों की लम्बी-लम्बी बीमारियाँ और दुख-दर्द तो आए और चले गए परन्तु अन्तिम परिणाम आनन्ददायक ही है।

डॉ. विकास दवे : जीवन-संघर्ष ने आपके रचनाकर्म को किस तरह और किस स्तर तक प्रभावित किया?

डॉ. यायावर : संघर्षों ने मेरी संकल्प शक्ति, साहस और जिजीविषा को सुदृढ़ किया। यह प्रवृत्ति मेरी रचनाओं में भी उभरी। मेरे नवगीतों में आपको जटिल से जटिल यथार्थ और विसंगतियों का चित्रण मिलेगा परन्तु अन्त में कोई आशावादी संदेश अवश्य होगा। 'हारो मत सोन हिरन, क्षिप्र आओ, गाण्डीव उठाओ, बुझी मशालें जला रहा हूँ, हारा नहीं युद्ध है, चिनगारी बो गयी दामिनी आदि नवगीतों के शीर्षक यह बताने के लिए पर्याप्त हैं कि मैं गीतों में या किसी प्रकार के छन्दोबद्ध काव्य में निराशा और असहायता

को नहीं उकेरता। ठेठ गाँव की किसी निर्धन परिवार की संघर्षशील महिला का चित्र मैंने एक गीत में प्रस्तुत किया है –

''थकना जाने कहाँ बतसिया/ फिरती रहे चकरघिन्नी सी/ चौका-चूल्हा, हार-खेत/ खलिहान-गृहस्थी/ सबको साधे/ पीरी फटने से पहले ही/ जागे दिन, जागे कर्मठता/ सबको राखे राम/ फलें-फूलें/ सबकी भागे परवशता/ सम्मन लेकर/ कभी न आयें/ किसी गेह/ सरकारी प्यादे।''

अपने तमाम कष्टों, संघर्षों और कठिनाइयों से जूझते हुए 'सबकी राखे राम' की यह लोकमंगल भावना ही मेरे काव्य का मूल स्वर है। मैं यथार्थ के नाम पर समाज को निराशा और गन्दगी परोसने का पक्षधर नहीं हूँ।

डॉ. विकास दवे : क्या आपके रचनाकर्म को गति देने में कुछ व्यक्तियों और संस्थाओं का योगदान भी रहा है?

डॉ. यायावर : पूज्य पिताश्री के अतिरिक्त मेरे काव्य और शिक्षक गुरु स्व. पूज्य डॉ. मक्खन लाल पाराशर और इण्टर के हिन्दी प्रवक्ता श्री राजाराम शर्मा की प्रेरणा मेरे सृजन को गति देने में सहायक रही। संस्थाओं में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, अखिल भारतीय साहित्य परिषद, मनीषा तथा सजल-सर्जना आदि संस्थाओं का योगदान भी विशेष रहा। मनीषा की स्थापना आपातकाल में फीरोजाबाद के हम युवाओं ने की थी। उसकी गोष्ठियाँ प्रतिमाह घरों पर होती थीं। हर गोष्ठी में नयी रचना पढ़ना अनिवार्य था। उससे रचनाशीलता में गति आयी। रचनाओं में सुधार हुआ। काव्य की सही समझ विकसित हुई। अ.भा. साहित्य परिषद की संगोष्ठियाँ हर बार एक नए विषय पर चिन्तन का अवसर देती हैं। इन सबसे रचनाशीलता गतिशील रहती है। आजकल हम नगर में अखिल भारतीय स्तर की संस्था प्रज्ञा हिन्दी सेवार्थ संस्थान ट्रस्ट चलाते हैं जिससे प्रतिवर्ष एक आयोजन में देश के 10-15 प्रदेशों के हिन्दी रचनाकारों को सम्मानित करते हैं। इसने और भी अनेक साहित्यिक अनुष्ठान किए हैं।

डॉ. विकास दवे : आपने ऐतिहासिक कथाकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री के कथा साहित्य पर शोधकार्य करके पी-एच.डी. की उपाधि पायी परन्तु डी.लिट्. के लिए आपने समकालीन गीतिकाव्य को चुना, यह दिशा परिवर्तन क्यों?

डॉ. यायावर : चतुरसेन शास्त्री के ऐतिहासिक उपन्यासों में भारत के गौरव का आख्यान है, ये मैंने बचपन में ही पढ़ लिए थे अत: उनका महत्त्व बचपन से ही मन पर छा गया था इसलिए ''आचार्य चतुरसेन शास्त्री के कथा साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि'' विषय पर शोधकार्य करके पी-एच.डी. की उपाधि पायी। डी.लिट् भी ''हिन्दी उपन्यासों में पुरैतिहासिक तत्व'' पर करना चाहता था परन्तु शोध-समिति ने विषय अस्वीकृत कर दिया। फिर एक मित्र के परामर्श पर 'समकालीन गीतिकाव्य : संवेदना और शिल्प' विषय दिया वह स्वीकृत हो गया। उस शोधकार्य ने नवगीत की समीक्षा में अच्छा स्थान पाया। नवगीत के छन्द-विधान पर मैंने ही पहली बार तात्विक चर्चा की थी। फिर जो एक बार गीत ने पकड़ा तो फिर उसने आज तक छोड़ा ही नहीं। सृजन में भी वह और समीक्षा में भी वही बना है।

डॉ. विकास दवे : आपकी सृजन-यात्रा किस प्रकार आगे बढ़ी? साधारणत: रचनाकारों को एक ही दिशा में बढ़ते देखा जाता है परन्तु आपका लेखन बहुआयामी है, यह कैसे सम्भव कर सके आप?

डॉ. यायावर : डॉ. साहब मेरी सृजन-यात्रा वक्रगति से इधर-उधर भटकते हुए, यायावरी करते हुए आगे बढ़ी। मैंने पहली कविता कक्षा 7 में पढ़ते समय लिखी। गणतन्त्र दिवस पर विद्यालय में उसे पढ़ा भी। फिर कुछ और कवितायें लिखीं। तभी 1962 में चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया। तब अपने गाँव की भजन-मण्डली के लिए देशभक्ति के कई भजन लिखे। फिर कक्षा 11 में पढ़ते समय कमिश्नरी स्तर पर इण्टर के विद्यार्थियों के मध्य होने वाली कहानी-प्रतियोगिता के लिए एक ऐतिहासिक कहानी लिखी ''रक्त की पुकार'' उसे द्वितीय स्थान मिल गया। अगले वर्ष इसी प्रतियोगिता में कहानी 'गद्दार' भेजी उसे प्रथम पुरस्कार मिल गया। फिर अनेक ऐसी ही ऐतिहासिक व सामाजिक कहानियाँ तथा आलेख लिखे। 1976 में मेरी लिखी कहानी 'विषकन्या' का हरियाणा भाषा विभाग द्वारा आयोजित अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ। विधिवत काव्य व गीत-लेखन एम.ए. में पढ़ते समय 1970 से प्रारम्भ हुआ। उसमें ब्रजभाषा के कवित्त, सवैये और गीत दोनों एक साथ लिखे जाने लगे। आगे चलकर तो दोहा, मुक्तक, सजल (गजल का हिन्दी विकल्प) कुण्डलिया, जनक, हाइकु आदि सभी में मेरी एकाधिक पुस्तकें आयीं। संगोष्ठियों और पत्रिकाओं के विशेषांकों की माँग पर अनेक विषयों पर शोधपरक आलेख भी लिखे गये। ब्रजभाषा में दो पुस्तकें और 5 संस्कृत काव्यों के काव्यानुवाद भी इसी क्रम में हुए। 'नवगीत कोश' सेवा-मुक्ति के बाद विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की 'एमेरिटस फैलोशिप' परियोजना के लिए 3 वर्ष के परिश्रम से तैयार हुआ जो अब 640 पृष्ठों की पुस्तक के रूप में छप चुका है। सब करने की शक्ति प्रभु देते रहें। और अभी न थका हूँ, न रुका हूँ, 'रिटायर्ड' हूँ, 'टायर्ड' बिल्कुल नहीं हूँ। कर्मरत रहते हुए ही विश्व से जाना चाहता हूँ। अभी बहुत कुछ करने को शेष है।

डॉ. विकास दवे : आपकी 50 मौलिक पुस्तकें प्रकाशित हैं, 140 पुस्तकों में आपकी लेखन सहभागिता है, 15-16 स्तरीय पुस्तकों का सम्पादन भी आपने किया है, विभिन्न संस्थाओं द्वारा आयोजित संगोष्ठियों तथा साहित्यिक आयोजनों में भी आपकी सक्रिय सहभागिता रहती है, यह सब कैसे सम्भव कर पाते हैं?

डॉ. यायावर : बन्धुवर! संघ ने एक शिक्षा दी है, निरन्तरता की। वही शिक्षा इतना सब कार्य सम्पन्न करने की क्षमता देती है। मैं आज भी प्रात:काल 3 बजे ब्राह्ममुहूर्त में बिस्तर छोड़ देता हूँ। 6 बजे तक स्वाध्याय या सृजन करता हूँ फिर दिन में भी एक या दो बार दो-दो घण्टे के लिए अपने व्यक्तिगत पुस्तकालय (लगभग 10 हजार पुस्तकों का) में कुर्सी पर बैठता हूँ। हर समय कुछ न कुछ नया करने की सोचता रहता हूँ अत: सब सम्पन्न हो जाता है। आपको एक विलक्षण सूचना दूँ। विद्वान साहित्य शिरोमणि डॉ. धर्मपाल मैनी के सम्पादन में एक अद्भुत विश्वकोश प्रकाशित हुआ है। यह है ''विश्व का प्रथम मानव मूल्यपरक शब्दावली का विश्वकोश'' 2290 पृष्ठों का यह विशालकाय ग्रन्थ 5 खण्डों में भारतीय संस्कृति संस्थान चण्डीगढ़ के लिए सरूप एण्ड सन्स, नयी दिल्ली 110002 से छपा है। इसमें 750 मानव मूल्यों पर विस्तार से चर्चा हुई है। इसे 131 लेखकों ने लिखा है। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इसके 7 मूल्यों पर मैंने भी लिखा है और 131 में एक लेखक मैं भी हूँ। यह सब निरन्तर कर्मरत रहने से सम्भव हुआ है। इस समय भी मेरी लिखी व सम्पादित 6 पुस्तकें प्रकाशन-प्रक्रिया में हैं।

डॉ. विकास दवे : आपने काव्य की अनेक छन्दोबद्ध विधाओं में लिखा है, परन्तु ऐसा लगता है

आपकी मुख्य और प्रिय विधा नवगीत है। इधर के कुछ वर्षों में आपने नवगीत की समीक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, इधर रुझान कैसे बढ़ा?

डॉ. यायावर : जी आपने बिल्कुल ठीक कहा मेरी सर्वाधिक प्रिय विधा गीत/नवगीत ही है। मेरे 9 नवगीत संग्रह प्रकाशित हैं। इसके अतिरिक्त अन्य विधाओं में लिखते समय भी मेरा गीतकार हावी रहता है अत: रचना का संरचनात्मक स्वरूप तो उसी विधा का रहता है परन्तु कहन या शैली नवगीत की हो जाती है उदाहरणार्थ –

''अब हरियाली का यहाँ, होगा नहीं विकास।
सावन ही पीने लगा, अब मरुथल की प्यास।।''

इस दोहे का तीसरा और चौथा चरण नवगीत के तेवर का है। इसी तरह –

''तू जब-जब आती है, मन में, पायल की छम-छम बजती है
कोई सुप्त कामना, होकर सजग उदासी को तजती है
कोई मधुर बाँसुरी भीतर से बाहर तक पड़े सुनाई
आतुर होकर प्रीति-राधिका, मधुरमिलन के हित सजती है।''

उपर्युक्त मुक्तक की संरचना, भाषा और 'कहन' पारम्परिक गीत की है। अर्थात् मैं किसी दूसरी गीतेतर छन्दोबद्ध रचना लिखता हूँ तो उस पर भी गीत या नवगीत का प्रभाव आ ही जाता है। अत: मैं मूलत: नवगीतकार ही हूँ। समीक्षा की दृष्टि से भी अब नवगीत को ही समृद्ध करने में लगा हूँ। नवगीत की समीक्षा के क्षेत्र में मेरी ये पुस्तकें आ गयी हैं –

1. समकालीन गीतिकाव्य : संवेदना और शिल्प : (डी. लिट् का शोध प्रबन्ध) (480 पृष्ठ) (1970-1995)
2. नवगीत : नए सन्दर्भ
3. नवगीत कोष (640 पृष्ठ)

इसके अलावा

1. नवगीत के सृजन-सारथी (प्रथम खण्ड)
2. नवगीत के सृजन सारथी (द्वितीय खण्ड)
3. आभासी दुनिया के नवगीत

ये तीन पुस्तकें मेरे द्वारा सम्पादित हैं। नवगीत के सृजन-सारथी के 5 या 6 खण्ड प्रस्तावित हैं। तृतीय खण्ड तो तैयार है। नवगीत कोष का द्वितीय खण्ड भी लगभग तैयार है। वस्तुत: नवगीत को अपने जन्मकाल से ही समीक्षकों और नई कविता के कवियों ने उपेक्षित किया। यहाँ तक कि आलोचना के लिए भी गीत या नवगीत का नाम नहीं लिया गया। यही नहीं जिस गीत की अस्मिता बचाने नवगीत मैदान में उतरा था उसके मंचीय गीतकार भी नवगीत की आलोचना करते रहे, आज तक भी करते हैं। मैं उसी अभाव की पूर्ति करने को कृतसंकल्प हूँ।

डॉ. विकास दवे : क्या आपके अपने नवगीतों पर शोधकार्य भी हुए हैं?

डॉ. यायावर : जी मेरे नवगीतों और गीतों पर कई लगभग पाँच शोधार्धियों ने कई विश्वविद्यालयों

में शोधकार्य किये हैं।

डॉ. विकास दवे : और नवगीतेतर काव्य पर भी हुए कुछ शोध?

डॉ. यायावर : सम्पूर्ण गीतेतर काव्य पर श्रीमती सपना दत्ता जो दिल्ली में रेलवे अधिकारी हैं वे मेरठ के किसी स्ववित्तपोषित विश्वविद्यालय से शोधकार्य (पी-एच.डी.) कर रहीं हैं। मेरे गद्य व समीक्षा लेखन पर अभी किसी ने शोध नहीं किया है।

डॉ. विकास दवे : ब्रजभाषा-लेखन और संस्कृत के महत्त्वपूर्ण काव्यों के काव्यानुवाद की ओर रुचि कैसे बढ़ी?

डॉ. यायावर : डॉ. साहब ब्रजभाषा तो माँ के दूध के साथ रक्त में घुली थी, वह तो मातृभाषा है। मैं ब्रजवासी और ब्रजभाषी हूँ। ब्रजभाषा 650 वर्ष तक सम्पूर्ण भारत की काव्यभाषा बनकर रही है। सूर से भी पहले गुजरात के नरसी मेहता, असम के शंकरदेव और सूर के बाद पंजाब के गुरु गोविन्द सिंह और महाराष्ट्र में भूषण ने इसे राष्ट्रीय काव्यभाषा का स्वरूप दे दिया था, यह सब तो बहुत बाद में जाना समझा। बस सूर और घनानन्द का काव्य पढ़कर ब्रज में लेखनी चल पड़ी। पहले कवित्त-सवैया लिखे फिर गीत और अभी सवैयों में भ्रमर गीत लिखा जिसके हर सवैये में लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग है।

संस्कृत ग्रन्थों के काव्यानुवाद की ओर मन वैसे ही चला गया। पहले गीता का दोहानुवाद किया फिर आदि शंकराचार्य के 'भजगोविन्दम्' का कुण्डलियाँ और गीत में अनुवाद किया फिर 6वीं शताब्दी के आलवार भक्त राजा कुलशेखर की 'मुकुन्दमाला', पण्डितराज जगन्नाथ की 'गंङ्गालहरी' तथा 'विष्णुसहस्रनाम' का गीता-अनुवाद किया। यह सब कैसे हो गया पता नहीं पर अनुवाद ठीक-ठाक बन पड़े हैं।

डॉ. विकास दवे : क्या आपकी कुछ रचनायें प्रकाशाधीन हैं या ऐसी हैं जिन्हें पूरा करना है अथवा मस्तिष्क में हैं परन्तु आकार नहीं ले पायीं हैं?

डॉ. यायावर : जी बहुत हैं। इन्हें तीन वर्गों में बाँट सकते हैं-

1. शीघ्र प्रकाश्य : पाण्डुलिपि तैयार है बस प्रकाशक के पास जानी हैं। यथा-महाभारत के 36 पात्रों के आत्मकथ्य के रूप में मुक्त छन्द में लिखी नूतन शैली की अखण्डित खण्ड काव्य-रचना 'अभिशापित द्विधाग्रस्त द्वापर।'

2. पूर्णता की प्रतीक्षा में : एक यात्रा-संस्मरण, एक व्यंग्य संग्रह, एक मुक्तक संग्रह, एक दोहा संग्रह, एक कुण्डलियाँ संग्रह तथा एक शोधपरक आलेखों का संग्रह। इसके अतिरिक्त नवगीतकोष का द्वितीयखण्ड तथा नवगीत के सृजन-सारथी भी इसी श्रेणी में आते हैं।

3. वे रचनायें जो मन में हैं, आकार नहीं ले पायीं, उनमें कच-देवयानी-शर्मिष्ठा के पौराणिक प्रसंग पर आधुनिक दृष्टि से गीतों में लिखा जाने वाला खण्डकाव्य सृजन की प्रतीक्षा में है। 10-12 गीत लिखे जा चुके हैं। राधा-कृष्ण के अन्तिम मिलन का प्रसंग भी ब्रजभाषा में लिखना है। कुछ क्रान्तिकारियों (अल्पचर्चित) व साहित्यकारों के प्रेरक प्रसंग भी सृजन की प्रतीक्षा में हैं।

डॉ. विकास दवे : आभासी दुनिया : फेसबुक, वाट्सअप, टिवटर आदि पर अक्सर घटिया लेखन दिखाई पड़ता है। क्या इस सोशल मीडिया ने सत्साहित्य के विकास में भी कुछ कार्य किया है?

आप इस दिशा में क्या सम्भावना देखते हैं?

डॉ. यायावर : अवश्य हो सकता है। यह सत्य है कि सोशल मीडिया पर कचरा बहुत आ रहा है। कुछ धूर्त लोग बड़े कवियों या लेखकों के नाम से अपनी अधकचरी रचनायें प्रेषित कर देते हैं परन्तु उत्तम साहित्य के विकास के लिए भी गम्भीर प्रयास हो रहे हैं। यथा वाट्सअप और अन्य सोशल मीडिया माध्यमों पर सजल सर्जना, सृजनिका, राष्ट्रीय तूलिका मंच, नवगीत की पाठशाला, गीत पहल, पूर्वाभास, गीत गोपाल, साहित्यिक संवाद, सजल सृजन म.प्र., नवगीत लोक, सजल सृजन छ.ग. अनुभूतियाँ, अभियान जबलपुर, अनंत आकाश, कलाकौशल, साहित्य संगम, साहित्य सृजन आदि बहुत अच्छा कार्य कर रहे हैं। इन पर अच्छा साहित्य भी पढ़ने को मिलता है और नवोदितों को मार्गदर्शन भी प्राप्त होता है। ये सभी बहुत श्रेष्ठ कार्य कर रहे हैं। आगे और भी प्रयास हो रहे हैं। मेरे सम्पादन में अभी एक पुस्तक 'आभासी दुनिया के नवगीत' श्वेतवर्णा प्रकाशन दिल्ली से आयी है, इसमें इनमें से अधिकांश पर आलेख हैं। इन क्षेत्रों में और भी कार्य की आवश्यकता है। यू-टयूब आदि पर अच्छे रचनाकार अपने वीडियो भी पोस्ट करने लगे हैं। इससे भी सत्साहित्य के प्रसार में सहायता मिल रही है।

डॉ. विकास दवे : आपकी सर्वश्रेष्ठ रचना कौन सी है?

डॉ. यायावर : बड़ा जटिल प्रश्न है पर मेरा उत्तर सरल है, वह अभी लिखी जानी है। यह प्रश्न अगर अन्तिम क्षण में भी कोई पूछेगा तो मेरा उत्तर यही होगा।

डॉ. विकास दवे : आपकी दीर्घकालिक साहित्य-साधना को देखते हुए उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने आपको साहित्य भूषण सम्मान दिया है। इसके अतिरिक्त मिलने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण सम्मानों के बारे में बताइये।

डॉ. यायावर : साहित्य भूषण के अतिरिक्त कुछ सम्मान मुझे उल्लेखनीय लगे हैं -

1. अखिल भारतीय साहित्य सभा नासिक ने मेरे निबन्ध संग्रह आधुनिकता का दर्पण पर 'साहित्य साधना सम्मान' दिया।
2. इण्डियन स्कूल मनामा बहरीन द्वारा प्रदत्त गेस्ट ऑफ ऑनर सम्मान।
3. हिन्दी साहित्य परिषद अहमदाबाद (गुजरात) द्वारा मेरे नवगीत संग्रह 'झील अनबुझी प्यास की' को प्रदत्त डॉ. रामेश्वर लाल खण्डेलवाल तरुण अ.भा. काव्य पुरस्कार।
4. इन्दिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय एवं रोमा विश्वविद्यालय द्वारा प्रदात्त 'साहित्य भारती'।
5. राष्ट्रधर्म (मासिक) द्वारा 'भारत का गौरवशाली अतीत' पुस्तक पर 'राष्ट्र धर्म गौरव' सम्मान।
6. साहित्य मण्डल श्रीनाथद्वारा द्वारा प्रदात्त 'ब्रजवाचस्पति' सम्मान।
7. 'कादम्बरी' जबलपुर द्वारा प्रदत्त 'वाङ्मयभूषण'।
8. हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयागराज द्वारा अपने 95वें स्थापना दिवस पर मार्च 2022 को दिया गया सम्मान।

इसके अतिरिक्त भी पचासों मिल चुके हैं परन्तु मुझे उल्लेखनीय यही लगे हैं।

सम्पर्क : *फिरोजाबाद-283203, मो. 9917796897*

डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'

भारतीयता का अभिनव स्वर : नवगीत

वेद में सृष्टि के रचनाकार को कवि कहा गया है और सृष्टि को उसका काव्य बताया गया है। भारतीय ऋषियों ने कवि को भी सृष्टा स्वीकारा है और काव्य-रचना के लिए कुछ स्थायी मूल्य निर्धारित किए गए हैं। इन स्थायी मूल्यों की छाया में युगानुकूल व्यवस्थायें बदलती रह सकती हैं परन्तु वे-स्थायी मूल्य नहीं बदलते। ये मूल्य हैं-

कवि को प्रजापति स्वीकारा गया है। यूनानी दार्शनिक प्लेटो और अरस्तू दोनों (गुरु-शिष्य) काव्य का अनुकरण करते हैं और अंग्रेजी का स्वच्छन्दतावादी कवि वड्र्सवर्थ शक्तिशाली भावनाओं का संयमित पुनः प्रस्तुतीकरण परन्तु भारतीय ऋषि उसे नूतन सृजन मानते हैं इसलिए स्पष्ट घोषित करते हैं-

'अपारे काव्य संसारे कविः रेकः प्रजापतिः।

यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।।' (ध्वन्यालोक आनन्दवर्धन -पृष्ठ-622)

(काव्य का संसार अपार है कवि एकमात्र उसका प्रजापति है। उसे जैसा संसार रुचता है, प्रिय लगता है, वह उसमें वैसा ही परिवर्तन कर लेता है।)

2. भारतीय मनीषा 'देवासुर संग्राम' या सत् और असत् के संघर्ष को शाश्वत मानती है परन्तु अन्तिम विजय सत् की ही होती है, यह हमारी बद्धमूल धारणा है। सत्यमेव जयते जैसी सूक्तियाँ तथा महाकाव्यों का सुखान्त इस तथ्य का ज्वलन्त प्रमाण है।

3 वियोगी होगा पहला कवि

आह से उपजा होगा गान

निकलकर नयनों से चुपचाप

बहीं होंगी कविता अनजान (सुमित्रानन्दन पंत)

सुमित्रानन्दन पन्त जी की इस उक्ति को सूक्ति की तरह प्रयोग कर कवि आँसू, पीड़ा और विरह को काव्य का मूलाधार बताने की भूल करते रहे हैं परन्तु यह भारतीय काव्य-दृष्टि नहीं है। भारतीय चिन्तन में काव्य के दो रूप हैं 1. लौकिक एवं 2. अलौकिक/लौकिक काव्य का प्रथम आदर्श वाल्मीकीय रामायण है। वाल्मीकि ने क्रौंचयुगल को कामक्रीड़ारत देखा और उनमें से एक को व्याध ने अपने बाण से बींधकर मार दिया। ऋषि की करुणा-विगलित उत्तप्त वाणी गूँज उठी-

माँ निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमा शाश्वती समा।

यत्क्रौञ्चमिथुनाम कमवधी काममोहितम्।। (रामायण वाल्मीकि (बालकाण्ड) 2/15)

(निषाद तुझे नित्य-निरन्तर कभी भी शांति न मिले, क्योंकि तूने इस क्रौंच के जोड़े में से एक की, जो काम से मोहित हो रहा था, बिना किसी अपराध के हत्या कर दी है।)

कवि की इस वाणी में न तो व्यक्तिगत वियोग है, न आँसू वरन् पक्ष की पीड़ा से उत्पन्न करुणा और उससे, अनुतप्त होकर प्रस्फुटित हुआ आक्रोश है। अगर केवल करुणा होती तो ऋषि आँसू बहाकर रह जाते, निषाद को शापित न करते फिर इसी अनुताप को उदात्तीकृत करते हुए वे नारद के आदेश पर धर्म के विग्रह आदर्श राम का चरित्र लिखकर रामायण का सृजन करते हैं। मध्यप्रदेश के ही एक ऊर्जस्वी नवगीतकार स्व. महेश अनघ ने अपने को आदिकवि वाल्मीकि की परम्परा से जोड़ते हुए कहा है-

दाग दगीले इस जीवन में/इतनी सी पुण्याई है/तीर बिंधे पंछी को देखा/तो रामायण गाई है-(फिर माँडी राँगोली-महेश अनघ-पृष्ठ -131)

स्पष्ट है कि लौकिक काव्य का स्वर करुणा और औदात्य का है। वह पर-पीड़ा को आदर्श के ऊर्ध्वशिखर तक ले जाने का विधान है। काम को राम तक पहुँचाने वाला ज्योति पथ है।

4. भारतीय चिन्तन में काव्य का दूसरा रूप अलौकिक है। इस काव्य का प्रकर्ष बिन्दु वेद हैं। वेद की ऋचाओं को ईश्वर की वाणी माना जाता है। जिन ऋषियों ने उन्हें रचा है वे इनके रचनाकार नहीं 'दृष्टा' कहे जाते हैं। वेदों में सबसे पुरातन ऋग्वेद है। ऋग्वेद का प्रारम्भ अग्नि सूक्त से होता है। अग्नि का एक नाम 'पावक' है। वह पवित्र करती है। उसकी लपटें सदा ऊर्ध्वगामी होती हैं। अर्थात् अलौकिक काव्य वही है जो मानव को पवित्र करें और उसके चरित्र को ऊँचा उठाये, इतना ऊँचा कि स्वर्ग के देवता तक उसको झुककर नमन करने लगें। ऋग्वेदिक ऋषि अग्नि की अर्चना करते हुए कहता है-

'उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोबावस्तर्धिया वयम्
नमो भरन्त एम सि - (ऋग्वेद (अग्नि सूक्त) - मं. अ. 1 सूक्त।)'

(हे अन्धकार को आलोकित करने वाले अग्नि हम विचारपूर्वक श्रद्धांजलि सहित प्रतिदिन तुम्हारे पास आते हैं)

यही नहीं दृष्टा ऋषि यह भी कहता है कि यज्ञ के शासक ऋत (प्रकृति के विधान) के दैदीप्यमान रक्षक अपने ही गृह में बढ़ने वाले हे अग्नि तुम हमारे लिए सुप्राप्य बनो, जैसे पिता अपने पुत्र के लिए होता है। तथा हमारे कल्याण के लिए हमारे साथ रहे हो। स्पष्ट है अन्धकार को आलोकित करने वाले, ऋत की रक्षा करने वाले, पिता के समान वात्सल्य भाव से सम्पन्न कल्याणकारी अग्नि की वन्दना करने वाला ऋषि 'पीड़ा' या 'आँसू' की वन्दना करने वाला कैसे हो सकता है?

पाश्चात्य काव्य-दर्शन में दुखान्तिकी (Tregedy) को महत्व दिया गया है। अरस्तू ने त्रासदी को करुणा तथा त्रास के उद्रेक द्वारा मनोविकारों का उचित विरेचन करने वाले' बताया है परन्तु भारतीय काव्य में कामदी (Comedy) को महत्त्वपूर्ण माना गया है। परन्तु यह सुखान्तिकी आनन्द में पर्यवसित होती है। गीता में काव्य को वाणी का तप कहा गया है और उसे 'अनुद्वेगकर' बताया गया है। कहा गया है-

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मय तप उच्यते। (गीता - 17/15)

(जो अनुद्वेगकारी, प्रिय, हितकारी, एवं यथार्थ भाषण है और जो स्वाध्याय का अभ्यास है, वह

नि:संदेह वाणी सम्बन्धी तय कहा जाता है)

काव्य संस्कृति का उद्घोषक, मूल्यों का रक्षक और सत्य को प्रतिष्ठित करने वाला होता है।

भारतीय काव्य शास्त्रीय चिन्तन काव्य को 'बहुजनहिताय' नहीं वरन् सर्वजनहिताय मानता है इस सर्वे भवन्तु सुखिन:, में जड़-चेतन तक सम्पूर्ण प्रकृति आ जाती है। यहाँ काव्य से 'सुर सरि सम सबकर हितहोई' की भावना रहती है।

भारतीय काव्य मूल्य और नवगीत - उपर्युक्त शाश्वत काव्य मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में नवगीत का मूल्यांकन करना उचित रहेगा। काव्य के लिए 'सत्यं शिवं सुन्दरं' के सिद्धान्त वाक्य की अवधारणा की गयी है। कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने इन तीनों को एक ही तत्व के विविध रूप माना है-

'वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप/हृदय में बनता प्रणय अपार
लोचनों में लावण्य अनूप/लोकसेवा में शिव अविकार।' (रश्मिबंध-सुमित्रानन्दन पंत - पृ. 57)

लोक मंगल की सर्वतोन्मुखी भावना से नवगीत अनुप्राणित है। इसीलिए नवगीतकार नि:संकोच कहता है-

सुनो बादल/सिन्धु को सूखी नदी तक ले चलो।
आग पीती/आम्रवन की मंजरी तक ले चलो,
है तुम्हारे पास अभिरत/सलिल, सुरधनु क्या नहीं
भरी अँजुरी को/पिपासित देहरी तक ले चलो।
दिये की खुशबू/अँधेरे किले में दम तोड़ती
रोशनी के सिलसिलों को/झोपड़ी तक ले चलो। (मैं शिखर पर हूँ-देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' पृ. -31 अनुभव प्रकाशन साहिबाबाद (गाजियाबाद)-2009)

नवगीत ने जब आकार लेना प्रारम्भ किया तो उसने किसी विदेशी आदर्श से प्रेरणा नहीं ली। नई कविता अस्तित्ववाद से प्रभावित थी और प्रतिवाद मार्क्सवाद का साहित्यिक संस्करण था। डॉ. हरवंशराय 'बच्चन' का हालावाद, उमर खैयाम का ही हिन्दी काव्य में पुन: प्रस्तुतीकरण था क्योंकि भारतीय काव्य मनीषा ने प्रारम्भ से ही मदिरा को काव्य का विषय नहीं बनाया, न मदिरा सम्बन्धी वस्तुओं को प्रतीक के रूप में अपनाया। हमारे यहाँ तो भक्त अपने आराध्य की भक्ति में ही तीक्ष्ण से तीक्ष्ण मदिरा से भी गहरा नशा पा जाते थे। भक्ति विह्वला मीरा का सार्वजनिक नृत्य इसका प्रमाण है। नवगीत ने ऋग्वेद काल से चली आ रही गीत परम्परा को ही नूतनता के साथ आगे बढ़ाया। कहा जा सकता है कि नवगीत ने पुरानी नींव पर नया निर्माण किया। दूसरे शब्दों में कहें तो 'गीत' वटवृक्ष है और नवगीत उसी की डालों से विकसित मूलवती शाखा। गीत के साथ नवगीत का सम्बन्ध जनक जन्य का है। वह अपनी तमाम नूतनता के साथ गीत से नाभि-नाल सम्बन्ध रखता है। प्रश्न उठता है गीत की सुदृढ़ और सुदीर्घ परम्परा में नवगीत ने क्या नया परिवर्तन किया। इसे देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के शब्दों में बड़ी आसानी से समझा जा सकता है-

'स्वप्नजीवी' गीत 'सत्यं वद'

आत्मने पद थे परस्मै पद हुए। (परस्मै पद-देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' पृ. -9 अनुभव प्रकाशन साहिबाबाद (गाजियाबाद) - 2018)

वस्तुत: गीत में परिवर्तन की आवश्यकता और उसकी आहट छायावाद काल में ही सुनाई पड़ने

लगी थी। निराला ने अपनी प्रसिद्ध सरस्वती वन्दना में 'नवगति नवलय ताल छन्द नव, नवल कण्ठ, नव जलद मन्द्ररव। 'नव नभ के नव विहग वृन्द को, नव पर नव स्वर दे।' कहकर नवता की बात कही ही थी और पन्त ने 'खुल गए छन्द के बन्ध। प्रास के रजतवाश, का उद्घोष किया था। यह नवता काव्य का अनिवार्य तत्व है। आचार्य भट्टतौत ने कवि-प्रतिभा को परिभाषित करते हुए कहा है। 'प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता' अर्थात् नए-नए अर्थों का उन्मीलन करने वाली प्रज्ञा ही प्रतिभा कहलाती है। आद्य शंकराचार्य ने अपने 'कृष्णष्टकम' में कृष्ण के सौंदर्य के लिए भी 'दिन-दिने नव नवं' कहा है- तो नवगीत की नवता यह थी कि अब तक जो गीत कल्पनाजीवी था, स्वप्नजीवी था, वह युग सत्य का उद्घाटन करने वाला हो गया। वह यथार्थजीवी होकर युग के यथार्थ को समग्र रूपेण वाणी देने लगा। दूसरी ओर उसने आत्मानुभूति के स्थान पर युगानुभूति को वाणी देना प्रारम्भ कर दिया। इस तथ्य को एक गीतांश के माध्यम से भली-भाँति समझा जा सकता है-

इसलिए गीत नवगीत हुआ/अपनी-अपनी कहते-कहते
जब सीखा जगबीती कहना/अपने आँसू ने सीख लिया
युग की पीड़ा पाकर बहना/भाषा विचलन की बहिन बनी
बनकर संवेदन की तनुजा/जब नवाचार ने सीख लिया
कुन्दन सी दाहकता सहना/ नंगे पाँवों पर्वत चढ़ना
जब हार-हारकर जीत हुआ/बस तभी गीत नवगीत हुआ। (मन पत्थर के- डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' पृष्ठ - 96)

भारतीय मनीषा ने परिवार को सदा बड़ा महत्व दिया है, क्योंकि परिवार ही हमें विश्व बन्धुत्व तक जुड़ने का संस्कार देता है। स्व. दीनदयाल उपाध्याय ने जिस 'एकात्म मानववाद' की अभिव्यंजना की है। उसमें परिवार को विशेष महत्व दिया गया है। हमारे यहाँ परिवार का विशेष महत्व है। व्यक्ति स्वातन्त्र्य की अवधारणा को हम अस्वीकार करते हैं। क्योंकि मनुष्य जन्म लेते ही कुछ सम्बन्धों से बँध जाता है। किसी का पुत्र, किसी का भाई, किसी का भतीजा बन जाता है। इन सबके हित-अहित उसके अपने हित अहित बन जाते हैं फिर क्रमशः नगर प्रान्त, देश, समग्र विश्व और सम्पूर्ण चराचर के साथ वह जुड़ जाता है। हम विश्व कल्याण की भावना यही से सीखते हैं। इसलिए नवगीत ने अपने जन्म काल से ही परिवार को अपनी संवेदना का अंग बनाया है। दुर्भाग्य से छायावाद के उपरान्त (प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नईकविता, हालावाद, माँसलवाद सब में) परिवार एक सिरे से उपेक्षित रहा परन्तु नवगीत ने परिवार को पूरी आत्मीयता के साथ अभिव्यत किया है। गुलाब सिंह, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' महेश अनघ, डॉ. ओमप्रकाश सिंह, मधुकर अष्ठाना आदि वरिष्ठ नवगीतकारों ने ही नहीं गरिमा सक्सेना, चित्रांश वाघमारे और अनामिका सिंह जैसे युवा नवगीतकारों ने भी परिवार की महत्ता को उकेरा है। महेश अनघ के एक गीत में देखें कि कैसे परिवार को सम्पूर्ण चराचर की संवेदनात्मक आत्मीयता से जोड़ा गया है -

'हौआ का डर है, द्वारे पर स्वस्तिक अंकित है
हाँ यह घर जीवित है
चौखट ऊपर छत्ते में आवास ततैया जी का

छत पर है जुगाड़ छिपकलियों की रोटी-भाजी का
गाभिन कुतिया ने कबाड़ में ठौर बुहार लिया है।
दादी ने बछड़े पर राई नौन उतार लिया है
जाग रही भगवती, प्रेत पीपल पर कीलित है
हाँ यह घर जीवित है। (कनबतियाँ-महेश अवद्य पृष्ठ - 40 अनुभव प्रकाशन साहिबाबाद (गाजियाबाद)

इस तरह गुलाब सिंह ने गाँव के एक सम्मिलित परिवार का अत्यन्त कोमल और प्रेमिल चित्र एक गीत में उकेरा है। डॉ. ओमप्रकाश सिंह ने 'बाबा ने रोपी फुलवारी पापा ने इसको सींचा' जैसी उक्तियों से परिवार की महत्ता को स्वर दिया है।

आज का जीवन अत्यन्त जटिल है। सत्य के हंस के उजले पंख दुर्दान्त दाहकता में झुलस गए हैं, मूल्य टूटे हैं या उनकी आवश्यकता को ही सिरे से नकारा जा रहा है। पर्यावरण प्रदूषित है। संस्कृति विकृति में बदल रही है। लोक मन में विकार घर करने लगे हैं। रावण शक्तिशाली होकर गरज रहा है। परन्तु नवगीतकार इस विद्रूपित और जटिल यथार्थ को स्वर देते हुए भी भयभीत नहीं। वह हर राक्षसी कुत्सा से लड़ने-जूझने को कृत संकल्प है और उसकी जिजीविषा अदम्य है। इसलिए कभी वह 'गूँज रही हैं। गुडाकेश ध्वनियाँ रजनीचर सावधान' (यायावर) कहकर आसुरी शक्तियों को ललकारता है और कभी 'आते हैं बारूद मुखी दो पाये हड़काना। लाना रे वृन्दावन मेरी वंशी तो लाना।' (महेश अनघ) जैसी उक्तियों से हिंसा की बर्बरता को धिक्कारते हुए वृन्दावन और वंशी के मधुरिम नाद की मीठी तान को जीवन का स्वर बताता है।

जब नवगीतकार कहता है-
'हम पत्थर बाँधकर कहता है परों से/निकले हैं/काँच के घरों से
ठिठके हर ध्रुवान्त यात्रा/हिम होगी आग
बिजलियों की/घनीभूत घटाटोपतम में
अँकरेगी रोशनी/दियों की/जनमेगी जीवन की भाषा
कुहरे में/धूप के स्वरों से। (मैं शिखर पर हूँ- देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' पृष्ठ - 25-26)

तो वह अपनी जीवन्तता और भारतीय मन की अदम्य जिजीविषा का उद्घोष ही कर रहा होता है। इसी तरह जब कोई ऊर्जास्वी नवगीतकार कहता है-

ये अँधेरे तो क्षणिक हैं/क्या उमर इनकी/अंजुरी में भर/कभी कोई किरण पीले
रोशनी/बस एक शाश्वत सत्य/जीवन का/प्राण में/अमरत्व का/बन स्रोत झरता है- (महाशोर के सन्नाटों में - यतीन्द्र नाथ राही पृ. - 47)

तो वह 'तमसो मा ज्योतिर्गमय, असतो या सदगमय:' और 'मृत्योरमा अमृतमगमय' के शाश्वत मन्त्रों का नवगीतीय अनुवाद ही कर रहा होता है।

नवगीतकारों का एक वर्ग सामाजिक संघर्ष वर्ग भेद और वर्णभेद के विद्रूपित यथार्थ को ही नवगीत का वास्तविक आधार मानता है और यथार्थ के इसी स्वार्थ लिप्त जटिल, विसंगत और कुटिल यथार्थ को नवगीत की वास्तविक संवेदना मानना व मनवाना चाहता है परन्तु यथार्थ का स्वरूप इतना इकहरा और एकरूपीय नहीं होता, न हो सकता है। इसे नवगीत के उदाहरणों से ही समझना अधिक युक्तिसंगत रहेगा।

आज सम्मिलित परिवार टूट रहे हैं, नौकरी या व्यवसाय के चक्कर में माता-पिता को सन्तानों से अलग रहना पड़ रहा है। वृद्धों की स्थिति पहले जैसी नहीं रही। जहाँ वे सम्मिलित परिवारों में रह रहे हैं, वहाँ भी वे उतने सम्मानित नहीं रहे, जितने की वे अपेक्षा करते थे। वृद्धों की इस पीड़ा का एक चित्र देखें -

'सेवा निवृत हुए/तभी से
हम हो गए बेगाने
घास फूस की, बनी मड़ैया
चित्त गिरी चौखाने
हर सुझाव को लोग, बीच में/'टाँग अड़ाना', समझें
हम फिर अपने से ही, उलझें/अपने से ही सुलझें
पत्नी कहती, दिल के रोगी/पुत्र कहे सठियाने।' (जो सहा सो कहा- श्यामलाल शर्मा- पृष्ठ - 89)

यह पीड़ा यथार्थ का एक रूप है परन्तु इसी प्रकार के परिवार का एक और यथार्थ भी है। परिवार सम्मिलित है। पुत्र और पुत्र वधू दोनों नौकरी करते हैं। घर में उनके जाने के बाद माँ-बाप अकेले रह जाते हैं। उनके लिए सर्वाधिक आनन्द के क्षण सन्ध्या के वे पल होते हैं जब पूरा परिवार बैठकर गपशप करते हुए चाय पीता है या शाम का भोजन साथ-साथ करता है।

'यज्ञ-धूम सी पावन घर में /बैठी है चुपचाप उदासी
ज्ञान पीटने गया सबेरे/लदा-फदा बस्ते से बचपन
हबड़-तबड़ में घनी व्यस्तता/लाद पीठ पर भागा यौवन
पीछे छूट गयी है छूट में/शुभकामना बाँटती खाँसी
साँझ ढले लौटी है हलचल/घर में आयीं थकी थकानें
अस्त-व्यस्त बस्ता/सूखा मुँह/थकन पसीना ओ मुस्कानें
चाय, चूय, किस्से-गप्पें, धुन/हँसी कहानी और उबासी
पाँव दबाता घूँघट गायब/पर आशीष वही अम्मा सी।' (झील अनबुझी प्यास की - डॉ रामसनेही लाल शर्मा यायावर पृ. - 113-114)

ये दोनों पारिवारिक चित्र अलग-अलग स्थितियों के हैं परन्तु दोनों ही चित्र यथार्थ हैं। एक नकारात्मक यथार्थ का चित्र है परन्तु दूसरा सकारात्मक और पारस्परिक प्रेम का/दोनों ही यथार्थ हैं, दोनों ही सत्य हैं।

आज के जीवन की एक जटिलता बढ़ता नगरीकरण, औद्योगीकरण तथा यांत्रिकीकरण भी है। मनुष्य की संवेदना चुक रही है। संवेदनहीनता व्यक्ति को आत्म केन्द्रित और स्वार्थी बना रही है। आदमी रोबोट बन रहा है। नवगीतकार इस जड़ता से चिन्तित है। इसीलिए वह व्यथित स्वर में पूछता है- 'रोबोटों की/इस दुनिया में, प्रेम/कथायें/पागल हो क्या?' (यायावर) परन्तु संवेदना और आज की विद्रूपता को रमेश रंजक ने अधिक सार्थक ढंग से उकेरा है-

'कौन है? संवेदना/कह दो अभी घर पर नहीं हूँ
कारखाने में बदन है/और मन बाजार में

साथ चलती ही नहीं/ अनुभूतियाँ व्यापार में

क्यों जगाती चेतना/मैं आज बिस्तर में नहीं हूँ' (काव्या -3 सम्पादक - हस्तीमल हस्ती पृ. - 04)

परन्तु आदमी की इस तमाम संवेदनहीनता के बीच जब नवगीतकार 'जली मिली केसर की क्यारी (कुमार रवीन्द्र) कह कर कश्मीर की दुर्दशा की चिंता करता है। 'विकृति संस्कृति को ललकारे/हर ओर क्षरण ही क्षरण बन्धु' (यायावर), कहकर संस्कृति के अपसंस्कृति में बदलते जाने पर चिन्ता प्रकट करता है या वसन्त का स्वागत करते हुए कहता है। 'भर दिए प्रकृति ने रीते घट/हँस उठे नदी के दोनों तट' (चन्द्रपाल शर्मा, शीलेश) अथवा 'जेठ की तपती दुपहरी/पेड़ पर चढ़ती उतरती/जा रही नन्हीं गिलहरी।' (योगेन्द्र दन्त शर्मा) कहकर गिलहरी की जिजीविषा को सराहता है तो नवगीतकार पर संवेदनहीनता का आरोप नहीं लगाया जा सकता। एक ध्यातव्य तथ्य यह भी है कि नवगीतकार यथार्थ के नाम पर केवल सत्ता, विरोध, सामाजिक विषमता, मूल्यहीनता, अनास्था, भटकन और अनस्तित्त्व जैसे विषम और विद्रूपित तथ्यों को ही चित्रित नहीं कर रहा, वह प्रारम्भ से ही सांस्कृतिक मूल्यों और राष्ट्रीय प्रतीकों की पावनता को चित्रित करने के प्रति भी सजग है। गंगा हमारा मान बिन्दु है। वह भारत की जीवन धारा है। वह केवल नदी नहीं सम्पूर्ण भारत की वात्सल्यमयी माँ है। नवगीतकार गंगा के इस पावन रूप को चित्रित करते हुए कहता है-

'गंगोत्री में पलना झूले/आगे चले/बिकइयाँ/भागीरथी घुटरुवन डोले/शैल-शिखर की छइयाँ/ ...भूखा कहीं देवव्रत टेरे/दूध भरी है छाती/दौड़ पड़ती ममता की मारी/तजकर संग-संगाती/गंगा नित्य रँभाती बढ़ती जैसे कपिला गइया/सारा देश क्षुधातुर बेटा/वत्सल गंगा मइया।' (एक चावल नेह रींधा - उमाकांता मालवीय - पृ. - 14-15)

गंगा की इस पावनता व वत्सल्यभाव का सम्बन्ध भारतीय संस्कृति के उदात्त पक्ष से है। नवगीतकार हर पल संस्कृति, पर्यावरण, जीवन मूल्य, राष्ट्रीयता और मानवता की रक्षा के प्रति सजग दिखाई पड़ता है। कभी वह स्वातन्त्र्योत्तर भारत में गाँवों की हरियाली को खोते जाने, वृक्षों की अन्धाधुन्ध कटान और चुनाव के नाम पर बढ़ते आपसी बैर-भाव को लेकर चिन्ता प्रकट करता है। कभी राजनीतिज्ञों के गिरते चरित्र को लेकर व्यथित और आक्रोशित होता है और कभी नदियों के सूखते जाने को लेकर पीड़ित हो उठता है। संस्कृति शब्द कृ धातु से निष्पन्न है। सम उपसर्गपूर्वक कृ धातु से भूषणभूत अर्थ में सुद् का आगम करके चिन्तन प्रत्यय करने से संस्कृति शब्द बनता है। इसका अर्थ है- भूषणभूत सम्यक कृति या चेष्टा ही संस्कृति कही जा सकती है। संस्कृति का विपरीतार्थक विकृति है। प्रकृति मध्यवर्ती है। वह सहज है इसे सरलता से एक उदाहरण से समझा जा सकता है। भूख लगने पर भोजन करना प्रकृति है और स्वयं भूखे होते हुए रन्तिदेव की तरह अपना भोजन दूसरे को खिला देना संस्कृति है। भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म इसी संस्कृति की रक्षा का उपदेश करता है। इसीलिए नवगीतकार बरगद के प्रतीक से इस संस्कृति की रक्षा का प्रयत्न करता दिखाई पड़ता है-

'इस बरगद की/शाखाएँ मत काटो/यह संस्कृति है/अतीत की खिड़की से/जो झाँक रही है। (तंग जड़ों होंगे अंकुर - 37 ओमप्रकाश सिंह पृ. - 51)

नवगीत आज की हर समस्या, हर उलझन और संस्कृति को आघात पहुँचाने वाले हर कुटिल प्रयास पर आघात करता है। बाजारीकरण, कम्प्यूटरीकरण वैश्वीकरण और अत्यधिक नगरीकरण का वह

विरोध करता है। क्योंकि नवगीतकार को लगता है कि इन सबके कारण लोक का सोंधापन और भोलापन खो रहा है जो हमारी संस्कृति का प्राणतत्व है, गाँव के व्यवसाय पर असर पड़ा है। कुम्हार, लुहार, धोबी सब प्रभावित हैं। अब पानी भी बोतलों में बिक रहा है। हल्दी, चन्दन, नीम, मेंहदी, महावर, सब बिक रहे हैं। कम्प्यूटर ने मानवीय संवेदनाओं को चर लिया है और ओवर ब्रिज के कारण लोक संस्कृति और खेतों का हरियालापन चला गया है। महेश अनघ इस स्थिति को स्वर देते हैं-

चलो अलविदा कहें/साँवरे हिरण चिरैया श्याम
अब क्या लौटेगा/मशीन के हाथों बिका गुलाम
रो ले संवेदना/कि तेरा नैहर छूट चला
कल से दरबारों में/खारिज होगी शकुन्तला
कीमत सहित छपा होगा/डिब्बे पर तेरा नाम - (कनबतियाँ-महेश अनघ-पृ. - 53)

इस यथार्थ चित्रण के बावजूद नवगीतकार अपनी संस्कृति, अपनी उदात्त परम्परा, अपने मूल्यों, अपने आदर्शों से जुड़ा रहता है। वह सदा इन सब तथ्यों को विविध प्रकार से प्रकट करता है। यथा

जो करे चिन्ता सदा/ छोटी इकाई की/ जिन्दगी के पाँव की/फटती बिंवाई की/हर सड़क हमको सुरक्षित/जिन्दगानी दे/ (मयंक श्रीवास्तव) या 'सर्वदा नूतन रहें हम/मूल्य का दीपक जलायें।' (मधुकर अष्ठाना) या हम जो सोचे/सबसे ऊपर देश रहे/कवि की वाणी में/अविरल संदेश रहे/तब समसो वह गीत/अन्यथा गच्चा है/(आँगन में कल्पवृक्ष-ऋषिकुमार मिश्र-पृष्ठ-66) या अँधेरे से गुजर कर गीत अरुणिम भोर तक आया (इंदिरा मोहन) या भारत मोह निशा से जागो/अब संग्राम करो ये पंक्तियाँ ऐसी हैं जिनमें अपनी संस्कृति अपने मूल्य और अपनी उदात्त परम्पराओं के प्रति नवगीतकारों के अतिरिक्त लगाव को प्रकट करती हैं। नवगीत में यथार्थ के केवल कुत्सित, विद्रूपित, असंगत, पारस्परिक संघर्ष को बढ़ाने वाले, वर्ग-संघर्ष, व वर्ष संघर्ष या जाति-संघर्ष को ही चित्रित करने के पक्षधर अपनी चिन्तन की आँखों पर किसी विशेष रंग का चश्मा लगाये हुए हैं। इनके पास निष्पक्ष और तटस्थ चिन्तन की दृष्टि नहीं है। ये सामाजिक घृणा और सांस्कृतिक प्रदूषण फैलाने वाले जीव हैं। ये सत्य को इकहरा और विरूपित ही देखना और दिखाना चाहते हैं परन्तु नवगीत ने सत्य के साथ शिव और सुन्दर की साधना का पथ न कल छोड़ा था, न आज छोड़ा है न आने वाले कल में छोड़ेगा। इसीलिए नवगीत ऐसे तमाम मंद दृष्टि वालों को उद्‌बोधित करते हुए कहते हैं-

'हमने देखा रोशनी में गंध है/सूर्य का लावा बरफ में बन्द है
चाँदनी इतनी हुई मैली नहीं है/जितनी आरोपों में नहलाई गई है।'

-(इक्कीस हस्ताक्षर मधुकर गौड़ पृ.-45)

आशय और सारांश मात्र यही है कि नवगीत गीत की परम्परा का नवीनतम संस्करण है, भारतीयता का आधुनिकतम स्वर है, संस्कृति का उदात्त लयात्मक स्वर है। सत्य, शिव और सुन्दर की आराधना है।

सम्पर्क : *फीरोजाबाद (उ.प्र.)*
मो. 9412316779

मधुकर अष्ठाना

लोक जीवन की सांस्कृतिक अस्मिता लोकगीत और नवगीत

किसी विशिष्ट समुदाय के जीवन जीने की कला, उसके पर्व-उत्सव, रीति-रिवाज, संस्कार, परम्परा और विशेष अवसरों पर गाये जाने वाले गीत आदि उस समुदाय की लोक संस्कृति का बोध कराते हैं। अनेक विद्वानों ने लोक-संस्कृति की परिभाषा अपने-अपने ढंग से की है किन्तु सबका गन्तव्य एक ही है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार - संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में - संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भविष्य का सर्वांगपूर्ण प्रकार है। दिनकर जी ने लिखा है- 'संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।'

डॉ. नगेन्द्र की दृष्टि में संस्कृति मानव जीवन की वह आत्मा है जहाँ उसके प्राकृत वाग-द्वेषों का परिमार्जन हो जाता है। प्रो. आबिद हुसेन के मत से संस्कृति किसी समाज में पाई जानेवाली उच्चतम मूल्यों की वह चेतना है जो सामाजिक, प्रथाओं, व्यक्तियों की चित्तवृत्तियों, भावनाओं, सामाजिक प्रथाओं, मनोवृत्तियों और आचरण के साथ-साथ उसके द्वारा भौतिक पदार्थों को विशिष्ट स्वरूप दिये जाने में अभिव्यक्त होती है।' डॉ.सम्पूर्णानन्द के मतानुसार- उस दृष्टिकोण को संस्कृति कहते हैं जिससे कोई एक समुदाय विशेष जीवन की विविध समस्याओं पर दृष्टिपात करता है। संस्कृति एक बहती धारा है जिसमें कुछ न कुछ नवीन अंश जुड़ता रहता है और कुछ विलुप्त भी होता रहता है : पंडित नेहरू संस्कृति का अर्थ मनुष्य का भीतरी विकास और उसकी उन्नति मानते हैं। श्री राजगोपालाचारी के दृष्टिकोण से भी - 'जाति अथवा राष्ट्र के शिष्ट पुरुषों के विचार, वाणी, एवं क्रिया का जो रूप व्याप्त रहता है, उसी का नाम संस्कृति है।' इस संबंध में विदेशी विद्वानों में भी व्यापक विचार-विमर्श हुआ है। इस क्रम में मैथ्यू आर्नाल्ड ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है- 'विश्व के सर्वोत्कृष्ट कथनों और विचारों के नाम को संस्कृति कहते हैं।' इस प्रकरण में विदेशी विद्वानों और भारतीय आचार्यों के विमर्श में स्पष्ट मतभेद दिखाई पड़ता है। जिस सीमा तक भारत में संस्कृति पर विचार किया गया है, उस सीमा तक विदेशी विद्वान पहुँच ही नहीं पाते हैं। दादा धर्माधिकारी ने संस्कृति के मूलतत्त्व को समझते हुए लिखा है कि - 'संस्कृति का वास्तविक अर्थ सामूहिक जीवन की साझेदारी के तौर-तरीकों से है। दूसरे के जीवन में शामिल होना और दूसरे को अपने जीवन में शामिल करना ही संस्कृति है।' 'संस्कृति की इस घुलनशीलता में ही वस्तुत: इच्छा, ज्ञान, क्रिया का त्रिपुट रहस्य और जीवन का त्रिताल चिन्तन है। यज्ञ के बिना समर्पण के बिना, कभी कोई सिद्धि नहीं है और इसी सत्य पर हमारी संस्कृति की रचना हुई है।' जो डॉ. सुरेश गौतम का यह कथन कि उन जीवन-मूल्यों की क्रियाशीलता का प्रतिबिम्ब संस्कृति में देखना है जो

हमारे जीवन की दिशा को चेतना प्रदान करती है। रवीन्द्र कवीन्द्र के शब्दों में 'सत्य अपने विरुद्ध एक आँधी पैदा कर देता है और यही आँधी उसके बीजों को दूर-दूर तक फैला देती है। संस्कृति की इन गूँज-बीजों का आन्तरिक रस ही हमारी लोक सम्पदा अर्थात् संस्कृति है जो भारतीय मानस में अलग-अलग रूपों में बीज बन कर अंकुरित होती है। परिवेश जन्म वैभिन्य के बावजूद उसका मूल स्वर आत्मा की संस्कृति अथवा जीवन मूल्यों से ही जुड़ा है।

डॉ. सुरेश गौतम ने अस्मिता शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि अस्मिता शब्द का अर्थ है पहचान जिसके लिये अंग्रेजी में (Identity) शब्द का प्रयोग किया जाता है और शब्दकोश के अनुसार किसी की सही पहचान के लिये बनाये गये मापदण्ड के सन्दर्भ में प्रयोग में लाया जाता है। व्यक्ति और राष्ट्र की पहचान उसकी संस्कृति से होती है लेकिन इसका अर्थ इतना ही नहीं है। यह शब्द बहुत व्यापक है। किसी की पहचान के लिये उसके अस्तित्व की उपस्थिति अनिवार्य होती है। अस्मिता-अस्तित्व के इस कलश दर्शन में अनेक महाबुद्धि समाये हैं जिनसे सकारात्मकता की अनेक दिशायें खुलती हैं। इस संसार में जो कुछ भी है, सबकी अस्मिता है, जैसे फूल की अस्मिता उसकी सुगन्ध में, जल की अस्मिता उसकी तरल आद्रता में वृक्षों की अस्मिता उसकी छाया और फल में, कूप की अस्मिता उसके जल में सूर्य की अस्मिता उसकी तेजस्विता में तो अग्नि की दाहकता में, पवन की अस्मिता उसकी शीतलता और संचरण में और चन्द्रमा की अस्मिता उसकी चाँदनी में होती है। इसी प्रकार संस्कृति की अस्मिता भी उसकी सृजनात्मकता में है। यद्यपि अस्मिता के अनेक आयाम हैं किन्तु स्थूल रूप से अस्मिता के अन्तर्गत मनुष्य के बाहर व्यापार उसकी क्रियाशीलता को दृष्टिगत रखना होगा। जिसमें उसकी दैहिक, वाचिक अभिव्यक्ति के साथ ही भौतिक चाकचिक्य, लक्ष्यों को प्राप्त करने की उत्कंठा, महत्त्वाकांक्षाओं का तापतप्त कठोर संसार, उन्नति प्रगति के खुले वातायन, उसकी पारिवारिक-सामाजिक प्रतिष्ठा आदि आते हैं।

इसी प्रकार साक्ष्य अस्मिता के अंतर्गत परम्परागत ऋषि चिन्तन और पुण्य कर्मों से जुड़ी है। इसके ऋषिवत आचरण में सत्य की प्रतिष्ठापना वसुधैव कुटुम्बकम की भावना, सर्वे भवन्तु सुखिनः की आवरणगत निष्ठा और वैचारिक मूल्यों की समृद्धि आदि सूक्ष्म अस्मिता के मापदण्ड हैं। यही मूल्य दृष्टि राष्ट्रीय चिंतन की आधार नींव है। भौगोलिक सीमायें, आर्थिक संसाधन, राष्ट्र का उन्नतिशीलता की ओर उन्मुख जीवन स्तर उसकी ऐतिहासिक समृद्धि, वैभवशाली अतीत, वर्तमान का यथार्थ और भविष्योन्मुखी अनुमिति-फलक आदि सभी कुछ राष्ट्र की स्थूल अस्मिता है तो उसकी सूक्ष्म अस्मिता के अंतर्गत चिन्तन की सौदार्य विचारणा, उसकी लचीली, उदार मूल्य धर्मी संस्कार-संस्कृति आदि आते हैं, संस्कृति और संस्कार ही समाज और राष्ट्र का प्राण-पंथ एवं रीढ़ है। कारण रूप अस्मिता का यह संस्कृति द्वारा, लोकपथ ही वस्तुतः आत्मपथ है जिसका निरन्तर मंथन लोक अस्मिता का वाचक और भारतीय अस्मिता का सूर्यधर्म है। कारण अस्मिता हल का अर्थ आत्मा है। इसका चिन्तन अर्थ यही है कि सारा ब्रह्माण्ड हृदय में सम्मिहित है। अज्ञानी मनुष्य यह नहीं समझ पाता कि प्रकाश का वास्तविक स्रोत उसकी आत्मा है। यही मनुष्य और राष्ट्र की कारण अस्मिता है। आत्म विचार, आत्ममंथन, आत्मसंघर्ष भारतीय संस्कृति के जीवन्त होने के सबसे प्रामाणिक साक्ष्य हैं क्योंकि आत्मान्वेषी ही इतिहास के धूल-धूसर में खोये हुए पथों का खननधर्मा होता है।

प्रत्येक क्षेत्र और प्रान्त में साहित्यिक भाषा से इतर लोक बोली अथवा गाँव की देशज भाषा होती है जिसे

शिक्षित या अशिक्षित दोनों बोलते हैं। उसी देशज भाषा में अशिक्षित लोग भी अपने दुख-सुख, पूर्व जन्म से मृत्यु तक के विभिन्न अवसरों पर अपना शोक या उल्लास व्यक्त करने के लिये परम्परागत रूप से प्रचलित गीत गाते हैं। प्राय: ऐसे रागिनियों पर आधारित ताल-वृक्ष से बँधे गीतों के रचनाकारों का पता नहीं होता है। ऐसे गाँवों में जहाँ सम्वेदना को व्यक्त करने का प्रबल सामर्थ्य होता है, वहीं प्रतिरोध और प्रतिकार की भी सशक्त अभिव्यक्ति होती है। यही लोक साहित्य है जो हर काल, स्थिति में प्रासंगिक रहा है। मानवीय संवेदनाओं का प्रस्फुटन, उसका निर्वहन तथा उसका निरन्तर संचार एक से दूसरी पीढ़ी में चलता रहता है। यह लोक साहित्य ही है। जिसकी अनुभूत बातें सम्पूर्ण सामाजिक जीवन में एक मत से स्वीकार कर ली जाती हैं। लोक साहित्य का यह स्वरूप राजनैतिक एवं सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों तक ही सीमित नहीं रहता अपितु जीवन के हर पहलू यथा-आर्थिक, धार्मिक, आध्यात्मिक पृष्ठभूमि को भी आगे लाता है। विदेशी शासन के शोषण-उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज उठाना, सामन्तशाही के खिलाफ जागरूकता लाकर आम जनता को लामबन्द करना, मानव समाज पर होने वाले अत्याचार के लिये जागरूक करना आदि जैसे प्रतिरोध एवं प्रतिकार के चेतनावादी कार्यों में भी, महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है और सदैव रही है। यही लोक साहित्य ही हमारी संस्कृति का दर्पण भी है जिससे किसी समुदाय की संस्कृति की अस्मिता का ज्ञान होता है। इसी से ज्ञात होता है कि हमारी मान्यतायें, परम्परायें और विश्वास क्या है? समय के लम्बे अन्तराल में यद्यपि इनमें परिवर्तन भी आता रहा है। नूतन संस्कृति की प्राण प्रतिष्ठा होती रही है फिर एक निरन्तर क्रम बना रहा है जो मौखिक इतिहास के रूप में जनमानस पर छाया रहा है। इसी साहित्य से क्रमश: हम सांस्कृतिक जीवन की झलक प्राप्त करते रहे हैं। जीवन मूल्यों तथा सामाजिक परम्पराओं से अनुस्यूत लोक साहित्य समय की धरोहर है तथा इसका मूल स्रोत हमारी संस्कृति है। स्वाभाविकता, स्वच्छन्दता सरलता और पवित्रता आदि संस्कृति की ही देन हैं जो हमें मर्यादा और बन्धनों में भी उन्मुक्त करती है। यदि इसकी अनदेखी कर साहित्य का सृजन किया जाये तो सांस्कृतिक चेतना के अभाव में वह निरर्थक सिद्ध होगा। इस क्रम में यह भी कहना आवश्यक होगा कि वर्तमान में जो लोक भाषा में साहित्य लिखा जा रहा है, वह लोक साहित्य की श्रेणी में नहीं आता है। लोक साहित्य परम्परागत रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानान्तरित होता रहता है और जिसके रचयिता का नाम अज्ञात होता है। प्राय: वर्तमान देशज भाषा के रचनाकार अपनी रचनाओं को लोक साहित्य समझने की गलती करते हैं।

वास्तव में लोक हमारे जीवन का महासागर है जिसमें भूत वर्तमान, भविष्य सभी कुछ संचित रहता है और किसी भी राष्ट्र की सांस्कृतिक मौलिकता का रस स्रोत लोक गीत ही होते हैं। भोली अलौकिक लोकवाणी में राष्ट्र की स्वायत्त सौन्दर्य भावना तथा जीवन की अकृत्रिम और मिट्टी की सुगन्ध लिये राष्ट्रीयता व्यक्त होती है। अत: यह कहना अनुचित नहीं होगा कि लोक गीतात्मक परम्परा दैनंदिन जीवन की सुगन्ध को सुरक्षित रखती है। यदि हम किसी राष्ट्र की अन्तर्भावना सिद्धान्त मूलक जीवन पद्धति का परिचय प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें इस लोकसंस्कृति को समझना होगा और हमें यह ज्ञान लोकगीतों तथा लोक कथाओं के माध्यम से प्राप्त होगा। कोई भी बाह्य प्रभाव लोकगीतात्मक संस्कृति को प्रभावित नहीं कर पाता जिससे लोकगीतों की रसात्यक्ता अक्षुण्ण रहती है। लोकगीतों की रसार्द्रता का अपना अलग ही आनन्द है। इनमें हमारा अतीत छिपा है। लोक गीतों में खाना-पीना, रहन-सहन, चाल-ढाल, व्यक्तिगत कुण्ठा, आशा-निराशा, प्रेम, सौन्दर्य, पारिवारिक और सामाजिक संबंध जैसे सास-ससुर, ननद, देवर,भाभी आदि का विचार मंथन,

अनुशासन और अतीत से चले आ रहे राग-द्वेष, नोंक-झोंक, रूठना-मानना आदि अनेक ऐसे जीवन-व्यापार समाहित हैं। इनमें लहलहाते श्वेत खलिहान, नदी-नाले, बावड़ी-पोखर, आदि की प्राकृतिक छट मन को प्रफुल्ल कर देती है। हमारे राष्ट्रीय पर्वों का वास्तविक रूप भी लोकगीतों में ही प्रकट होता है।

अतीत और वर्तमान के समस्त मानवीय कार्य-कलापों की धड़कन लोकगीतों में ही मुखरित होती है। सावन के झूले, दीवाली, होली, रक्षाबन्धन, तीज-त्योहार, दशहरा आदि की गमक इनमें समाई रहती है। सच कहिये तो लोक गीतों के द्वारा ही त्यौहारों ऋतुपर्वों और प्राकृतिक उपादानों की उत्फुल्लता प्रकट होती है। हम कह सकते हैं कि हमारे राष्ट्रीय-सांस्कृतिक बीज मूलों की परिपुष्ट परम्परा लोकगीतों में ही सन्निहित होती है। लोकगीत कभी न छीजने वाले रस के सोते हैं जिनकी स्वाभाविकता, सरसता, स्वच्छंदता तथा निर्बन्धता हृदय को आनन्दित कर जो प्रभाव उत्पन्न करती है, उससे कुण्ठाओं का रेचन भी होता है जो सामाजिक रूप से मर्यादा का अनुशासन बनाये रखता है। इस प्रकार लोकगीत कृत्रिमता के आवरण और कवच को तोड़ कर हमें स्वाभाविकता की शुद्ध हवा में प्रविष्ट कराते हैं जिससे आत्मशुद्धि होती है। हिन्दी के अधिकांश विद्वानों ने लोकगीतों को ग्राम गीतों की संज्ञा दी है। उनकी दृष्टि में ग्राम गीत प्रकृति के उद्‌गार हैं, इनमें अलंकार नहीं रस है, छन्द नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं माधुर्य है। शायद संगीत की महत्ता को वे भूल जाते हैं जिसमें लोकगीतों को ताल और वृत्त में बाँधा गया है। इनकी लय संगीत के रागों पर आधारित है। छंद अलंकार और कृत्रिम एवं बौद्धिक साहित्य की प्रवृत्तियों से दूर लोकगीत मानव प्रकृति के स्वत:स्फूर्त गान हैं जो गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्यन्त मानव जीवन को आवृत्त करते हैं। पाश्चात्य समीक्षकों ने इन्हें लोक निर्मित माना है और कुछ व्यक्ति निर्मित भी मानते हैं पर इसमें सभी एक मत हैं कि ये लोक निधि हैं। प्रसिद्ध यूरोपीय विद्वान गेटे ने लोकगीतों को उच्चकोटि की कविता मानते हुए इसे सत्य और वास्तविक कविता कहा है।

जीवन-मूल्यों तथा भारतीय समाज की परम्पराओं, रीतिरिवाजों, ऋतुओं, पर्वों और पारिवारिक संबंधों की पद्धति से जुड़ाव के कारण लोकसाहित्य समय भी धरोहर है तथा इसमें भारतीय संस्कृति की पहचान होती है क्योंकि स्वाभाविकता सरलता, स्वच्छन्दता और पवित्रता भी विचार धारा हमारी पावन संस्कृति की ही देन है। यह कोई प्रयोगवादी अल्पकालीन रचनाधर्मिता नहीं अपितु इसका स्वर और प्रभाव शाश्वत-चिरन्तन है जो किसी भी स्थिति में अप्रासंगिक नहीं होता। उसे मानव समाज अपने मस्तिष्क में पीढ़ी दर पीढ़ी सँजोये चला आ रहा है। राष्ट्रीय भावना के उन्नयन तथा प्रसार में भी इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसी भावधारा के फलस्वरूप भारतीय लोगों में हजारों वर्ष गुलामी में जकड़े रहने पर भी दासत्व का बीजारोपण नहीं हो सका और भारतीय मानसिकता में स्वतंत्रता के प्रति प्रबल आग्रह एवं उसके लिये संघर्ष निरन्तर जारी रहा। श्रीकृष्ण देव उपाध्याय ने लोकसाहित्य की व्यापकता को बताते हुए कहा है- गाँव के बड़े-बूढ़े जाड़े में आग के पास बैठकर कई तरह की कहानियाँ सुनाते रहे हैं। बूढ़ी नारियाँ तथा माताएँ बच्चों को सुलाने के लिये लोरियाँ तथा छोटी-छोटी धार्मिक-ऐतिहासिक कहानियों का प्रयोग करती रही हैं। आम जन के मनरंजन के लिये गाँवों में स्वाँग तथा नौटंकी आदि खेले जाते रहे हैं, जो लोकसाहित्य की श्रेणी में आते हैं। गाँवों में लोग दैनिन्दन जीवन में तरह-तरह की कहावतों, मुहावरों का प्रयोग करते रहे हैं- तथा घाघ-भड्डुरी की कहावतें आदि सभी कुछ लोक साहित्य की ही सम्पदा हैं।

त्यौहारों, ऋतुओं, उत्सवों, विभिन्न परिस्थितियों-अवसरों तथा संस्कारों पर गाये जाने वाले गीत आदि लोक साहित्य भी ही निधि हैं/अनेक मिथकों की उपज भी लोक साहित्य से ही हुई है। बालकों पर लोक साहित्य का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है जो उनके अवचेतन में संग्रहित होता रहता है जिसके कारण अनेक अर्थों में वे समर्थ हो जाते हैं और यह सम्पदा वे अपने बच्चों को सौंपते रहते हैं। इस प्रकार मानवीय संवेदनाओं का प्रस्फुटन, उसका निर्वहन तथा उनका सतत् संचार एक से दूसरी पीढ़ी में चलता रहता है। लोक साहित्य का अनुभवजन्य स्वरूप सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक जीवन मूल्यों तक ही सीमित नहीं रहा है बल्कि आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक पृष्ठभूमि को भी आगे तो जाता है। शोषण उत्पीड़न, जीवन-संघर्ष, हताशा-निराशा, विसंगति, विषमता, विघटन, विद्रूपता, विवशता, कुव्यवस्था आदि सभी मानवता के विरुद्ध अपकार्यों के विषय में भी लोकसाहित्य प्रतिरोध एवं प्रतिकार का वातावरण बनाने में अपनी सशक्त भूमिका का संज्ञान कराता रहा है।

लोकगीतों की शाश्वत सत्ता का व्यापक महत्त्व सभी दृष्टियों से अक्षुण्ण है। ऐतिहासिक दृष्टि हो या पौराणिक हो अथवा सांस्कृतिक, राजनीतिक हो या सामाजिक, भौगोलिक, आर्थिक, धार्मिक, भाषा तात्विक, मनोवैज्ञानिक, नैतिक आदि के परिप्रेक्ष्य में लोकगीत भारतीय मानस का गतिशील रक्त है। विदेशी लोग इस सम्बन्ध में दाँतों तले अँगुली दबाते हैं कि विभिन्न धर्मों-सम्प्रदायों, देवी-देवताओं, भाषा वैभिन्यता, जलवायु वैभिन्यता के होते हुए भी लोक-एकता के सूत्र में कैसे बँधे हैं। समस्त विभिन्नताओं के बावजूद लोक संवेदना एक ही है जो पूरे देश को बाँधे रहती है। सैकड़ों वर्षों की राजनीतिक दासता के बावजूद आर्थिक दृष्टि से विपन्न भारतीय इसी सर्वव्यापी चेतना के फलस्वरूप अपनी अस्मिता-वजूद को सँभाल कर रखे हुए हैं। यहाँ की लोक-संस्कृति, लोक-साहित्य और लोकगीतों ने भारतीय जनमानस में एकता की विचारधारा को जाग्रत रखा है। इसी प्रकाश सूत्र को थामकर जन-मानस अन्धकारपूर्ण मार्गों पर भी अपनी संस्कृति और अस्मिता की सुरक्षा में सन्नद्ध रहा है और तमाम तरह के तमसावृत्त परिस्थितियों में भी कभी परास्त नहीं हुआ, चरैवेति-चरैवेति की संस्कृति उसकी अस्मिता का जयघोष करती रही। लोकगीतों के माध्यम से राष्ट्रीय एकता का संदेश जन-जन तक पहुँचता रहा। जिस समय विदेशी आत्याचारी शासन भारतीय जनता पर तरह-तरह के जुल्म और दमन करती रही थी, उस समय भी लोकगीतों में निहित भारतीय-भावना के ज्वार ने राष्ट्रीय अस्मिता के नये अध्यायों की रचना की, जिससे उद्‌भूत मन के आलोक ने किसी प्रकार भी भारतीयों की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना की जीवन्तता का क्षय नहीं होने दिया, अपितु उसे भीतर से रचनात्मक अग्नि बना कर स्वतंत्रता संग्राम को पूरी शक्ति से लड़ने की प्रेरणा दी-

'गंगा अ जमनवाँ की धार, नयनवाँ से नीर बही
फूटल ब देसवा क भाग, भारत माता रोय रही'

राष्ट्र गौरव और राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत सैकड़ों लोकगीत, लोक कथायें विद्यमान हैं जो हमारी धरोहर तो हैं ही, प्रेरक भी हैं। ये लोकगीत अपनी प्रवृत्ति के अनुसार प्रतिरोध और प्रतिकार की भूमिका भी रचते हैं, संवेदित भी करते हैं और इतना ही नहीं, समस्त साहित्यिक सृजन का मार्ग दर्शन भी करते हैं, हमारी चेतना को झकझोरते हैं और तदनुकूल आचरण की प्रेरणा भी देते हैं।

अंग्रेजों ने सैकड़ों वर्ष पूर्ण भारत के गरीब किसान मजदूरों को खाली और वीरान पड़े टापुओं पर

खेती करने के लिये विदेश भेजा था जिन्हें गिरमिटिया कहा जाता था, ऐसे गिरमिटिया मजदूरों ने ही मॉरीशस, ट्रिनीडाड सूरीनाम आदि रिक्त और वीरान टापुओं को बसाया जिनके बिछड़ने की वेदना निम्नांकित लोकगीत में मुखर हुई है-

'रेलिया न बैरी, जहजिया न बैरी
ई पईसवा बैरी हो
देसवा-देसवा भरमावैला
पईसवा बैरी हो,
सेर भर गोहुवाँ बरिस भर खइबै
पिया के जाये ना देबै हो
रखबै अँखिया के हजूखाँ
पिया के जाये ना देबै हो।'

लोकगीतों में रसराज श्रृंगार तो भरा पड़ा है जिनमें व्यंजना भी है। इनमें अभिधात्मकता का ही समावेश नहीं होता और रसोद्रेक में तो नगरीय साहित्य इनके समक्ष घुटने टेक देता है। ऐसे लोकगीत जनमानस में बसे हुए हैं और हमारी रागात्मक अन्तश्चेतना को हजारों वर्षों से संजीवनी दे रहे हैं-

'लोटवा क पनियाँ, कुरुइया क दनवाँ
तनि छहाँई लेता ना
हमरे झुलनी की छहियाँ
तनि छहाँई लेता ना।'

नायिका का विवाह तो हो चुका है, गवना भी आ चुका है किन्तु घर पर पत्नी को छोड़कर परदेस रोटी-रोजी के लिये चला गया है। प्रस्तुत लोकगीत में नायिका की विरह वेदना तो है ही, गरीबी की भी पीड़ा है-

'गवना कराई सैंया घर बइठइले से
अपने लो भइले परदेस रे बिदेसिया
चढ़ली जवनियाँ बैरन भइलीं हमरा से
के भोर हरि हैं कलेस रे बिदेसिया।'

लोकगीतों की विशिष्ट धुनें जो संगीत के ताल वृत्त से बँधी होती है, सैकड़ों की संख्या में उपलब्ध हैं। संस्कारगीत, मंगलगीत, जाँते का गीत, कूटिया का गीत, सोहर, भजन, श्रृंगार और प्रेम संबंधी गीत, भक्ति रस के गीत आदि जो बिरहा, कहरवा, आल्हा, बिदेसिया, लाँगुरिया, कजली, चइता, छट पूजा के गीत आदि ग्राम्य-संस्कृति के साथ ही व्यवस्था के सभी पक्षों को उजागर करते हैं- यहाँ एक सोहर बानगी हेतु प्रस्तुत है-

'कोसिला के गोदिया में राम, कन्हैया जसोदा के हो
रामा साँवर बरन भगवान, तं पिरकी के भार हरलें हो
जननी के कोखिया में मोती, तिलक, लाल, देस बन्धू हो
रामा गाँधी बाबा, बल्लभ, जवाहिर तड़
देसवा के भाग जागल हो।'

लोकगीतों में निर्गुण की भी प्रधानता रही है जिसे कबीर, दरियादास, धरनी दास, टेकमन राम आदि ने शब्द दिये हैं, जो जन-मानस में सदियों से रचे बसे हैं। कबीर द्वारा कहा गया लोकगीत - 'कौनों ठगवा नगरिया लूटल हो' आदि ऐसे गीत हैं जो ईश्वर-जीव-जगत-माया आदि को रूपक के माध्यम से व्यक्त करते हैं, जिनका अर्थ प्रायः विद्वान भी नहीं लगा पाते हैं किन्तु ग्रामीण उसे भलीभाँति समझ लेते हैं। ये गीत निर्गुण भक्ति के साथ ही सामाजिक समता की संस्कृति का भी उद्घोष करते हैं जो ग्राम्य जीवन में लोकप्रिय हैं। इस संदर्भ में कबीर, सूर, तुलसी के साथ ही ऐसे भक्त कवियों का प्रमुख योगदान है जो ग्राम्य जीवन से जुड़े रहे हैं। ऐसे प्रतीक और रूपक में बँधे लोकगीत हमारी संस्कृति को अक्षुण्ण रखने के प्रमुख स्रोत हैं और समाज की धरोहर हैं, जिन्हें सुरक्षित किया जाना नितान्त आवश्यक है।

लोकगीत के बरक्स नवगीत छान्दोग्य मनीषा का अमृत-कलश है, जो रस से सर्वदा परिपूर्ण रहता है। 'तत त्वम पूषन्न पावृणु' कहने वाला मंत्र दृष्टा ऋषि, मंत्र सृष्टा कवि की भाँति ऋतम्भरा प्रज्ञा से युक्त रहा होगा क्योंकि ऋतु को समझे बिना सत्य में प्रवेश सम्भव नहीं है। आचार्य भरत मुनि ने रस सिद्धान्त की अपने नाट्य शास्त्र में स्थापना की और रामचन्द्र शुक्ल ने तो रस को काव्य की आत्मा कहा है। उनके अनुसार रस विहीन काव्य आत्मारहित निष्प्राण होने के साथ ही अपठनीय होता है। इसीलिये प्राचीन युग में रस को महत्त्वपूर्ण स्थान, विभाग दिया गया। 'रसः वै सः' अर्थात् रस ही ब्रह्मा है। रस की सृष्टि करने वाले कवियों को 'अपारे काव्य संसारे कविरेव प्रजापतिः' के अनुसार ब्रह्मा के ही समान प्रतिष्ठा दी। यह संज्ञा देने के पीछे मन्तव्य यही है कि कवि कर्म बहुत कठिन है और कवि बनने से पूर्व व्यापक अध्ययन और साधना की आवश्यकता होती है। कवि जो लिखता है उसका प्रभाव पूरे समाज पर पड़ता है अतः उसका उत्तरदायित्व होता है कि जो कुछ भी लिखे वह समाज के हित में मूल्यों को प्रतिष्ठित करने में, समरसता लाने में सहयोगी हो और सामाजिक नैतिक मान्यताओं के विपरीत न हो। उसकी अभिव्यक्ति समाज को आनन्द प्रदान करते हुए सन्मार्ग पर ले जाये। कोई कवि जब कबीर तुलसी, सूर जैसा सृजन करता है तभी 'कविर्मनीषी परिभू स्वयंभू' की परिधि में आता है। गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है- 'कीरति भनित भूति भलि सोई। सुरसरि सम सबकर हित होई।' ऐसा स्वध्यायी चिन्तक-विचारक कवि समाज को उत्कर्ष की ओर प्रवृत्त करने हेतु कृतसंकल्प होता है। काव्य में आत्मालाप या कल्पनातिरेक के लिये कोई स्थान नहीं है। सर्जना वही कालयजी बनती है जो वास्तविक अनुभूतियों के धरातल पर टिकी रहकर सकारात्मक प्रगतिशीलता की ओर ले जाने के लिये रागात्मक अभिव्यक्ति से लोकमंगल का संदेश देती है।

जब रचना व्यष्टि से समष्टि की ओर उन्मुख होती और 'एकोहं बहुस्याम' की भावना से प्रेरित होती है तब वह रचना नवगीत के मार्ग पर गतिशील होती है। यही उद्देश्य लोकगीत का भी होता है। जहाँ तक नवगीत का प्रश्न है वह लोकगीत का ऋणी है। लोकतत्त्वों से ही उसमें रस का उद्भव हुआ, नूतन सौन्दर्यबोध की दृष्टि मिली और इसके साथ ही लोकगीतों ने जहाँ नवगीत की भाषा का संस्कार दिया वहीं उसे सर्जना का उद्देश्य भी दिया। ध्यातव्य है कि लोकगीत प्रतिरोध के कोश हैं, जितनी कहावतें, मुहावरे, मिथक, प्रतीक लोकभाषा में विविधता के साथ हैं, इतने खड़ी बोली में नहीं हैं और इस दृष्टि से लोकभाषा बहुत समृद्ध है। अतः नवगीत लोकाश्रित होकर ही प्रगति कर सकता है। इस प्रकार गीत को नवगीत कर रूप देने में लोकभाषा, लोकगीत, लोकतत्वों का महत्त्व अस्वीकारा नहीं जा सकता है। जब कोई रचना व्यक्तिगत सत्ता से

ऊपर उठकर सामाजिक सत्ता में विलीन हो जाती है तो उसका स्वरूप भी विराट हो जाता है। लोकगीतों की ही भाँति नवगीत भी इसी मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं। अन्तर केवल इतना है कि लोकगीत ताल वृत्त और लय में बँध कर संगीत की पद्धति में गाये जाते हैं और हर छन्द की अलग तालवृत्त तथा लय के साथ सांगीतिक परम्परा है जबकि नवगीत साहित्यिक भाषा में छन्दों में बँधे होते हैं तथा इनकी गेयता मात्रानुसार छान्दस होती है। नवगीत पर छन्द का बन्धन है जबकि लोकगीत छन्द, मात्रा और तुक से मुक्त हैं। दोनों की गेय परिपाटी पृथक-पृथक है। नवगीत यथार्थ अनुभूतिक संवेदना के आंतरिक विस्फोट से अवचेतन से मुक्त हो पाते हैं और कवि केवल माध्यम रह जाता है, रचना तो स्वयं जिस तरह साकार होना चाहती है, हो जाती है जिसमें रचनाकार चाहकर भी फेर बदल नहीं कर पाता।

डॉ. श्याम सुन्दर दुबे ने लिखा है- 'नवगीत ने अपने राग-वलय में जीवनगत सम्पूर्ण को मनुष्य के साथ संश्लिष्ट कर एक प्राकृत सामूहिकता की तरह ही आविष्कृत किया है। नवगीत का बिम्बात्मक प्रत्यय भारतीय जीवन के सातत्य का प्रत्यक्षीकरण है। नवगीत ने अपनी रागात्मक -ज्ञानात्मक आत्मसत्ताओं के विस्तारीकरण में भारतीय राष्ट्र की ऐतिह्य जातीय स्मृतियों के साथ समकालीन सांस्कृतिक संस्करणों-संक्रमणों और तज्जन्य विरूपीकृत समाज के अंतर्विरोधों को अपने भास्कर भावलोक में समेट कर भारतीय समाज और भारतीय प्रकृति के बदलते सम्बन्धों को जीवन्त प्रक्रिया की तरह आविष्कृत ही नहीं किया है बल्कि इसे सजीव रचना पिण्ड के इन्द्रिय संवेद्य संवेगों से सम्पूरित भी किया है।' प्रो. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ने अनुभूतिक संवेदनाओं को 'रागात्मक अन्तश्चेतना का शाब्दिक प्रति संसार' कहा है। इस प्रकार कवि की बिम्बात्मक चेतना की प्रगतिशील सूक्ष्म कल्पनात्मकता के माध्यम से इन्द्रिय संवेद्य सम्पूर्ण बाह्य प्रत्यक्ष, आनुभूतिक सम्वेदना स्मृत्याभास और अनुकूलित सौन्दर्यच्छा से समन्वय कर अप्रत्यक्षेत: मानस अवकाश में शब्द और अर्थ की समानता द्वारा एक समान्तर विश्व की रचना नयी कविता, लोकगीतों के रस लालित्य और सौष्ठव से अनुप्राणित नहीं होती। यह उत्तरदायित्व नवगीत ने भली-भाँति निभाया। ऐसा कोई नवगीतकार नहीं है जिसकी रचना में लोकतत्व का अभाव हो बल्कि देशज शब्दों, आंचलिकता, लोक में प्रचलित मुहावरों और कहावतों के साथ ही प्रतीक-बिम्ब का भी चयन लोक विश्रुत मिथकों से होता है जिसमें कच्ची माटी की सुरभि समाई रहती है। इस संदर्भ में डॉ. शिव बहादुर सिंह भदौरिया (पुरवा फिर डोल गयी तथा नदी का बहना मुझमें हो) कैलाश गौतम, अवध बिहारी और कुमार रवीन्द्र के साथ ही डॉ. माहेश्वर तिवारी और बुद्धिनाथ मिश्र आदि लोकतत्त्वों से भरपूर दिखाई पड़ते हैं।

रवीन्द्र 'भ्रमर' के नवगीतों का जन्म तो लोकगीतों की कोख से ही होता है। उनकी रचनाओं में गाँव की अनछुई गंध से लोकगीतों का स्मरण ही उठता है और सम्पूर्ण ग्रामीण सौन्दर्य का बिम्ब साकार हो उठता है। उनका एक नवगीत यहाँ प्रस्तुत है-

'पगडण्डी पर मोती चमके/वनखंडी में फूल/सुबह
घूमने निकले थे हम/गये रास्ता भूल/पूरब के
पर्दे पर टँकने लगी किरन की कोर/नीले सागर में
मानिक की उठने लगी हिलोर/झरने लगी गंध

की केसर, उड़ने लगा समीर/पाँव पड़े जो लालपरी
के/सोना हो गयी धूल/'

लोकजीवन के सच्चे पाखी कैलाश गौतम के रचना संसार में गाँव की माटी, संघर्षमय जीवन, विवशतायें और अनकही पीड़ायें साकार हो उठती हैं। नवगीतों में भी पत्रकारिता का धर्म निभाते हुए वे अपनी खोजी प्रवृत्ति का परिचय देते हुए ग्रामीण असमानता और अध:पतन को उसके समग्र रूप में प्रस्तुत करने में दक्ष हैं और वास्तविकता प्रकट करने से स्वयं को रोक नहीं पाते जिनका उद्देश्य प्रतिरोधी वातावरण का निर्माण ही होता है:-

'कंडे बीन रही है मुनिया/देखो सूखे ताल में/आग
बरसती, लू चलती है। कितनी तेज न जाने/ अपना काम
इसे सौंपा है/विधवा बूढ़ी माँ ने/बात-बात में चित
हो जाती/पाँच रुपल्ली में सो जाती/जैसे इसकी माँ
सोती थी/कभी पाव भर दाल में /बाँह पकड़कर ले जाते
हैं/अरहर और पुआल में।
अथवा
गाँव गया था/गाँव से भागा/रामराज का हाल देख
कर/ पंचायत की चाल देखकर/आँगन में दीवाल देख
कर/सिर पर आती डाल देखकर / नदी का पानी लाल
देखकर/ और आँख में बाल देख कर।'

प्रो. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के नवगीतों में ब्रज की सुरभि इस प्रकार समाहित है कि पाठकों को भाव-विभोर कर देती है। यद्यपि उनकी भाषा कभी-कभी साधारण जन के पल्ले नहीं पड़ती फिर भी बिम्ब इतने स्पष्ट और सारगर्भित हैं जिसे समझने में कठिनाई स्वत: समाप्त हो जाती है। उनकी रचनाओं के प्रतीक अधिकांशत: विशिष्ट पौराणिक अख्यानों के पात्र होते हैं फिर भी ब्रज माधुरी का सौन्दर्य फूट-फूट पड़ता है। यथा :-

'कल्पतरु/समझे जिन्हें हम/वे खजूरी हो गये/व्यर्थ
गूँगी प्रतीक्षा ने/एक फल की/आस की/पत्तियाँ
सूखी बिछी थीं/राह में/मधुमास की/बाँस-काँस
बबूल/वन में/जी-हुजूरी बो गये/चुप्पियों पर/
धरधराती/एक घायल बाँसुरी/पाँव के नीचे/कसकती/
तेज पाटल-पाँखुरी/क्षितिज-पर/शाम के/ सपने
सिंदूरी सो गये।/'

मूर्त लोकगीतों का अमूर्त रूप नवगीत है। नवगीतों की जन्मभूमि वास्तव में लोकगीत ही है। जिससे नवगीत को एक ओर नयी भाषा मिलती है तो दूसरी ओर टटकापन आता है जो प्रतिरोध का वातावरण बनाता है। प्रत्येक नवगीत, यद्यपि समस्या का समाधान नहीं देता किन्तु उसमें संदेश छिपा रहता है जिसका मूल उद्देश्य सामाजिक परिवर्तन होता है। इस कला में गुलाब सिंह दक्ष दिखाई पड़ते हैं।

उनके नवगीतों पर लोकतत्वों का स्पष्ट प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। यथा :-

'धुले पान-सी नर्म हथेली/उभरी हुई लकीरें/तेज
छुरी-सी साँसें/मन का हरा-हरापन चीरें/होंठों
खिली सुर्खियाँ सूखीं/कंधों ढली दुपहरी/पनघट से
रीती गागर तक/व्यास अनबुझी ठहरी/उतरी नदी
उम्र की/देकर घर की/कुछ तस्वीरें'

अथवा

'झीनी चापर हुए मेघ/ कालीन हुए सीवान/क्वाँर दूध में भीगा/श्वेत हँसी से फूले धान/कल हँसिये की धार/गीत की धार बनी गूँजेगी/माँ का आँचल पकड़ प्यार से/फिर पूनम पूछेगी

सूद-मूल के खेल/कहाँ तक झेलेंगे खलिहान/बाझिन गाय द्वार पर/बैठी -बैठी करे जुगाली/हारी
मिर्च सूखी रोटी पर/हरी-भरी खुशहाली/गाँव
कि जैसे खुले पड़े हैं/'कफन' और 'गोदान'।

लोकतत्त्वों के अनुछुए बिम्ब की निर्मिति में डॉ. शिव बहादुर सिंह भदौरिया का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे ऐसे नवगीतकार हैं जिनकी रचना में तुलसी की चौपाई की भाँति साधारण जन के अधरों का स्पर्श करने में सफल रही हैं। उनकी कृतियों के नाम तो बैसवारा क्षेत्र में प्राय: अधिकांश लोगों की स्मृति में सुरक्षित हैं। आंचलिकता, लोक भाषा और मुहावरों का प्रयोग करने में वे सफल सिद्ध हुए हैं। उनकी रचनाओं, लोकगीतों में की गायी जाती हैं। उनकी एक रचना यहाँ प्रस्तुत है :-

'फागुनी सबेरे/बन-बाग महमहाये/अँगुली से पंखुड़ियाँ/खोलती समीरन/बिरवों से गुपचुप यूँ बोलती समीरन/क्यों

बड़े सबेरे/तुम ओस में नहाये/पेड़ों पर कल के सोये स्वर
भी जागे/कुछ डालों पर डोले, कुछ उड़कर भागे/कुछ लम्बे
गेहूँ के/साथ गहगहाये/गभुआये तन पर हर फूल है सलोना/
कंधे से अरहर अब तौल रही सोना/कह न सके कोई /घर
-गाँव गुनगुनाये/छिमियारे सरसों के पीताम्बर डोले/मेड़ों
तक झुककर वे राह रोक बोले/नगर छोड़कर कविवर/
आप कहाँ आये।'

अथवा

'माँ/ये गीत कहाँ से लाई/किसके पाले-पोसे हैं?/कब से यह खोहड़ी कोठरी/गोद लिये है नाँदें दड़की/माटी के भटके बेमुँह के/चरपइया भी आधे धड़ की /मइया/कहाँ छिपाकर तूने/तोशक-तकिये खोंसे हैं/कसकुट की नकटी बटलोही/गगरे वही कलमुँहे छोटे/डेढ़ टाँग की लम्बी शम्सी/काठ-कठौती पिचके लोटे/सोने की थारी में/जननी/कब ज्योनार परोसे हैं/कल/ उजरौटी गई दूध की/इतना पानी मिला रही है। लौंगन/डोभी पान पचीसी/तू बरसों से खिला रही है। मेरी सुध/में/खैनी खाकर/बापू भजन भरोसे हैं।'

श्री अवध बिहारी श्रीवास्तव लोकगीतों से जन्मजात जुड़े हैं और उनके रचना संसार में नवगीत का लोकाश्रित स्वरूप स्पष्ट रूप से झलकता है। उनके नवगीत लोकभाषा और लोकतत्त्वों से स्नात होकर हमें लोकगीतात्मक नवगीत का ऐसा आभास कराते हैं जिसमें ग्राम्य जीवन के दु:ख-दर्द के साथ ही उसकी हँसी-खुशी का भी परिचाय मिलता है। यह शाश्वत सत्य है कि कालान्तर में लोकभाषा ही साहित्यिक भाषा का रूप ग्रहण कर लेती है और पदच्युत भाषा इतिहास बन जाती है। अवध बिहारी जी के नवगीत इसी परिवर्तनशील प्रक्रिया का बोध अपने नवगीतों से कराते हैं जिसमें लोकभाषा की मिठास है तो भाषा का भी संस्कार होता है और वह एक ताजगी लेकर हमें सम्मोहित कर लेती है। इस संदर्भ में लोक संस्कृति से सम्पृक्त एक रचना यहाँ प्रस्तुत है-

'बीत गया सारा आषाढ़ जब/तब आये बलम/मरने वाला/बीज कोख में/लगा कुनमुनाने/गर्भवती धरती उदास थी/लगी मुस्कुराने/गोद भराई हुई, भर गया/हरा-हरा आँचल/पीले पड़े हुए पत्तों का/रंग हुआ धानी/'सुनो' धान के बिरवे/ रोपो/ठहरा है पानी/आधी रात गाँव की/बहुओं की पूजा

का फल/अब तो भादों में, कुँआर में /इतनी कृपा करें/नये

नये चावल पकने की/घर में गमक भरें/डिह बाबा

पर हवन कर रहे/पंडित राम अचल।'

लोकगीत की गमक और लोक संस्कृति पूरी तरह इस रचना में देखी जा सकती है। भाषा की ताजगी भरी लोच नवता का उन्मेष करती जिसकी साधना गाँव में पला-बड़ा लोकमन में रमा और संस्कृति का पोषक ही कर सकता है और ये सारी खूबियाँ अवध बिहारी जी में उपस्थित हैं। विशिष्ट कवियों की शैली, भाषा प्रयोग और शिल्प की नवता बिना नाम के भी रचनाकार का बोध करा देती है। ऐसे ही विशिष्ट कवि हैं श्री कुमार रवीन्द्र जिनकी रचनायें ही रचनाकार का संज्ञान करा देती हैं। यद्यपि उनकी अनुभूतियाँ ग्रामीण परिवेश की नहीं हैं फिर भी उनकी शैली सबसे अलग और अनूठी है जो लघु वपुसत्व में विराट व्यक्तित्व का परिचय देती है। उनकी रचनायें अन्तर्मन की गहराई से प्रकट होती हैं। यथा :-

'घर पवित्र है/इसमें पुरखों की/आसीसें बसी हुई है/देवा हैं इक सबका साईं/वह भी है इस घर का वासी/घर के एक सिरे पर काबा/दूजे पर कबिरा को कासी/घर पवित्र है/साँसें इसकी/सदा सुहागिन, नेह छुई हैं/धुन अजान की, वंशी के सुर/दोनों को है इसने साधा/कभी हुआ रबिया औ 'लैला/कभी हुआ मीरा औ' राधा/ घर पवित्र है। मिठबोला यह/मीठे इसके ताल कुई हैं।'

कुमार रवीन्द्र की प्रत्येक रचना सकारात्मकता के साथ संस्कृति और समाज से जुड़ी रहती हैं जिसमें भाषा करी नवतायुक्त जीवन्तता और शिल्प का अनूठापन हमें वास्तविक नवगीत का दर्शन कराता है। यदि उनकी शैली तथा शिल्प की कोई नकल करना चाहता है तो तुरन्त पकड़ में आ जाता है।

इस संदर्भ में मधुकर अष्ठाना के भी गीतों में प्राय: लोकतत्त्वों की उपस्थिति यह सिद्ध कर देती है कि वे गाँव में पले-बढ़े हैं और लोकगीतों के संसार से वे भलीभाँति परिचित हैं जो उनके संस्कार में जन्मजात घुली-मिली है। जिन नवगीतकारों ने आंचलिकता और लोकतत्त्वों को अपनी रचना में उतारा निश्चित रूप से उनकी रचनायें सामाजिक सरोकार के साथ प्रतिशोध को जन्म देने में सफल हुई हैं और काल की सीमा को तोड़ देती हैं। ऐसे ही नवगीतकार मधुकर अष्ठाना भी प्रतीत होते हैं जिनकी एक रचना

यहाँ अवलोकनाथ प्रस्तुत है:-

'अन्हराई है शाम/न लौटा अभी चिरौटा/अकुलाई माँ/आँखें भरीं/मनौती माने/फिर-फिर जाये/ तुलसी चौरा/ दीप जलाने/सन्नाटे में घात लगाये/क्रूर बिलौटा/छोटे-

छोटे पंख/अभी है कोमल काया/घेरे रहती/कवच बनी/ ममता की छाया/लगे डिठौना रोज/भरा रहता कजरौटा/ अभी न हब-खब उसे/समय की/अपने पन की/कथा/ छिपी/मीठी बातों में/काले मन की/उसे पता क्या/चारों ओर जहर है पौटा।'

डॉ. राम सनेही लाल शर्मा 'यायावर' नवगीत के विशिष्ट रचनाकारों में मान्य हैं। उन्होंने जितना लिखा है, उसे पढ़ने और समझने में एक जन्म समर्थ नहीं है, अनेक जन्म लेने पड़ेंगे। वे ब्रज की संस्कृति और लोकगीतों के मर्मज्ञ हैं और अपार सर्जना में भी उसकी झलक दिखाई पड़ ही जाती है। ब्रज भाषा में गीत के दो संग्रह और ब्रज संस्कृति पर उनके शोध परक आलेख तथा शोध ग्रन्थ भी प्रकाशित हैं। लोकभाषा मर्मज्ञ 'यायावर' जी ने अपने नवगीतों में लोकगीतों के अनेक मुहावरे कहावतें, लोककथायें और लोकतत्त्वों का प्रचुर प्रयोग किया है। इस संदर्भ में अवलोकनार्थ एक नवगीत प्रस्तुत है :-

'भूल नहीं पाये/तिलोकपुर/हो न सके शहरी/गुल्ली

डण्डा, नीम-निबौरी/वे कच्ची अमियाँ/चौपालें बैठक-

अगिहाने/लोककथा-रसिया/दंगल-कुश्ती, जोड़ कबड्डी/उछलकूद मस्ती/पोखर जैसी मौन शाम/ बातूनी दोपहरी/नई किताब, बुदक्का, बस्ता/नेजा की कलमें/ड्योढ़ा ढैया, गिनती, पहाड़/मैया की कसमें/ सुबह लड़ाई, शाम दोस्ती/मन गंगा जल सा/बैंगन बाबा, फत्तू चाचा/वह बुढ़िया

बहरी/नल दमयन्ती, आल्हा ऊदल/दुखिया सारंगा/तोता-

मैना, गीदड़ मुखिया/धाँधू बेढंगा/गंगाराम पटेल/बुलाकी

नाई/के किस्से/बूढ़े बाबा की रस भीनी/लोककथा गहरी।'

प्राय: समस्त नवगीतकारों में लोकतत्व और आंचलिक प्रयोगों की प्रचुरता यह सिद्ध करती है कि लोकतत्वों और आंचलिक प्रयोगों देशज शब्दों के अभाव में नवगीत अधूरा ही रह जाता है। नवगीत साधारण-जन का गीत है, उनकी पक्षधरता के साथ उनके दुख-सुख, शोषण-उत्पीड़न और जीवन मूल्यों का गीत है जो न्यूनतम शब्दों और सांकेतिक भाषा में रचा जाता है। ऐसी स्थिति में लोकगीतों की द्रवण शीलता मार्मिकता और प्रतिरोधी संदेश के लिये नवगीत में उक्त तत्त्वों की उपस्थिति अनिवार्य है। लोकगीतों की उर्वर भूमि से ही नवगीत का अंकुर ऊर्जावान होकर आज वट वृक्ष हुआ है।

सम्पर्क : *लखनऊ (उ.प्र.)*
मो. 9450447579

डॉ. श्यामसनेही लाल शर्मा

नवगीत की भाषा : सांस्कृतिक-संदर्भ

गीत, गीति और नवगीत :

गीत का अधिक विकसित समकालीन आधुनिक रूप है नवगीत। यह गीत के गर्भ से ही उद्भूत है। गीत काव्य की प्राचीन विधा है, भले ही काव्यशास्त्र के आचार्यों ने उस समय इसे गीत न कहकर मुक्तक काव्य के अंतर्गत स्थान दिया है। गीति गीत का ही समानार्थी है, पर गीत की गीति संज्ञा अपेक्षया अधिक आधुनिक है। युग की अपेक्षाओं के अनुरूप गीत ने नया रूप, नया रंग, नई सोच और नए शिल्प के साथ आधुनिक बोध और समकालीन संवेदना को अपनाकर स्वयं को नवगीत के रूप में नई पहचान दी है। प्रारंभ में नवगीत के स्वरूप और इसकी संरचना को लेकर उहापोह और असमंजस की स्थिति बनी रही। इसका विरोध भी हुआ। यहाँ तक कि गीत के प्रति गहरी विमोहनशीलता ने तो इसके जन्म के कुछ समय बाद ही इसके अवसान के स्वप्न देखना भी प्रारंभ कर दिया और हड़बड़ाहट में नवगीत का उपसंहार भी लिख डाला। सुखद आश्चर्य यह है कि इन सब मार्गरोधी स्थितियों के रहते हुए भी नवगीत ने अविचलित भाव से अपनी विकास यात्रा अनवरत रखी है। यह नवगीत की जिजीविषा का प्रमाण है।

गीत का नवगीत के रूप में अभिनवीकरण कथ्य के स्तर पर भी हुआ है और शिल्प के स्तर पर भी। पारंपरिक गीत लयखंड में लिखे जाते हैं, वहीं गीत को अर्थखंड में लिखने की नव्य शैली नवगीतकारों की देन है। द्रष्टव्य :

बदल रही/ चिंतन की भाषा/ मूल्यों का अनुवाद/ अधरों से/माधुर्य छलकता/ सुरभित बोल रसीले/ पोर-पोर/ जिनके दुर्भावी/ अंतरंग जहरीले/ थर-थर काँप/ रही सच्चाई/ छलनाएँ आजाद।

उपर्युक्त गीतांश की तीन पंक्तियाँ ध्रुवपद (मुखड़े) की हैं, जो अर्थखंड में तीन और लयखंड में 16, 11 की यति के साथ 27 मात्रिक सरसी (कबीर) या समुंदर छंद का एक चरण है।

गीतांश की शेष पंक्तियों में (थर-थर...आजाद) समापिका इकाई है, वे भी अर्थखंड में तीन किंतु लयखंड में सरसी छंद का ही एक चरण है। अधरों...जहरीले तक अर्थखंड में छः और लयखंड में दो पंक्तियाँ हैं, जो 16, 13 के विश्राम से 28 मात्रिक प्रतिचरण सार या ललित छंद के दो चरण हैं, जिनके अंत में दो गुरु या दो लघु आते हैं।

नवगीत ने भारतीय गीत-परंपरा को ही नहीं, समूची काव्य-परंपरा को अंगीकार कर उसे नवीन संस्कार दिया है। नवगीत ने अपने कलेवर को भारतीय मूल्य परंपरा, लोक-संस्कृति और सांस्कृतिक

बोध के साथ आधुनिक युगबोध के अनुकूल ढाला है। आधुनिक बोध को वाणी देते हुए भी नवगीत ने अपनी सांस्कृतिक विरासत से संबंध-विच्छेद कभी नहीं किया, जैसा कि प्रगतिवाद में दिखाई देता है। नवगीत लोक-संस्कृति की गौरवपूर्ण गरिमा से अभिमंडित होकर और संस्कृति की समुज्ज्वल परंपरा को आत्मसात् कर काव्य मंच पर अवतरित हुआ।

नवगीत की भाषा का वैशिष्ट्य : तरलता-सहजता :

नवगीत की भाषा सहज है। उसे सहज संप्रेषणीय बनाने के लिए नवगीतकार ने जहाँ संस्कृत की परिनिष्ठित शब्दावली का प्रयोग किया है, वहाँ अर्द्धतत्सम, तद्भव, देशज यहाँ तक कि विदेशी स्रोतों से आए शब्दों को अपनाने में भी कोई संकोच नहीं किया है, द्रष्टव्य :

गुलदस्ते उनके हैं/ टेबिलें हमारी हैं... / स्केच उनके हैं/ पेंसिलें हमारी हैं/ पुजते गोबर-गणेश/ माटी के माधो / कबिरा का कहना है/ सुन भाई साधो/ आयोजन उनके हैं/ महफिलें हमारी हैं/ आँखों में भट्टी-सी/ दहकती दुपहरी/ पाँवों में पहने / इंसाफ की कचहरी।/ पंथ सभी उनके हैं/ मंजिलें हमारी हैं।/ गूँगे सारे बयान/ हैं गवाह अंधे।/ अनसुनी अपीलों के/ झुके हुए कंधे।/ हस्ताक्षर उनके हैं/ फाइलें हमारी हैं।

उपर्युक्त उद्धरण सुप्रसिद्ध नवगीतकार देवेंद्र शर्मा की कृति अनंतिमा में संकलित नवगीत 'गुलदस्ते उनके हैं' से है। इस नवगीत में फारसी (उर्दू) और अंग्रेजी के शब्दों का उन्मुक्त प्रयोग देखा जा सकता है। गुलदस्ते, टेबिलें, स्केच, पेंसिलें, महफिलें, इंसाफ की कचहरी, मंजिलें, बयान, गवाह, अपीलों, फाइलें- ये सभी शब्द विदेशी स्रोत से ही हिंदी में आए हैं वहीं आयोजन (तत्सम), भाई, मिट्टी, माधो, साधो, आँखों, भट्टी, दुपहरी, पाँवों आदि (अर्द्धतत्सम, तद्भव, देशज) भी हैं। इनके साथ ही लोक-प्रचलित मुहावरों गोबर-गणेश और माटी के माधो का प्रयोग भाषा को लक्षणामूलक व्यंजना से सहज ही संयुक्तकर नया और गहरा अर्थ प्रदान कर रहे हैं। वस्तुत: मुहावरे की संरचना में भाषिक इकाइयों का कोई तर्कसम्मत या व्याकरणानुमोदित संयोग नहीं होता। यही कारण है कि इनका अर्थ अभिधेय नहीं होता। वह लक्षणा या व्यंजना शक्ति से ही निकलता है। नवगीत की भाषा की यही सहजता है और यही सादगी है कि जीवन और जगत की वास्तविकता को वह भाषा की सर्वग्राह्य शैली में व्यक्त करता है, जो प्राय: सामान्य बोलचाल में व्यवहृत होती है और सहज बोधगम्य है। वह भाषा यदि मुहावरे भी ग्रहण करती है तो उसका स्रोत भारतीय सांस्कृतिक परंपरा का विस्तृत फलक और लोक-संस्कृति की सहजता होता है। लोक-संस्कृति भारतीय संस्कृति का मूलोत्स है।

सांस्कृतिक संदर्भों के अनुकूल नवगीत की भाषा को तरल, सरल, सहज और संप्रेषणीय होना ही होता है। कोरा पांडित्य प्रदर्शन चमत्कृत तो कर सकता है, पर भाषाई मानक नहीं बन सकता। नवगीतकार ईश्वरी प्रसाद यादव का एक काव्यात्मक कथन द्रष्टव्य है :

कवि ऐसा मत गीत लिखो जो / पल्ले नहीं पड़े।/ शब्द जहाँ गूँगे-बहरे हों और / अर्थ लँगड़े।/ सरल-तरल अभिव्यक्ति लोक में / पूजी जाती है।/ कठिन काव्य के प्रेतों को यह / समझ न आती है।/ क्लिष्ट बिंब के / कठिन प्रतीकों के/ छोड़ो पचड़े।

समकालीन नवगीत की भाषा में संस्कृतनिष्ठ परिमार्जित शब्दावली के प्रयोग भी बहुत हैं। विजय बागरी 'विजय' के कविता बोल रही गीत की भाषा द्रष्टव्य है :

शब्दहीन- / अधरों की वाणी, / कविता बोल रही।/ गाँव-गाँव की- / चौपालों का / चिंतन बदल गया।/ भोली-भाली / निष्ठाओं का / दरपन बदल गया।/ हैं कितने?/स्वच्छंद आचरण,/ कविता तोल रही।/ छल-छंदों की / कुटिल भूमिका अपनेपन वाली / गहरे दिखते-/ संबंधों की/ सच्चाई काली/ कविता ने/ बतलाया, कैसे / कटुता घोल रही?

यह पूरा गीत परिनिष्ठित हिंदी में है। संस्कृतनिष्ठ शब्दावली है। गीत का कथ्य और उद्देश्य स्पष्ट है। दमित, पीड़ित, शोषित जन, जो अन्याय, अत्याचार के समक्ष किसी अज्ञात भय, विवशता के कारण मुख नहीं खोल पाते, उनकी आवाज कविता बनती है। यहाँ कविता का मानवीकरण किया गया है- कविता हल्ला बोल रही है। इस मानवीकरण से अन्याय के विरुद्ध कविता की आक्रामकता को गोचरता प्रदान की गई है। इस आक्रामकता का प्रभाव उस समय और तीव्र हो जाता है, जब वह शब्दहीन अधरों की वाणी बनती है।

भाषा जब विविध सामाजिक, सांस्कृतिक दायित्वों का निर्वहन करती है, तब उन दायित्वों में एक दायित्व साहित्य भी है, साहित्य ही नहीं। साहित्य की अपनी अलग संस्कारित भाषा-पद्धति है। जब साहित्य में संभाषण के अनुरूप सहजोक्ति, लोकोक्ति अथवा स्वाभावोक्ति का प्रयोग दिखाई देता है, तब उक्त तथ्य का अनुभव आसानी से होता है। जहाँ भाषा में सरलता या सुगमता नहीं मिलती, वहाँ भाषा की सादगी नहीं, मामूलियत पाई जाती है। इसलिए नवगीत की अभिव्यंजना शैली चाहे परिनिष्ठित हिंदी हो या उर्दू अथवा हिंदुस्तानी, उसमें अभिव्यक्तिगत सादगी, सहजता और सुगमता बनी रहनी चाहिए, क्योंकि भाषा का एक अपना विशेष कार्य है, जो किसी भी दूसरे उपयुक्त संदर्भ पर लागू नहीं हो सकता, वह कार्य है-भाषा की प्रेषणीयता।

भाषाई सहजता का एक रूप राजकुमार महोबिया के बचपन के गीत में देखा जा सकता है :

फटेहाल / बापू के काँधों / चढ़कर गगन छुए / पंख उगाये / बचपन के दिन / उइते सुआ हुए।/ बदन उघारे।/ बिखरे बालों/ की कब किसको सुध।/ हरदिन होली।/ दीवाली-सा / क्या मंगल क्या बुध।/ ढुलढुल दलिया / चुख्ख महेरी/ अपने मालपुए।/ पंख उगाये / बचपन के दिन... ।/ नयनों में।/ आकाश समेटे / पाँवों मृगा भरे। ये उड़न छू / बने चिरैया, /मन की खूब करे।/ दास अभावों / को रक्खे नित।/ यद्यपि बँदरमुए।/ पंख उगाये / बचपन के दिन... । हिचकी सर्दी / खाँसी जूड़ी / या फिर चढ़े बुखार।/ क्या ठाकुराइन / क्या पंडितजी /सारे गाँव गुहार।/ संवेदन की/ फलबतियों सँग/ नैना खूब चुए।/ पंख उगाये / बचपन के दिन... ।।

बचपन के दिन वैसे तो एक सामान्य गीत है। बचपन की स्मृतिजन्य यादों को सामान्य बोलचाल की भाषा में अभिव्यक्ति दी गई है। बचपन भी सपने देखता है। इन सपनों को बिंबधर्मी शब्दों में प्रकट किया गया है। फटेहाल, बापू के काँधों पर चढ़कर गगन छूना, पंख उगाए बचपन के दिनों का उइते सुआ होना, उघरा बदन, बिखरे बाल, (चाक्षुष बिंब), ढुलढुल दलिया, चुख्ख महेरी (स्वाद बिंब), उड़न छू (स्पर्श बिंब)। बिंबधर्मी शब्दों से सजे इस नवगीत को लोक-संस्कृति समर्थित लोकभाषा की सहजता और तरलता ने पारिवारिक संबंधों को एक अलग ही रागात्मक पहचान दी है।

शब्द आज भी वही हैं, जो सदियों पहले व्यवहार में थे। नवगीतकार भी उन्हीं शब्दों को अपना रहा है, फिर उनमें नवता कैसे? उत्तर बहुत स्पष्ट है, नए संदर्भों से। नए संदर्भ से जुड़कर पुराने शब्द ही नए अर्थ

देने लगते हैं। यह नवीनता भाषीय विविधता में सन्निहित है, जो-

1. वक्तृ-मनोवृत्ति के अनुरूप भाषीय विविधता की उत्पत्ति विचार सूचक शब्दों के चयन से लाई जाती है।

2. पद-रचना के स्तर पर यह विशिष्टता विशेष प्रकार की रचना को अपनाने से आती है। कृदंत, तद्धितांत या समस्त पदों-और समस्त पदों में के अंतर्गत तत्पुरुष, बहुब्रीहि आदि उपभेदों के चयन में यह विशिष्टता दिखाई पड़ती है।

3. शब्दावली के चयन में इस वैशिष्ट्य को पहचाना जा सकता है- (अ) तत्सम, तद्भव या अन्य भाषीय शब्दावली के प्रयोग से (आ) मूर्त या अमूर्त वस्तु बोधक शब्दों के प्रयोग से (ई) तर्कोपयुक्त शब्दों के प्रयोग से अथवा (अ) विभिन्न संदर्भों पर आश्रित विशिष्ट पदावली के प्रयोग से (आ) औपचारिक या अनौपचारिक स्थतियों के अनुकूल प्रयोग-भेद से।

4. शब्दों के योजन में विशेष संगति की दृष्टि से उत्पन्न विशेषता के कारण विलक्षणता उत्पन्न होती है।

5. शब्दों के इस प्रकार योजन से जिससे विचार-वैविध्य के अनुरूप दृश्य, बिंब या स्मृति स्पष्टतया प्रकट हो-विलक्षणता उत्पन्न होती है।

6. पदबंधों के विशेष संयोजन से विलक्षणता उत्पन्न की जा सकती है।

7. वाक्यगत पदबधों के क्रम में हेर-फेर कर देने से विलक्षणता उत्पन्न होती है। सुखद आश्चर्य यह है कि नवगीत ने भाषिक स्तर पर नवीनता के लिए सहज रूप में ये प्रयोग किए हैं। नवगीत की भाषा में चयन और विचलन के प्रयोग बढ़े हैं, जो पद-क्रम, लय-विधान, तथा अर्थ-संघटना के स्तर पर दिखाई पड़ते हैं।

सांस्कृतिक संदर्भ और नवगीत की भाषा का वैशिष्ट्य :

शील और सौंदर्य की समन्वित कलात्मक कृति है संस्कृति। मानव संस्कृति के द्वारा ही शील और सौंदर्य की उदात्तता को पाता है। जीवन का कटु यथार्थ संस्कृति का सौंदर्य नहीं है। विक्षुब्धता, निराशा, संत्रास, भ्रम और भय भारत में सांस्कृतिक मूल्य कभी नहीं रहे। जीवन और जगत् में जो कुछ भयप्रद है, घृणास्पद है, कुत्सित है, कटु है, वह संस्कृति का शृंगार कभी नहीं बन पाया। संस्कृति तो मानव को श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर और फिर श्रेष्ठतर से श्रेष्ठतम बनने की प्रेरणा देती रही है, क्योंकि जीवन में शील और सौंदर्य को अनुप्राणित करने वाले भाव ही संस्कृति का आंतरिक सौंदर्य बनते हैं। इसी भाव-सौंदर्य से अभिमंडित लोक-संस्कृति की जीवंत परंपरा संस्कृति का गोचर रूप रही है। इस लोक-संस्कृति के व्याप में कालजयी मानवीय संवेदनाएँ और शील की उत्तम प्रेरणाएँ विद्यमान हैं। इसमें प्रेम और सौंदर्य, धार्मिक आस्थाएँ, नैतिक मूल्य, अनुष्ठान, लोक विश्वास, अभिचार, व्यवहार-विज्ञान, संस्कार, रीति-रिवाज आदि का आकर्षण उपस्थित है। नवगीत लोक संस्कृति की इसी गौरवमयी गरिमा से मंडित होकर काव्य मंच पर अवतरित हुआ है। इसीलिए नवगीत की भाषा में तरल-सरल ग्राम्य जीवन के गत्वर और संश्लिष्ट बिंब मिलते हैं, जिनमें संस्कार है, अपनत्व है और पवित्रता की मिठास है, द्रष्टव्य :

हरे लहरे खेत में/ टहकारती सोनापतारी/ ले रहे बाबा हरी का नाम।/ खींचती अम्मा पकड़कर कोर चादर की/ उठी दादी/ जगी अँगड़ाइयाँ/खनकता आँगन/ खगरते बरतनों से। लीपती चौका/ सुबह के

संगीत होते काम/ पीठ पर चिपका हुआ मुन्ना चिकोटी काटता।/ खींचकर हँसता बुढ़ापा कान।

संयुक्त परिवार की रागात्मकता का यह संश्लिष्ट गत्वर बिंब है। आज भले ही काम की तलाश, व्यक्तिवादिता के उदय और आत्मकेंद्रित स्वार्थपरता के प्रभाव से संयुक्त परिवार एकल परिवार में बदल गए हैं, पर कभी गाँवों में संयुक्त परिवार प्रथा थी। संयुक्त परिवार की रागात्मकता, भावनात्मक संबंध, संस्कार, मूल्य और आस्था सबको एक साथ समेट कर पालती रही है। नवगीत की भाषा में इस सांस्कृतिक बोध की बिंबित अभिव्यक्ति प्रारंभ से ही है। नवगीतकार शहर में रहकर भी गाँव को और गाँव की संस्कृति को नहीं भुला पाया। महानगरीय संस्कृति ने उदात्त मूल्यों, महनीय सांस्कृतिक परंपराओं, पारिवारिक संबंधों में व्याप्त विश्वास की स्निग्धता, स्नेह की कोमलता, अपनत्व की मृदुता और संस्कारों की शुचिता को भले ही पूरी तरह से ग्रस लिया है, तथापि नवगीतकारों का एक वर्ग ऐसा है, जिसकी जड़ें गाँव में हैं। उन्होंने संयुक्त परिवार के सुख को गहराई तक अनुभव किया है। इनके गीतों में लोक संवेदित शब्दावली में लोकमन की गहरी भावप्रवणता, छोटे-छोटे शब्द पदों में अर्थ की सघनता, नए बिंब, नई छवियाँ, लोक परिवेश की जीवंतता देखने को मिलती है। ऐसे नवगीतकारों में अनूप अशेष, डॉ. रामसनेहीलाल शर्मा 'यायावर', राघवेंद्र तिवारी, मधुकर अष्ठाना, निर्मल शक्ल, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', अवध बिहारी श्रीवास्तव, डॉ. ओमप्रकाश सिंह, उमाकांत मालवीय आदि ने अनेक ऐसे गीत लिखे हैं, जिनमें परिवार में संबंधों की रागात्मकता और संवेदनशीलता को अनुभव किया जा सकता है, द्रष्टव्य :

माँ बाबूजी आज गाँव से/ शहर पधारे हैं। ऐसा लगा कि मेरे घर में/ तीरथ सारे हैं।/ आज शहर की लड़की/बहू सरीखी दीख रही।/ वट सावित्री का व्रत कैसे/ करना सीख रही।/ मेंड़ों-खेतों की चर्चा में सारा दिन बीता।/ तुलसी की चौपाई जन्मी/बोल उठी गीता।/ नेह-छोह के रिस्ते-नाते/ बाँह पसारे हैं।

महानगरीय फ्लैट संस्कृति में जीवन जीने वाले व्यक्ति के पास उनके माँ-बाबूजी का आगमन होता है। उनके आगमन पर परिवार में जो प्रत्यक्ष परिवर्तन परिलक्षित होता है, (विशेषकर शहर की लड़की में जो आज बहू सरीखी दीख रही है) वह संस्कारित परिवार की मूल्यधर्मी चेतना के प्रभाव का परिचायक है। यह अंतश्चेतना का प्रकाश है, जो माता-पिता के संस्कारों का महकता जिसे देखकर वृद्ध दंपत्ति के परितोष का अनुभास तो अनिर्वचनीय ही होगा। घर में परिव्याप्त आनंदानुभूति को जिस भाषा में गोचरता प्रदान की गई है, वह संबंधों की मूल्यवत्ता, श्रद्धायुक्त पवित्रता, धार्मिक-नैतिक संस्कार, कृषि-संस्कृति से लगाव आदि को समन्वित रूप में मूर्तित कर रही है। उनके आने भर से फ्लैट, फ्लैट नहीं रहता, घर हो जाता है, जहाँ स्नेह है, आदर है, अपनत्व का सम्मान है। यही नहीं माँ-बाबूजी की उपस्थित मात्र से घर सारी श्रद्धा, आस्था और समग्र संस्कारित पवित्रता का केंद्र बन जाता है, तीर्थ हो जाता है। वह तीर्थ जहाँ संबंधों के उदात्त आदर्श को संस्कार देने वाली तुलसी की चौपाइयाँ और कर्म का संदेश देने वाली गीता का पाठ गूँजता है।

कितनी गर्माहट है/घर के बंधन में कहकर घर के बंधन में रागात्मक संवेदनाओं की गरमाहट का अनुभास कराने वाले अनूप अशेष के दिन ज्यों पहाड़ के (नवगीत संग्रह) के गीतों में लोक-संवेदना मानवीय संवेदना बनकर उभरी है। इस संग्रह के गीत सांस्कृतिक रूप से भारतीय जीवन के अंग हैं। सामान्यत: बंधन बाध्यकारी है, अत: कष्टकारी भी होता है, किंतु घर के बंधन में वह बाध्यता सुखद है। इस सुखदता का अहसास कराती है इस बंधन की गरमाहट। इस एक विशेषण पदबंध ने संबंधों के बंधन

का अर्थ ही बदल दिया है :

चार-चार पीढ़ी के/ चेहरे दर्पण में माँ कहती.../ बड़े पुण्य उतरे आँगन में।/ मैं हूँ मेरे पिता/ पुत्र और नाती,/ नदिया निर्झर वाली/ ठंडी छाती।/ यज्ञों के शंख/ फूँके कोई मन में।/ घर की वनस्पतियाँ/ दूब और बेला, फूल महकें/ ज्यों गजरों का मेला।/ कितनी गरमाहट है/ घर के बंधन में।

यही नहीं यहाँ गंगा-यमुना-सी, गाँव की बलइयाँ हैं, संतों वाली आशिस (आशीष) हैं, इसीलिए यह मात्र नाम का घर नहीं है। कवि के शब्दों में- घर अपना काशी।/ राम के चरण आए हों/ जैसे वन में।

घर के बंधन की गरमाहट में उत्तमता, उदात्तता, संस्कारशीलता तो है ही, संबंधों के महत्त्व को समझने वाली पारिवारिक उत्तम मूल्यों वाली सोच की समग्रता भी है, जिसमें महकती ममता है, धार्मिक पवित्रता है, नैतिक मूल्यवत्ता है और आशीषों में मंगलता है। इस गीत के बिंबधर्मी शब्दों की गहराई और प्रतीकों की सूक्ष्मदर्शी व्यंजना दूरगामी है, जिसने भारतीय परंपरागत उदात्त मूल्यों को एक छोटे-से घर में लाकर एकत्र कर दिया है और इनके द्वारा एक बड़ा-सा संदेश दिया है। वह घर क्या है? एक दर्पण, जिसमें चार पीढ़ियों के चेहरे (अपनी युगीन सोच, भावना, संवेदना और इच्छाओं के साथ) प्रतिबिंबित हैं। घर की शीतल, शांत (ठंडी) और गत्वर निर्झरिणी माँ को लगता है कि उसके घर का आँगन बड़ा पुण्यशाली है। यह गीत के अर्थगर्भी शब्दों का ही चमत्कार है, जो घर के बंधन में भी संबंधों की गरमाहट का अनुभास इस रूप में करा रहा है कि उस घर में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को गौरवान्वित और पुण्यशाली अनुभव करते हुए स्वयं को धन्य समझने लगता है।

इसी संग्रह के एक अन्य गीत में नवगीतकार आँखों से भीतर उतरती एक दुनिया को किसी भी स्तर पर नम (संवेदनशील) देखना चाहता है। कुछ नहीं तो नहर हो, खेतों के किनारे पेड़ हों या फिर गरम आँधी को पचाती, ताल वाली मेड़ हो। नहर, पेड़, ताल वाली मेड़ -ये तीनों शब्द प्रतीक नमी (शीतलत्व) के लिए समर्पित उपादान हैं। गीतकार की चाह यह भी है कि : बस्तियाँ हो पास तो / देह फूटी गंध भी हो, कटे परिचय / जोड़ते-से / लोक के संबंध भी हों।/ व्याकरण के एक वचन से तोड़ कर मन कहीं तो 'हम' हो।

मैं में अहं है, व्यक्तिवादिता है। इस अहं और व्यक्तिवादिता को अतिक्रांत कर गीतकार हम हो जाना चाहता है। हम अर्थात् मैं और मेरे जैसे अनेक से जुड़ जाना चाहता है। इस हम में हमारा भूगोल भी है, हमारा इतिहास भी। हमारी प्रकृति भी है, हमारा जीवन भी। वहाँ मेरा कुछ नहीं है। यह हम व्यष्टिचेतना को समष्टिचेतना में विसर्जित करने का उपक्रम है। गीतकार समष्टि (हम) के साथ रागात्मक संबंधों की गहराई को माप लेना चाहता है। लोक-संवेदित शब्दावली, नवीन बिंबों और प्रतीकों में सांस्कृतिक छवियाँ उकेरते हए लोक के भावप्रवण-चिंतन की गहरी रचनात्मकता को अनूप अशेष की भाषाई रचाव का वैशिष्ट्य कहा जा सकता है।

नवगीतकार भावों और स्थितियों की गोचरता के लिए गीत की भाषा में जिन बिंबों, प्रतीकों, मिथकों और अप्रस्तुतों का चयनपूर्वक प्रयोग करता है, उनमें अधिकांश शैल्पिक उपादान भारतीय सांस्कृतिक परंपरा से सीधे जुड़े हैं। नवगीत की भाषा में ऐसे भाषिक प्रयोग करने में नवगीतकार डॉ. रामसनेहीलाल शर्मा 'यायावर' का नाम उल्लेखनीय है। आँसू बेचे/गीत खरीदे। सिर्फ मंगलाचरण उचारे। हम हैं यायावर बंजारे (13) अनुभूति में चिंतन और जनवादी सोच के अंतर्संग्रथन से जन्मी उक्त पंक्तियों

ने कवि की काव्ययात्रा का लक्ष्य निर्धारित कर दिया है : हमने शत्रु नहीं संहारे। सिर्फ शत्रुता के स्वर मारे।

यह सृजन-मूल्य है सर्जक का। यहाँ पापी से नहीं पाप से शत्रुता की जाती है। व्यंजना यह कि रचनाकार प्रेम, बंधुत्व, भाईचारा, समरसता, दया, मैत्री और अहिंसा जैसे उदात्त मूल्यों का उद्गाता है। सांस्कृतिक मूल्यों में उसकी गहरी आस्था है। वह अपने नवगीत संग्रह मन पत्थर के में विविध सांस्कृतिक प्रतीकों को आज के संदर्भ में प्रस्तुत करता है, कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं : उठो पार्थ / गांडीव उठाओ / सर संधान करो/ अपमानित नारीत्व हुआ है.../ सोचो मत / ये पतित प्राण हैं।/ इनके प्राण हरो।

नारी और नारीत्व- भारतीय संस्कृति और मूल्यों की संरक्षिका उदात्त भावना है। यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता की उदात्त सांस्कृतिक परंपरा को पोषित करने वाली सोच है। उसके अपमान का अर्थ संस्कृति की मूल्यधर्मी भावना का अपमान है। ऐसे कुत्सित कृत्य करने वालों की सोच (प्राण) पतित हैं, इसलिए इस कुत्सित सोच का दमन (प्राण-हरण) आवश्यक है, ताकि ऐसी सोच समूल नष्ट हो सके। यह मिथकीय प्रतीक उस व्यापक, विशद वैचारिक पृष्ठभूमि को भी सामने रखता है, जो राम-रावण-युद्ध में संस्कृति (सीता) की रक्षा के विचार में सन्निहित रहा है। यहाँ भाषा मात्र भाव या विचार प्रेषण का माध्यम भर नहीं रही है, अपितु उसके अगले सोपान पर आरूढ़ हुई है अर्थात् वह लक्ष्योन्मुख होकर अपनी संरचनात्मक सघनता में लक्ष्य साधने की दिशा में सक्रिय दीखती है। कवि जब गैया, गौरैया, बखरी जैसे सांस्कृतिक प्राकृतिक उपादानों को संकट में देख इनकी रक्षा के लिए मोह-निशा से जागकर संघर्ष का आह्वान करने लगता है, तब उसकी भाषा अनुभूति की वास्तविकता को व्यक्त करने वाली हो जाती है। नवगीतकार ने इसी गीत में विविध आधुनिक संदर्भों में त्रिपिटक का संदेश धारण करने, मोहन की वंशी में आलाप भरने, गौतम के आर्य सत्य (चत्तारि अरिय सच्चानि) की दिव्य करुणा को वरण करने, श्वेत कबूतर की रक्षा का भीष्म प्रण करने और गोकुल, गोवंश, गूजरी के साथ सबकी पीड़ा हरने का आह्वान करता है। इन ऐतिहासिक, पौराणिक, मिथकीय प्रतीकों के प्रयोग-प्रयोजन का आधुनिक बोध जितना व्यापक है, उसी के परिमाप में उतने ही सार्थक, शक्तिशाली और लक्ष्यभेदी मिथिकीय संदर्भ यहाँ प्रस्तुत हुए हैं। इनकी सूक्ष्म भाषाई विवेचना और गहन अर्थदर्शी व्याख्या एक छोटे आलेख में संभव नहीं है। सारत: यह कहा जा सकता है कि एक ही गीत में आधुनिक बोध की भयावहता को दिखाते हुए उसकी विनाश हेतु मूल्यधर्मी मिथकीय प्रतीकों, बिंबों की शृंखला प्रस्तुत कर डॉ. यायावर ने अपने इस नवगीत संग्रह के लक्ष्य को सुविचारित रूप में घोषित ही नहीं किया है, अपितु समग्र संग्रह में भाषाई स्तर पर इसका अनुप्रयोग भी किया है। आधुनिक बोध के संदर्भ में मिथिकीय प्रतीकों, बिंबों और अप्रस्तुतों के प्रयोग में डॉ. यायावर अपने समकालीन नवगीतकारों में अद्वितीय हैं। उनके गीतों में चाहे संबल दो विश्वास का हो या उजियारा तो उजियारा है- दीपक का हो या अक्षर का हो/ ये आत्म विश्वास को जागृत करने वाले व्यापक अर्थदर्शी प्रतीक हैं। गीतकार जब पार्थ को संबोधित कर आह्वान करता है कि उठो पार्थ/जो शमी वृक्ष पर/टाँगे थे दिव्यास्त्र उतारो।

तब उसके सामने कर्ण, दु:शासन, दुर्योधन, कृप और द्रोणाचार्य जैसे युद्ध-नीति कुशल योद्धा असत् और अनीति की ओर से लड़ने को खड़े दिखाई देते हैं। ये सभी मनुष्यता के शत्रु हैं, इसलिए कवि का आह्वान है कि-

प्रत्यंचा पर धरो दिव्य सर / सब अरि हैं बढ़कर ललकारो।

इसी प्रकार- गरज रही स्वर्णिम लंका गीत में स्वर्णिम विशेषण की विविध अर्थच्छवियों को संपूर्ण आर्थी व्यंजना के साथ बिंबित किया गया है। इस स्वर्णिम लंका की गर्जना में शूर्पणखा की अहंकारी हुंकार है, कुंभकर्ण का विशाल सागर-संतरण का डंका घोष है, कंचनमृग की भ्रममूलक माया है, जो सीता के मन को भटका रहा है, उद्वेलित लक्ष्मण का मन है, छल का सिंहासन है, सोने की स्वप्निल लंका है। यह आधुनिकबोध का मिथकीय तिलिस्म है जो इन भाषाई प्रतीकों में बहुत स्पष्टता से अभिव्यंजित हुआ है। इस तिलिस्म में-

अस्मिता जानकी अपहृत है / खो गए जटायु के संबल / फिर नागपाश ब्रह्मस्त्र लिए / रण में आया घननाद प्रबल / सौमित्र शक्ति से आहत हैं।/ हिल गया इधर मन विश्वासी / पैशाचिक माया फैलाकर / तम का दशशीश अट्टहासित / युग-युग तक चलती रामकथा को / कौन करेगा परिभाषित।

इस युगों-युगों से चली आती रामकथा में स्थितियाँ, पात्र और परिणाम वैसे ही हैं।

मन पत्थर के नवगीत संग्रह में प्राकृतिक बिंब भी सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षक बनकर उभरे हैं। उनके बीच का रागात्मक संबंध मानवीय संबंध से अधिक उदात्त और स्पृहणीय है :

नीम कटा जिस दिन द्वारे का / उस दिन रोई बहुत चमेली/ आँगन की तुलसी मुरझाई / काँपी थर-थर रिक्त हथेली।

नवगीतकार सिवान गाँव को स्पर्श करने वाली जिस नदी को याद करता है उसके किनारे कभी मनौतियों के अंबार लगते थे, नव दंपत्तियों के कंगन सिराये जाते थे....दादी की पोते की इच्छा, विरहिन के मन का प्रियागमन, प्रेम भरी बहिन की राखी, भाई के माथे का चंदन.... सब लेकर हँसती बहती थी/उत्सव उल्लास उफान लिए। वह नदी अब अंतर्ध्यान हो गई है। यह सांस्कृतिक मूल्यों की बड़ी क्षति है। ऐसी विलुप्त सांस्कृतिक छवियों की अमूल्य क्षति को उल्लिखित संग्रह के अनेक गीतों में आंतरिक पीड़ा के साथ प्रस्तुत किया गया है, इससे नवगीतकार का इन परंपरागत मूल्यधर्मी छवियों के साथ गहरे लगाव को अनुभव किया जा सकता है। बतियाती नदिया, छवियाँ अनजानी, सागर पर पानी, ये छवियाँ हमारी सांस्कृतिक धरोहर थीं, मूल्यों की संरक्षिका और भारतीय लोक चेतना की संवाहिका थीं। पश्चिमी सभ्यता के प्रसार और अपसंस्कृति के आघातों ने इन मूल्यवान छवियों को क्षतिग्रस्त किया है। अत्याधुनिक युग में इन छवियों का स्मरण नवगीत की सांस्कृतिक चेतना का साक्षी है, जिसे नवगीत की भाषाई सहजता और व्यंजनात्मक अर्थदर्शी सघनता ने आज भी जीवंत बना रखा है।

अंत में गीतकार उमाकांत मालवीय के नवगीत संग्रह एक चावल नेह रींधा से कुछ संदर्भों का विश्लेषण भाषाई दृष्टि से आवश्यक समझता हूँ। पारिवारिक रागात्मक संबंधों की गहराई समझने के लिए चंद्रमा उगा महत्त्वपूर्ण है। गीत में माँ है, बहिन है, प्रिया (पत्नी) है और परदेश में है एक युवक, जो माँ का बेटा, बहिन का भाई तथा प्रिया का प्रियतम है। वह तीन पृथक संदर्भों में तीनों को पृथक-पृथक रूप में याद करता है। वे तीनों संदर्भ भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के साथ गहराई से जुड़े हैं : एक गणेश चौथ ; दूसरा बहुला चौथ और तीसरा करवा चौथ से संबंधित है।

पहला संदर्भ :

परदेश में बेटा माँ को याद करता है : चंद्रमा उगा / गणेश चौथ का!/ माँ तुमने अर्घ्य दिया होगा मेरे

लिए,/ दिन भर उपवास किया होगा मेरे लिए;/ बेटा, परदेश में न सो सका!/ भरी-भरी आँख ही सँजो सका।/ चंद्रमा उगा गणेश चौथ का!

दूसरा संदर्भ :

परदेश में भाई, बहिन को याद करता है :

चंद्रमा उगा/ बहुला चौथ का/ बहिना ने अर्घ्य दिया होगा मेरे लिए,/ दिन भर उपवास किया होगा मेरे लिए,/ बीरन परदेश में न सो सका,/ भरी-भरी आँख ही सँजो सका।/ चंद्रमा उगा बगुला चौथ का!

तीसरा संदर्भ :

परदेश में प्रियतम प्रिया (पत्नी) को याद करता है :

चंद्रमा उगा/करवा चौथ का,/ तुमने भी अर्घ्य दिया होगा मेरे लिए,/ निर्जल उपवास किया होगा मेरे लिए;/ प्रियतम हारा-हारा औ थका/ भरी-भरी आँख ही सँजो सका।/ चंद्रमा उगा करवा चौथ का!

ये तीन संदर्भ पुरुष के जीवन की तीन घटनाएँ हैं। तीनों ही पारिवारिक संदर्भ में रागात्मक संबंधों की गहराई की मापक हैं। माँ और पत्नी के लिए तुमने संबोधन, बहिन के लिए नामवाची बहिना। आत्मीयता तीनों संबोधनों में है, किंतु सार्वनामिक पद की अपेक्षा नामपद में अधिक है। पत्नी के लिए तुमने भी का प्रयोग माँ के लिए प्रयुक्त तुमने से अर्थगत विलक्षणता लिए है भी- आश्वस्ति में कमी को संकेतित कर रहा है। प्रियतम के लिए प्रयुक्त हारा-हारा और थका विशेषण पति-पत्नी के बीच संबंधों में आए ह्रास को प्रदर्शित कर रहा है। हार और थकान का अनुभास इसी को संकेतित करने वाले अंगीय विकार हैं। संबंधों का रूप और उनकी गहराई कैसी भी और कितनी भी हो पर परदेश में जब अपने स्वजन की या अपने आत्मीय की याद आती है, तो व्यक्ति आँख के आँसुओं का ही संग्रह कर पाता है। तीनों संदर्भों में इस तरल अनुभव में कोई अंतर नहीं है, जिसे सरल और सरल भाषा में अभिव्यंजित किया गया है। चंद्रमा चाहे गणेश चौथ का हो या बहुला चौथ का या फिर करवा चौथ का। वह हमारी संस्कृति और हमारे पारिवारिक कोमलतम रागात्मक संबंधों की बार-बार दुहराई जाने वाली कथा है, ताकि व्यक्ति इन सांस्कृतिक उपादानों की अर्थगत गहराई को मापता रहे और जीवन में इनके महत्त्व का अनुभव करता रहे। अंतस् की सूक्ष्म कोमल संवेदनाओं को व्यक्त करने के लिए सांस्कृतिक प्रतीकों और प्राकृतिक उपादानों से अलंकृत बिंबों का नवगीत की भाषा में पर्याप्त प्रयोग हुआ है। मेघदूत में कालिदास के यक्ष की तरह उमाकांत मालवीय की भाषा का निम्नलिखित बिंब दृष्टव्य :

उस ओर जा रहे पाहुन/ मेरी भी अरज जरा सुन / उन शिखरों से मेरे प्रणाम कहना / गंगा से मेरी राम-राम कहना।/ झरनों को/ मेरा अता पता देना,/ जो कुछ देखा है/ उसे बता देना/ उन सबकी खातिर कोई हुड़क रहा,/ यह देवदारु से सुबह शाम कहना।

जिस आत्मीय विश्वास के साथ इस गीत का नायक उस पाहुन, से जो निश्चित मेघ ही होना चाहिए क्योंकि वही है, जो जड़ होकर भी चेतन (गत्वर) है और जो उस ओर जा रहा है, जिधर उसकी प्रिया किंवा प्रकृति प्रिया रहती है, अनुनयपूर्वक विनय करता है। विशेष बात यह है कि वह सीधे-सीधे अपनी बात नहीं कह रहा (कहीं स्वार्थी न समझा जाए), अपितु पाहुन से उसी के अत्यंत आत्मीय पर्वत के तुंग शिखरों और गंगा को उसकी ओर से पहले प्रणाम निवेदित करने को कहता है, फिर झरनों से वह सब

कुछ बताने के लिए निवेदन करता है, जो उस पाहुन ने स्वयं प्रत्यक्ष देखा है। उसके इस कथन की मार्मिक गहराई को कौन मापेगा? जिसमें वह कंठसुर की अत्यंत तरल विनम्रता के साथ कहता है कि–

उन सबकी खातिर कोई हड़क रहा,/ यह देवदारु से सुबह शाम कहना।

अद्भुत है यह प्रकृति प्रेम। यह वह प्रकृति है, जो भारतीय संस्कृति और मानवीय जीवन से सदा अंतरंग रही है, जिसके बिना मानव जीवन की कल्पना तक हमारे ऋषियों ने नहीं की। आज वही प्रकृति मानव के अतिचार से क्षत-विक्षत हो कराह रही है। इस ओर ध्यानाकर्षण करने से बढ़कर मानवीय मूल्य क्या होगा? और इस सांस्कृतिक बोध से अधिक सार्थक आधुनिक बोध और क्या हो सकता है? आधुनिक बोध के नाम पर जो केवल कुरूपता देखने के अभिलाषी हैं, उन्हें एक बार उमाकांत मालवीय के एक चावल नेह रींधा को पढ़ना चाहिए, जिसमें प्रकृति, राग और अनुराग की संवेदनाओं के मंत्रमुग्ध कर देने वाले बिंब उपस्थित हैं :

1. गुनगुनाती पाँत/ भँवरों की चली/ लाज से दुहरी हुई जाती कली।
2. गंगा नित्य रँभाती बढ़ती जैसे कपिला गइया,/ सारा देश क्षुधातुर बेटा, वत्सल गंगा मइया।
3. बाँहों में मोगरे गूँथता अलकों का मधुवन।
4. मंगलघट पर अंकित फूल स्वस्ति का हुआ,/ राधा तो श्याम हुई, श्याम राधिका हुआ।

मिथक के प्रयोग भी सांस्कृतिक संदर्भों को साथ लेकर चलते हैं, द्रष्टव्य :

1. राधा वेणु बनी माधव के/ होठों से लगकर,/ वंशी का आधार शहद से/ सिंचित एक अधर।

इसी मिथक को नवगीतकार एक कलात्मक बिंब से भी संयुक्त कर उसे एक नई अर्थ भंगिमा प्रदान कर देता है :-

बाँहों में मोगरे गूँथता अलकों का मधुवन।

नवगीत में प्रकृति और प्रणयराग की जीवंतता का आधार भाषाई मिथ और बिंब बनते रहे हैं।

उमाकांत मालवीय के उक्त नवगीत संग्रह में अप्रस्तुत विधान भी प्रकृति, राग और अनुराग की संवेदना को ही सौंदर्य संवलित कर उसे तीव्र से तीव्रतम करने में समर्थ हुआ है, यथा–

1. पुष्पधनु भौंहें, भँवर अरुणाभ गालों पर।
2. बाँह द्वै, ज्यों इंद्रधनु दो टूक कर डाला।
3. बेलपत्र सी पलकों पर। तुलसीदल से चुंबन/लाक्षणिकता और व्यंजकता के लिए मुहावरों का प्रयोग भी नवगीतकार ने किए हैं :

दूध के धोए गुटरगूँ/ पर न रेंगी कानों पर जूँ।

सार यह कि उमाकांत मालवीय का समीक्ष्य नवगीत संग्रह प्रकृति और प्रणयराग की दृष्टि से एक उदात्त और मूल्यधर्मी रचना है। प्रकृति प्राणिमात्र की माँ है जिसके आँचल में खेलते हुए वह बड़ा हुआ है। साथ ही हृदय के धर्मों में प्रेम सर्वस्वीकृत, सव्यापी, ससरस और उदात्त धर्म है। सांस्कृतिक संदर्भों में प्रयुक्त भाषाई निकष पर आज का नवगीत प्रयोगधर्मी है। यह प्रयोगशीलता ही उसकी नवता की प्रामाणिकता है।

सम्पर्क : *फिरोजाबाद (उ.प्र.)*
मो. 9826630029

डॉ. शीला पाण्डेय

नवगीत में महिला नवगीताकारों के स्वर

1. स्त्री नवगीतकारों के नवगीतों में कथ्य एवं संवेदनाओं की व्यापकता

महिला नवगीतकारों के कथ्यों एवं संवेदनाओं की व्यापकता, मात्र दो नवगीतों के अंशों में ही अपने विस्तृत फलक का परिचय प्रदान करने में सक्षम सिद्ध हो जाते हैं। जब हम इन्हें पढ़ते हुए गहराई से इनसे गुजरते हैं, तो हम नवगीतों के विस्तृत फलक के दर्शन करते हैं।

एक नवगीत का अंश देखें -

'लम्बा होगा सफर साथ/गुड़धानी रखना मन/झोले में गमछा, पीने का/पानी रखना मन' (राजकुमारी रश्मि, नोयडा),

इसी प्रकार एक और नवगीत का अंश देखें -

'भीत ढहाकर नींव खोदते/ईंट बिछाते हैं/नये मसीहा देश जोत/मजदूर उगाते हैं/काँधों-काँधों देश उठेगा/देश-विदेशी साथी लेकर/हौदा रख प्राचीन मनौती/सज निकलेगा हाथी थेथर/झुंड-मुंड बलिदान चढ़ाकर/भोग लगाते हैं।' (- शीला पांडे लखनऊ)

पहला नवगीत अंश जहाँ नवगीत की लम्बी यात्रा की तैयारी का मजबूत पायदान गढ़ता दिखता है, वहीं दूसरा नवगीत अंश भविष्य द्रष्टा की भूमिका का बोध कराता हुआ, गुजरते वर्तमान काल की परखकर, भीषण, संक्रमण समय को नवगीत में दर्ज करता है। इसका उत्कर्ष आपको व्यापकता के शीर्ष पर लाकर खड़ा कर देता है। स्त्री नवगीतकारों के स्वरों में कथ्यों एवं संवेदनाओं की व्यापकता सुनहरे अक्षरों में अंकित होती है।

2. स्त्री नवगीताकारों के नवगीतों में सत्ता एवं व्यवस्था

स्त्री नवगीतकारों के नवगीतों में सत्ता एवं व्यवस्था की स्थिति का अनावरण व्यंजनात्मक शिल्प में बहुत ही प्रभावी ढंग से मुखरित होता है। जब अरुणा दुबे कहती है-

'दर्पण किसे/दिखाने लाए/सत्ता तो गाँधारी है

सावन के अंधे राजा की/हरे काँच की आँखें हैं/जितनी उजली देह/कहीं ज्यादा उजली पोशाकें हैं/लोकतंत्र की सुंदर ट्रे में/जनता कटी सुपारी है।' (अरुणा दुबे, कटनी)

(संकलन-स्त्री नवगीतकार संचयन-'सूरज है रूमाल में' - शीला पांडे, पृ.सं.-127)

3. स्त्री नवगीतकारों के स्वरों में जीविका का संघर्ष

वर्तमान समय में जीविका का संकट और उसका संघर्ष मनुष्य को भीतर तक तोड़ रहा है। मनुष्य के भीतर की मनुष्यता को परे ढकेलकर यह निष्ठुर श्रम और मानसिक संतास को आभूषण की भाँति रोपित कर रहा है। जीविका का पथ-संघर्ष इतना संवेदनाहीन हो चुका है कि इन्सान क्षण-क्षण शुष्क और नीरस बन रहा है। पूँजीवाद और बाजारवाद ने उद्विग्नता और आवेग से भर कर मँहगाई की रफ्तार को पाने और पकड़ने में तेज गतिशील स्वचालित यन्त्र की भाँति अभीष्ट तक लक्ष्य पूरा करने को बाध्य कर दिया है। प्रस्तुत तीन नवगीतों के छोटे-छोटे अंशों में पूरा ब्यौरा छाप कर हम इस सत्य को भीतर तक स्वत: चस्पा कर लेते हैं, जब हम इनको पढ़ते हैं-

'नून, तेल, लकड़ी की चिन्ता/आधि-व्याधि/सिर पर फिरते हैं/जोड़-गाँठ कर/श्रम से लाया/दाना-दाना महँग पड़ा है/शीश जुआठा/नाधे-नाधे/नस, गर्दन, कंधा अकड़ा है

तीस दिनों की कड़ी कमाई/एक तिहाई दिन सिरते हैं'

एक और नवगीत का मुखड़ा और आखिरी बन्ध -

'मूँछ मरोड़ें जंगबहादुर/घर में है टकसाल/लाख टका तनख्वाह टेंट में/बच्चे दो खुशहाल
शेर शेरनी थके पड़े हैं/श्वेत केश हैं डरते/पेंशन के सब गये सहारे/करजा लेकर मरते
पंछी दूर देश में भटके/आँखों आगे तिरते/छू मंतर हो गयी जीविका/बच्चे हैं बेहाल।'

(- शीला पांडे, लखनऊ)

पाण्डुलिपि - 'गाँठों की करधनी'

'निजी नौकरी या सरकारी, दोनों करें हलाल/नहीं सुनिश्चित कुछ भी दिखता, करते मौज दलाल
नब्बे प्रतिशत वाले घूमें, सड़कों पर बेकार/आरक्षण में भाग्य सुलगता, ठोंकें नेता ताल।'

(पुष्पलता शर्मा, नई दिल्ली)

(पुस्तक-स्त्री नवगीतकार संचयन-'सूरज है रूमाल में' -शीला पांडे, पृ.सं.-180)

4. स्त्री नवगीतकारों के नवगीतों में विसंगतियों के स्वर

'जलते-जलते बुझ जाते हैं/ये सिगार-से दिन
संघर्षों के जूते घिस जाते हैं पैदल चलते
लेकिन हाथ हताशा आती संध्या ढलते-ढलते
आशा के घुटने टूटे चढ़कर चिनार-से दिन (-रजनी मोरवाल, जयपुर)

(संकलन-स्त्री नवगीतकार संचयन-'सूरज है रूमाल में' शीला पांडे, पृ.सं. - 281)

'इस चटक धूप में/आँगन बीच पड़े/बदरंग हो गये/अधसूखे कपड़े
सुर्खीवालों में/दाग अधिक उभरे /कुछ छपे छींट वाले/हलके गहरे /सादे सफेद भी/रहे न बिन बिगड़े

चढ़ते सूरज को/दोषी कौन कहे/रंगीन, छपा, उजला/बच स्वयं रहे /ऊँचे से नीचा/कब तक उचक लड़े।' (-सरोजिनी अग्रवाल, लखनऊ)

(साहित्यगंधा पत्रिका - स्त्री नवगीतकार अंक - पृ.सं.-3)

5. स्त्री नवगीतकारों के नवगीतों में सांस्कृतिक आयाम

स्त्री नवगीतकारों के नवगीतों में भारत की संस्कृति का अतीत, वर्तमान तथा बदलते समय में शीघ्रता से बदलता उसका स्वरूप दिखाई देता है। गाँवों और नगरों के पारम्परिक विरासत का हस्तान्तरित होता परिवर्तित स्वरूप और समयकाल की धार पर ढलती संस्कृति की गढ़न ने अब नया आकार और तत्व धारण कर लिया है। मूल बात यही है कि आज भी भारत की संस्कृति अपनी आत्मा में मानवीय मूल्यों का प्राण धारण करती है। कम से कम यही धारण करना स्वीकारती है। प्रकृति, पर्यावरण और लोक जीवन का संगम ही संस्कृति है। हम देखते हैं कि यशोधरा यादव 'यशो' के नवगीत में गुड़धानी का स्वाद भी जिह्वा पर अमृत रस खोल जाता है–

'आज गुड़धानी का मन को स्वाद आया
भूलकर वह एक अरसे बाद आया

गेहुँओं की बालियों का दूधिया आनन्द
जब सुनहरी नाचतीं वे बालियाँ मदमन्द
झोलियों में भर चबैना, खेलना वह याद आया

गेहुँओं को डालता झटपट चलाता था
दूजे बर्तन डालता फिर खलबलाता था
हर तरफ फिर उठ रहे उस, गंध का उन्माद छाया।' (–यशोधरा यादव 'यशो' आगरा)

(संग्रह– 'मन मेरे चल ले अँगड़ाई' – पृ.सं. –158)
'जल रहा अलाव/लोग भी होंगे वहीं
कहीं कोई सुना रहा/विषाद की व्यथा–कथा
कोई काँधे हाथ धर/निभा रहा चिर प्रथा
उलझनों की गाँठ सब/खेलते होंगे वहीं।' (–शशि पाधा, अमेरिका)

(साहित्यगंधा पत्रिका – स्त्री नवगीतकार अंक – पृ.सं. –28 / 'वनवासी–सी)
चहक रही है/धूप सुबह की
बिटिया के गालों/को हौले चूम रही है
लहराती फसलों से/मिलकर झूम रही है
हर चूल्हे में दहक रही है/धूप सुबह की।' (–यशोधा राठौर, राँची)

गाँव की बदलती संस्कृति का यह रूप भी देखें–
'फटक रही हूँ एक नयापन/एक आँखों को सूप
प्याऊ छोड़ गाँव भी पीता/अब डिब्बे का नीर

न्यू जेनरेशन के दिमाग में/अपनी ही प्राचीर
नदिया बन शहरों से जुड़ते/अब गाँवों के कूप।' (रूपम झा, बिहार)
(संकलन-स्त्री नवगीतकार संचयन-'सूरज है रूमाल में' - शीला पांडे, पृ.सं.-270, 316)

6. स्त्री नवगीतकारों के नवगीतों में राष्ट्रीयता बोध
आ चल बुनें राष्ट्रीय स्वेटर /सहिष्णुता की ऊन का गोला,
सलाइयाँ सद्व्यवहार की/रंग-रंग के डालें बूटे,
मनुसाई कतारें प्यार की/करें बुनाई सब मिलजुल कर।
आ चल बुनें राष्ट्रीय स्वेटर। (राजेश कुमारी 'राज', मुम्बई)

(पुस्तक - स्त्री नवगीतकार संचयन- 'सूरज है रूमाल में'- शीला पांडे, पृ.सं.-311)

7. स्त्री नवगीतकारों के नवगीतों में जीवन का उत्सव

डॉ.शान्ति सुमन जी के नवगीतों में अक्सर हमें जीवन-उत्सव के समारोह देखने को मिलते हैं, अंश देखें-

'भीग रहा कंगन पानी में/पानी धुलता है
पनिहारिन हँसती तालों में/मोती खिलता है

चिड़िया के घर में उत्सव है/दाना-पानी का
है मिलान तितली-पंखों से/चूनर धानी का
बड़े यतन से मन माने का/माणिक मिलता है।' (- डॉ. शान्ति सुमन, झारखण्ड)
(पुस्तक-स्त्री नवगीतकार संचयन-'सूरज है रूमाल में' - शीला पांडे, पुं.सं. - 352)

इसी तरह कल्पना मनोरमा के नवगीत का यह अंश भी कठिन से कठिन जीवन को उत्सव में बदलने की क्षमता रखता है। यह दृष्टि जीवन के संघर्ष को सहर्ष स्वीकारने का उत्सव भी है-

'क्रुद्ध निहाई से चिंगारी, छूट रही है/जुगिनी रानी जीवन लोहा, कूट रही है

नेह छुपाकर रख लेती, गाड़ी के नीचे/दुलराती किलकारी अपनी, आँखें मींचे
करती घन से वार बनाती, मुदरी छल्ला/गठी-गठी काया तर, चिपका गीला पल्ला
खिले-खिले मुखड़े से, लाली फूट रही है।'
(कल्पना मनोरमा, दिल्ली/साहित्यगंधा पत्रिका - स्त्री नवगीतकार अंक - पृ.सं.-15)

जीवन के उत्सव का एक रंग यह भी देखें-

'घर की दुआर तक/आ गयी है धूप
छोटा सा बिरवा/करेर हुआ बप्पा
फल-फूल ठाँव-ठाँव/लटका है झौप्पा

निर्मल - सा पानी से/भर गया है कूप

चिड़िया के चूजे/हुए सब सयाने
द्वारे पे लाये हैं/फसलों के दाने

मह-मह महकते, जब/झरते हैं सूप।'
(शीला पांडे, लखनऊ /पाण्डुलिपि - 'गाँठों की करधनी')

8. स्त्री नवगीतकारों के नवगीतों में सामाजिक विसंगतियाँ

समाज और व्यवस्था में गिरते मूल्य एवं सिद्धांत झूठ, छल, बेइमानी, नैतिक ठगी और भ्रष्टता की बेशुमार फसल पैदा कर रहे हैं, जिसका प्रभाव जन-जीवन पर पड़ रहा है-

'तड़ीपार हो गया समय लो, सम्बोधन सब नकली
सोने चाँदी वाले दिन अब, पहने पीतल हँसुली

कलई चढ़े रिश्तों की बातें, किसको क्या बतलाएँ
संदूकों में रखे हुए खत, रद्दी में बिक जाएँ

सुमिरन में तड़पें बीते दिन, यहाँ जाल में मछली' (- मधु प्रसाद, अहमदाबाद)

'अस्मिता के प्रश्न पर जग मौन है/भावनाएँ मर गयीं/हम मात्र संबोधन जिए'
(भावना तिवारी, कानपुर)

'जाने क्यों रुक-रुक जाती है/मेरी साँसों की झंकार
जब भी काले दिन पढ़ते हैं/अगली रातों के अखबार' (डॉ. रमा सिंह दिल्ली)
(संकलन - स्त्री नवगीतकार संचयन -'सूरज है रूमाल में' शीला पांडे, पृ.सं.-231, 209, 291)

9. स्त्री नवगीतकारों के नवगीतों में स्त्री-संघर्ष

स्त्री नवगीतकारों के नवगीतों में स्त्री-संघर्ष का स्वर अटा पड़ा है। होगा भी क्यों नहीं जबकि एक स्त्री नवगीतकार भी स्त्री की उसी संघर्ष-पूर्ण दशा को जी रही है फिर तो उसकी कलम के शब्द भी स्त्री-

संघर्ष की वेदना को रचने में कब चूकते हैं-उदाहरण के लिए कुछ नवगीतों के अंश देखें-

'दिनचर्या के गुणा-भाग से
रधिया ने नवगीत रचा

जाग, जगा प्रातः तारे को
प्रथम सँभाली कर्म-कलम
भरी विचारों की स्याही
चल पड़ी उठा लयबद्ध कदम
लेखा-जोखा घर-घर का था
रहा हृदय में द्वंद्व मचा।' (- क्ल्पना रमानी, मुंबई)

(समकालीन गीत कोश - नचिकेता, पृ.सं.-182)

एक और नवगीत का अंश -
'शहरों में, कस्बों में पढ़ती हैं/गाँवों की लड़कियाँ

साइकिल चलाती हैं, पैदल भी चलती हैं
लौटती दुपहरी में, बस में भी जलती हैं
भीड़ भरी सड़कों की, आवारा लड़कों की
आँखों में गड़ती हैं, गाँवों की लड़कियाँ।' (डॉ. प्रभा दीक्षित, कानपुर)

(संग्रह - 'गौरैया धूप की', पृ.सं.-2)

10. स्त्री नवगीतकारों के नवगीतों में ग्राम्य-जीवन

ग्राम्य-जीवन के इस नवगीत में भी डुबकी लगाकर मन को तृप्ति करना जरूरी है, अंश देखें-

'चलो चलें खेतों से/साग खोट लाएँ

गेहूँ के खेतों से/सरसों हैं पाये,
बथुआ भी कोंइछा में/फूला समाये

बातों का गलचउरा,/हंसिनियाँ खेतों में
झुकीं छोट जाएँ/नून, मिर्च, लहसुन की/चटनी हथेली/धरे हाथ बैठी हैं/पंगत, सहेली
अचरा से पोंछ-पोंछ/चना खोंट गाल भरें/हँसें लौट जाएँ।' (- शीला पांडे, लखनऊ)

(पाण्डुलिपि -'गाँठों की करधनी')

11. स्त्री नवगीतकारों के नवगीतों में पारिवारिक आयाम

'माथे पर चुहचुहा रही जो बूँद पसीने की
मुझको देती सतत प्रेरणा हँसकर जीने की

जब भी हारे-थके कहीं से तुम घर आते हो
केवल ठण्डा पानी पीकर थकन मिटाते हो
मुझको अपनी फटी शाल लगती पश्मीने की।'
(अरुण दुबे, कटनी)

(संकलन -स्त्री नवगीतकार संचयन - 'सूरज है रूमाल में' - शीला पांडे, पृ.सं. - 125)

12. स्त्री नवगीतकारों के नवगीतों में प्रकृति एवं पर्यावरण

स्त्री और बालमन नैसर्गिक रूप से प्रकृति एवं पर्यावरण के बहुत नजदीक होते हैं, इनके अन्तर्मन एक-दूसरे में व्यवहार के रूप में आबद्ध होते हैं। यह बात इस नवगीत के अंश से प्रमाणित होती है-

'रीत गई पेड़ों की जेब/पतझड़ तू जा

पुरवा की आहट से/अलसायी भोर जगी
तरु पल्लव शाखों में/उगने की होड़ लगी
पीलापन आप ही सहेज/पतझड़ तू जा।'

(साहित्यगंधा पत्रिका - स्त्री नवगीतकार अंक-पृ.सं.-22)

एक और नवगीत का अंश -

'सूखी नदिया, झील पियासी/पानी माँगे ताल
मौसम के सिर चढ़कर नाचे/फिर अगिया बैताल

उल्टी सीधी शर्त लगाये/नाचे दे-दे ताली
सुलग रहा है बिरवा-बिरवा/झुलस रही हर डाली
ढूँढ़े मिले न उत्तर ऐसे/पूछे कठिन सवाल।'
(मधु शुक्ला, भोपाल)
(संकलन - स्त्री नवगीतकार संचयन-'सूरज है रूमाल में' - शीला पांडे, पृ.सं. -238)

13. स्त्री नवगीतकारों के नवगीतों में सहजता, सरलता, रस और प्रवाह

'स्त्री नवगीतकारों के नवगीतों में सहजता, सरलता, रस और प्रवाह देखते ही बनता है। नवगीत का अंश देखें-

'देख उबलती खिचड़ी मन की हांडी में/आज तवे पर जल बैठी फिर से रोटी'
(राज कुमारी 'राज')
(संकलन-स्त्री वगीतकार संचयन-'सूरज है रूमाल में' -शीला पांडे, पृ.सं. - 313)

'आम बौराए, झरी है/नीम मेरे गाँव में
फूटता सेमल लिपटता/राह चलते पाँव में'
(-रंजना गुप्ता, लखनऊ) / (संग्रह -'सलीबें', पृ.सं् - 41)

14. स्त्री नवगीतकारों के नवगीतों में भाषा की नवीनता

आधुनिक समय के सभी वस्तु-विशेष, उपकरण और आचरण जब नवगीतों में स्वर पाते हैं, तब वे व्यंजनायें यथार्थ की आत्मा के अनुरूप वस्त्र धारण कर एकरूपता प्रदान करके समग्रता को पोषित करती हैं। इस नवगीत का अंश देखें-

'नदी बह रही तेज समय की/अंजुलि भर हम पी पाते हैं

अंदर से हम रीत रहे हैं/प्यास हो गई मरुथल जैसी
जीत रहे या बीत रहे हैं/सोच हुई है दलदल जैसी
हुए लैमिनेटेड मन अपने/खुद में खोकर रह जाते हैं।'
(गरिमा सक्सेना, बंगलौर)
(संकलन -स्त्री नवगीतकार संचयन -'सूरज है रूमाल में' शीला पांडे, पृ.सं.-170)

15. स्त्री नवगीतकारों के नवगीतों में प्रेम का संसार

नवगीत का प्रेम व्यावहारिक जीवन में आत्मा में बसता वह प्रेम है जो कार्य-व्यवहार और आचरण के रूप में एवं एक सोच के रूप में जीवन में परिणति पाता है। अर्थात् प्रेम के वशीभूत जिया हुआ आचरण और सोच जब प्रकृति और जीवन से संगत करता हुआ बहता है, सत-पथ कर्मी की तरह प्रेम कर्म-व्यवहार की भाषा बनकर फूटता है, वही नवगीत का यह प्रेम है। डॉ. शरद सिंह के नवगीत में प्रेम का संसार कुछ यूँ बसता है-

'भीगी यादें नदिया तीरे/काँप रही हैं धीरे-धीरे
रेती ने कुछ चिह्न सहेजे/और सहेजे फूटे कुल्हड़
चुप-चुप बैठे तट के आगे/चार घड़ी का था इक हुल्हड़

भीगी यादें नदिया तीरे/हाँफ रही हैं धीरे-धीरे।' (डॉ. शरद सिंह, सागर)
(पुस्तक स्त्री नवगीतकार संचयन - 'सूरज है रूमाल में' (- शीला पांडे, पृ. सं.)

वहीं शार्दुला नोगजा के गीतों में प्रेम का संसार विचारों में परिणति पाकर, विसंगतियों के प्रस्तर पर प्रहार करते हुए फूटता है। अंश देखें-

'दे नहीं पाये तिमिर में, तुम मुझे आलोक के क्षण
कह नहीं पाये जगत से, मैं मिली हूँ प्रेरणा बन

नेह घटते दीप का, उपहार लेकर क्या करूँगी
कान में यूँ फुसफुसाता, प्यार लेकर क्या करूँगी

किन्तु मैं भी स्वयंसिद्धा, मैं नहीं कोई भिखारिन
प्रेयसी मैं हूँ तुम्हारी, मैं नहीं सरला पुजारिन

अहम से लिपटे कनक का, दान लेकर क्या करूँगी
भावना से हीन झूठा, गान लेकर क्या करूँगी।'
(शार्दुला नोगजा, सिंगापुर)
(संकलन-स्त्री नवगीतकार संचयन - 'सूरज है रूमाल में')(- शीला पांडे, पृ.सं.-332, 363)

16. स्त्री नवगीतकारों के नवगीतों में दार्शनिक आयाम

जीवन की आपाधापी में दौड़ते-भागते जीवन की रफ्तार जब थमती है तभी हमारे भीतर की यात्रा का, उसके रसपान का, शन्ति का, करुणा और विश्राम का अनुभव हम प्राप्त करते हैं, पूरी मानवता के प्रेम में करुणामय हो जाते हैं । नवगीत का अंश देखें -

'हे पथिक! / तू रुक जरा
क्षण भर ठहर/विश्राम कर ले

वेदनाएँ हैं अमंगल/मंगलों की कामनायें
प्राण भर डरती हवा है/काँपती हैं यातनायें
हे पथिक!/तू प्रात तक रुक/रात को आराम कर ले।' (-शीला पांडे, लखनऊ/ (पाण्डुलिपि - 'गाँठों की करधनी')

17. स्त्री नवगीतकारों की नवगीत-यात्रा का सोपान

अनेक पड़ावों और विविधता की पथरीली चट्टानों को नरम दूबों से सजातीं, मखमली अनुभूतियों

की चाशनी में लपेटतीं, आभूषण की भाँति तराशकर उन्हें धारण करतीं, नवगीतकार स्त्रियाँ अपने नवगीतों की यात्रा को कुछ यूँ सोपान दे रही हैं-

'बंजर का शाप तोड़/हरियाली बोने दो
सर्जक हल कलम जोड़/नई फसल होने दो

चटकें, अँकुराएँ/ठुकराई सूखी पर्तें
उखड़ें जड़ से बबूल/टूटें घातक शर्तें

बिरवों को, बच्चों को/बेखटके सोने दो
शिविरों की कूटनीति/उग्रों का पाप कटे
काला हर काम मिटे/मौसम का ताप छँटे

शिविरों की कूटनीति/उग्रों का पाप कटे
काला हर काम मिट/मौसम का ताप छँटे

कालों के तर्पण को/दीप-जले दोने दो'
(डॉ. सरोजिनी अग्रवाल)

(-पुस्तक - स्त्री नवगीतकार संचयन-'सूरज है रूमाल में' - शीला पांडे, पृ.सं.-373)

इस प्रकार हम स्त्री नवगीतकारों के नवगीतों में प्रत्येक आयाम से आश्वस्त होते हैं कि स्त्री नवगीतकारों की लेखनी समयकाल का बोध रखने वाली, धारदार, पुष्ट एवं प्रखर है जो सिर्फ नवगीत के ही संसार में नहीं, बल्कि समूची कविता के संसार में अपनी मुख उपस्थिति दर्ज करती है।

सम्पर्क : *लखनऊ (उ.प्र.)*
मो. 9935119848

डॉ. भारतेंदु मिश्र

पास आती जा रही है जिन्दगी : वीरेन्द्र मिश्र

समग्र जीवन को गीत में लिखने और गाने वाले कवि वीरेन्द्र मिश्र नवगीतकारों के लिए आज भी प्रेरणास्त्रोत हैं। वे कहते हैं - जन्म से मुझको मिली है / जो विरासत में निशानी / वह निशानी गा रहा हूँ / मन नहीं बहला रहा हूँ। (जिन्दगी का गीत-127 गीतम)

हिन्दी नवगीत के उन्नायकों में शंभुनाथ सिंह, मुकुट बिहारी सरोज, ठाकुर प्रसाद सिंह, रमेश रंजक, देवेन्द्रकुमार, रामदरस मिश्र, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, देवेन्द्र शर्मा 'इंद्र' जैसे जिन यशस्वी गीत-नवगीत कवियों का उल्लेख लगातार किया जाता है, उनमें वीरेन्द्र मिश्र जी का नाम भी अग्रणी रूप से चर्चित रहा है। शंभुनाथ सिंह जी की 'नवगीत दशक' योजना में शामिल न होने के कारण उनकी चर्चा कम होती है। वीरेन्द्र मिश्र जी अपने सांस्कृतिक मूल्य और जीवन के सरोकारों को भली-भाँति जानते हैं, जीवन के दुःख और दर्द को समझते हुए रूढ़ियों को संशोधित करते हुए नवगीत के पथ पर आते हैं। वे केवल मारवाड़ी श्रोताओं का मन बहलाने वाले मंचीय कवि कभी नहीं रहे। सौभाग्य वश उन्हें मध्यप्रदेश की धरती ग्वालियर और इंदौर जैसी सांस्कृतिक भूमि मिली तो दूसरी ओर वे मुम्बई और दिल्ली जैसे महानगरों में भी जीवन समग्र का अनुभव करते रहे। निश्चय ही 'नवगीत दशक 1' में संग्रहीत उस समय के सभी दसों नवगीतकारों की तुलना में वे कहीं कम श्रेष्ठ नवगीतकार नहीं थे। नवगीत दशक योजना में उन्हें तथा रमेश रंजक का शामिल न होना डॉ. शंभुनाथ सिंह जी की संपादकीय भूल थी। उन्होंने देश की स्वतंत्रता के बाद नवाचार के आन्दोलन और नवता के विहान का स्वागत करते हुए उस समय अर्थात् 28 फरवरी 1949 को नव निर्माण प्रतीक्षा वाले समय में लिखा था। दूर होती जा रही है कल्पना/पास आती जा रही है जिन्दगी आज आशा ही नहीं विश्वास भी/आज धरती ही नहीं आकाश भी छेड़ते संगीत नव निर्माण का/गुनगुनाती जा रही है जिन्दगी भ्रम नहीं यह टूटती जंजीर है और ही भूगोल की तस्वीर है रेशमी अन्याय की अर्थी लिए /मुस्कुराती जा रही है जिन्दगी।(गीतम -81)

वीरेन्द्र जी ने अपने पहले गीत संग्रह 'गीतम' से ही कल्पना की थोथी उड़ानों को विराम देने और जीवन की विसंगतियों को भरपूर जी लेने का मन बना लिया था। उक्त गीत में उन्होंने आजादी और उसके बाद बनते बिगड़ते नए भूगोल की ओर भी संकेत किया है। तात्पर्य यह कि नवता की अवधारणा वीरेन्द्र मिश्र जी के गीतों में स्वतंत्रता के आरम्भ से ही देखने को मिलती है। नवगीत आन्दोलन के महत्त्वपूर्ण

योद्धा तो वे थे ही। लेकिन फिल्मों में गीत लिखना और कवि सम्मेलनों में शामिल होना जैसे कतिपय कारणों से उपजे मतभेद के कारण डॉ. शंभुनाथ सिंह जी ने उन्हें 'नवगीत दशक' 1 में नहीं शामिल किया। हालाँकि नवगीत दशक योजना के क्रियान्वयन के समय तक उनके कई नवगीत संग्रह भी प्रकाशित हो चुके थे। बाद में जब शंभुनाथ जी उन्हें शामिल करने का मन बना रहे थे तो वे स्वत: शामिल नहीं हुए। उनकी सजग और विशाल रचनाशीलता को विवेचित करते हुए माहेश्वर तिवारी कहते हैं- 'भटकाने वालों की भीड़ में वीरेन्द्र मिश्र के गीत विश्वसनीय ढंग से रचनात्मकता की मशाल के रूप में सामने आते हैं। इस मशाल से सिर्फ आपको अपना रास्ता ही साफ़ दिखाई नहीं देगा बल्कि अपनी जमीन और उसके सरोकार साफ साफ नजर आयेंगे।' (हिन्दी नवगीत सन्दर्भ और सार्थकता-144)

वीरेन्द्र मिश्र जी का जन्म 1 दिसम्बर 1927 को मध्य प्रदेश के मुरैना जनपद में हुआ, और देहांत 1 जून 1999 को हुआ । नौ वर्ष की आयु में ही शिक्षक पिता श्री चंद्रिका प्रसाद मिश्र जी के माध्यम से बच्चन जी की मधुशाला पढ़ने को मिली। उसे पढ़ने से वीरेन्द्र मिश्र का कवि बेहद प्रभावित हुआ। गीत-नवगीत की प्रगतिशील चेतना ने आगे चलकर अपनी स्वतन्त्र छवि निर्मित की। इस 72 वर्ष की आयु में उन्होंने गीत और नवगीत को आकाशवाणी और दूरदर्शन के मंचों पर बहुत करीने से स्थापित किया था। इस लम्बे कालखंड में उनके अनेक गीत-नवगीत संग्रह प्रकाशित हुए जिनमें -गीतम(1953), लेखनी बेला (1957), अविराम चल मधुवंती(1967), झुलसा है छायानट धूप में(1980), धरती गीताम्बरा (1982)शान्ति गन्धर्व (1984), गीत पंचम(1987), काँपती बाँसुरी (1987)उत्सव गीतों की लाश पर (1990), वाणी के कलाकार (1991) सूर्यमुखी चंद्रकौंस (1991) आदि उल्लेखनीय हैं।

इसके अतिरिक्त बच्चों के लिए भी उनके -'अपना देश महान', 'काले मेघा पानी दे', 'मेरी छोटी सी किताब' जैसे गीत संग्रह और कुछ काव्य रूपक भी प्रकाशित हुए। कुछ संगीत रूपक भी उन्होंने आकाशवाणी के लिए लिखे जो बेहद चर्चित रहे। 'हरिश्चंद तारामती' और 'बदनाम बस्ती' जैसी कई फिल्मों के लिए मुम्बई में रहकर बॉलीवुड के लिए भी उन्होंने गीत लिखे थे। उनके गीतों को मोहमद रफ़ी और लता मंगेशकर जी ने भी गया था। उनके गीत तो चले लेकिन बाद में कुछ फिल्में नहीं चलीं तो वहाँ से मन उचट गया। वीरेन्द्र मिश्र जी का जीवन समग्र गीतमय था। उनके गद्य और साक्षात्कारों की एक पुस्तक - 'पंख और पाँखुरी' भी प्रकाशित हुई। उनका गद्य बहुत काव्यात्मक यथार्थ और ललित छवि से युक्त है, बापू के हत्यारे को लेकर 'बीसवीं सदी का हत्यारा' शीर्षक निबंध में वे लिखते हैं - 'प्रार्थनासभा के लोग बैठे ही रह गए। नेहरू मिल भी नहीं पाए, देश सँभाल भी नहीं सका और यह सब बिना समझे हत्यारे ने हत्या की। उसको उन बातों से मतलब? वह तो अपना काम कर चुका। न अपने पर घृणा, न अफसोस। वह क्या जाने कि नोआखाली, बिहार और पंजाब में हुई हत्याओं का जो सामूहिक महत्त्व है उससे कहीं अधिक महत्त्व अकेले बापू के महाप्रयाण का है। हत्यारा यह कुछ नहीं समझता, न समझना चाहता है।' (पंख और पाँखुरी -214)

आकाशवाणी से जुड़े रहने के कारण उन्हें मंचों पर अक्सर आमंत्रित किया जाता था। उनका प्रस्तुतीकरण बेहद सरस और अर्थवाही था। एक समय में वीरेन्द्र मिश्र के गीतों की चारों और धूम थी। वर्ष 1986 में मैं जब दिल्ली आया तो उनसे भी मुलाक़ात हुई। हालाँकि इससे पहले उन्हें 'लखनऊ

महोत्सव' में सुन चुका था। उन्हें लगातार पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ते हुए उनसे मिलने की इच्छा बलवती होती गयी। उन्हें तब पत्र लिखता था इसी बीच संभवत: 'इसाक अश्क' जी की पत्रिका- 'समान्तर' में मेरा भी कोई गीत प्रकाशित हुआ था। मेरे पत्रों के जवाब में उसे पढ़कर मेरे पते पर वीरेन्द्र जी ने एक संक्षिप्त पोस्टकार्ड लिख भेजा कि - 'इन दिनों कर्जन रोड स्थित कामकाजी महिला आवास, नई दिल्ली में ठहरा हूँ किसी दिन मिलें तो अच्छा लगेगा।' मुझे तो मन की मुराद मिल गयी थी। पत्र में फोन नंबर भी लिखा था सो फोन करके उनसे समय लेकर कर्जन रोड स्थित उनकी सुपुत्री-गीतम मिश्र जी के आवास पर पहुँच गया। पहली मुलाक़ात में ही उनसे बहुत स्नेह मिला। घर में उस समय कोई अन्य नहीं था सो उन्होंने स्वयं मेरे लिए चाय बनायी और देर तक नवगीत आन्दोलन पर बात करते रहे। तभी उन्होंने मुझे अपनी पहली गीत पुस्तक 'गीतम' भेंट की । बाद में और भी कई मुलाकातें हुईं 'चौथी दुनिया' के लिए मैंने उन्हीं दिनों उनसे एक साक्षात्कार भी किया था, जिसकी चर्चा देश भर में हुई। मैं युवा था और नवगीत सीखने के दिन थे, तबके दौर में उनके जैसे बड़े साहित्यकार पत्र लिखकर मुझ जैसे युवा को उत्साहित करते थे।

वीरेन्द्र जी से नवगीत पाठ करने की शैली सीखी जा सकती थी। नवगीत के पाठ्य को अनाहत किये जाने वाली सरस प्रस्तुति क्या हो सकती है यह उनसे मुझे सीखने को मिला। उनका उच्चारण बेहद स्पष्ट और भावानुसारी था। हृदयंगम करने वाले आरोह और अवरोह भावानुसार अभिव्यक्ति उनके गीतों को हृदयग्राही बनाता था। मेरे मन में गीत और नवगीत का अंतर भी तब कुछ-कुछ साफ़ होने लगा था। वीरेन्द्र मिश्र जी के प्रारम्भिक गीतों पर स्पष्ट रूप से छायावादी कविता का प्रभाव खासकर आध्यात्मिकता, प्रकृति के माध्यम से चित्रण और राष्ट्रीय चेतना के स्वर विद्यमान है। यह उस दौर के सभी गीतकारों पर किसी न किसी रूपमें परिलक्षित होता है। 'पवन सामने है नहीं गुनगुनाना सुमन ने कहा पर भ्रमर ने न माना 77% जैसे उनके प्रारंभिक अनेक गीतों में छायावादी प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं। किन्तु पचास वर्षों की गीत यात्रा में नवाचार और नवगीत के अनेक स्वर उनके संग्रहों में देखे जा सकते हैं। 'लेखनी बेला' 'गीत पंचम' और 'शान्ति गन्धर्व' जैसे गीत संग्रहों के गीतों में व्यवस्था विद्रोह और जनजीवन की विसंगतियाँ प्रखर रूप से अत्यंत मुखर हुई हैं। 'पतझर कुर्सी पर बैठा है, इस बार न जाएगा दल बदल रहे सामंत सुमन हर रंग उड़ जाएगा/ऊँचे कुबेर पर्वत पर बंधक सारस्वत वाणी ऋतु राजा/ऋतु रानी। (गीत पंचम-163)

नवगीत के प्रखर बिम्ब और प्रयोग उनके काव्य वैभव को प्रतिष्ठित करते चलते हैं। ऋतु ही राजा है और ऋतु रानी भी है। इस सन्दर्भ में व्यंग्य करते हुए पतझर के माध्यम से वीरेन्द्र जी कालिदास की प्रणय चेतना और मेघदूत की पीड़ा तक पहुँचने का जतन करते हैं। असल में पतझड़ ऋतुराज वसंत की कुर्सी के या कि सत्ता के पतन का भी प्रतीक है। वही क्रूर पतझड़ राजा सत्ता पर बैठकर कालिदास जैसे कवियों की सारस्वत वाणी को बंधक बनाने का जतन कर रहा है। सुमन का अर्थ सुन्दर मन वाले सहृदय सहज व्यक्ति से लगाकर देखें। गीत की व्यंजना चक्राकार होती है और कुशल गीतकार वीरेन्द्र मिश्र जी अनेक शब्द शक्तियों से और अर्थ व्यंजनाओं से अपने गीत सजाते हैं। 'अविराम चल मधुवंती' शीर्षक संग्रह का एक नवगीत अंश देखें-

डसने के बाद सर्प खिसका है/चूसे विष कौन दाय किसका है जल तरंग में गरल/मधुवंती/फिर भी अविराम चल मधुवंती (अविराम चल मधुवंती)

असल में वीरेन्द्र मिश्र जी अविराम गीत से माधुरी बिखेरने और सुरभि वितरित करने वाली लय संवेदन यात्रा के संवाहक हैं। समाज का विष पीकर भी कवि सदैव मधुर सकारात्मकता का सन्देश देता हुआ चलता है। वीरेन्द्र जी के नवगीतों में युग का यथार्थ सत्ता और व्यवस्था के सजीव चित्र के रूप में उभरता है। रोजी रोटी के लिए संघर्ष करते मनुष्य की व्यथा का एक चित्र देखिए -

रोटी की आयु बड़ी छंद की/अवस्था से इसीलिए शब्दों का युद्ध है/व्यवस्था से लाभ के अँधेरे में नाच रहे व्यापारी मृत्यु के महोत्सव में रस की ठेकेदारी विष से है/सराबोर अमृता सुराही कविता की सेना में शब्द है सिपाही 77(शान्ति गन्धर्व-143)

असली कवि जनहित में संघर्ष को ही अपना मार्ग बनाते हैं। आज भी व्यवस्था से शब्दों का युद्ध जारी है। करुणा और पीड़ा ही तो सार्थक कविता की सबसे बड़ी पूँजी है। जिस कवि ने इस मर्म को समझ लिया वह समग्र मानवता का कवि कहा गया। वीरेन्द्र जी के मुक्तक भी बहुत मार्मिक होते हैं कविताई की पराकाष्ठा तो संक्षिप्तता में ही निहित मानी गयी है। सार्थक दोहे और मुक्तक सदियों से सर्वश्रेष्ठ कविता का नमूना रहे हैं। वीरेन्द्र जी का एक मुक्तक देखें।

प्यासी लहरें टूटी नावें/खाली सीपी खारा जल/इतनी दौलत पास हमारे/हम हैं सागर के बादल। (-मुखरित संवेदन)

जन और अभिजन का द्वंद्व नया नहीं है, हमेशा अभिजन लोगों ने अपनी कुलीनता के स्वर्णिम आसन पर विराजमान होकर आमजन को निम्न साबित करके उसे तिरस्कृत किया है। शालीनता का दुशाला ओढ़े हुए लोगों से कवि कहता है कि असल में तो वही लोग अधिक संपन्न होते हैं जिनका सर्वाधिक विरोध होता है। सच्चा कवि आमजन के पक्ष में ही खड़ा होता है। वहीं से तटस्थ होकर कवि की रचनाशीलता की लता फूटती है। झुलसा है छायानट धूप में से एक नवगीत अंश देखिए मखमल -से लोग बहुत ज्यादा शालीन हैं।

दु:ख के पग से होते मैले कालीन हैं उतना संपन्न तुम उसे समझो /जितना उसका विरोध होता है जब जब कंठावरोध होता है और अधिक सृजन बोध होता है। (झुलसा है छायानट धूप में)

फिल्मी दुनिया से विदा लेकर वीरेन्द्र मिश्र जी ने काफी समय तक आकाशवाणी में नौकरी की। आकाशवाणी में उनकी रचनाशीलता को बहुत विस्तार और सृजन का नया आकाश मिला। आकाशवाणी की नौकरी करते हुए जब इंदौर से वीरेन्द्र जी का स्थानान्तरण दिल्ली के लिए हुआ तब उन्होंने जो लिखा था वो उन दिनों 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के मुखपृष्ठ पर छपा था इस राजनगर का अनुचित संबल लूँ/या बाँधूँ बिस्तर और कहीं चल दूँ। प्रसिद्ध गीत चिन्तक डॉ.उपेन्द्र जी का वीरेन्द्र मिश्र जी के बारे में कहना है कि- 'यह वीरेन्द्र के कवि की, मेरी समझ से एक असाधारण उपलब्धि है कि उन्होंने इस द्वंद्व पर उस उम्र में ही काबू पा लिया था जब प्यार रोमांस का ताप अपने तीव्रतम रूप में होता है। पच्चीस वर्ष की तरुनाई में उनका यह किया हुआ फैसला उनके दृढ़ संस्कारी व्यक्तित्व का द्योतक है। 'गीतम' के उस प्रसिद्ध गीत की पंक्तियाँ शायद आप ने सुनी हों- 'पीर मेरी कर रही ग़मगीन मुझको/और उससे भी अधिक तेरे नयन का नीर रानी/और उससे भी अधिक हर पाँव की जंजीर रानी।' (उपेन्द्र/हिन्दी गीत और गीतकार-100)

उपेन्द्र जी के वक्तव्य में संदर्भित यह गीत उनके संग्रह 'गीतम' में त्रिमुखी पीड़ा के संकेत के साथ

संकलित है। त्रिमुखी पीड़ा की त्रिमुखी अभिव्यक्ति और उसकी भंगिमा उनके चकित करने वाले गीत कौशल का पता बताती है। व्यक्तिगत पीड़ा कवि की प्रेयसी या प्रियजन की पीड़ा और समाज की पीड़ा सब मिलकर यहाँ त्रिमुखी पीड़ा के रूप में एकाकार होती है, तब एक गीत बनाता है। वीरेन्द्र मिश्र जी ने नवगीत पर व्यापक विचार करते हुए अनेक साक्षात्कारों में अपना मत स्पष्ट किया था। नवगीत नाम के आकर्षण में खिंच कर उस समय भी तमाम वयोवृद्ध कवि नवगीत लिखने लगे थे और लोगों ने उन्हें सुविधानुसार आयु के आधार पर वरिष्ठ भी मानना शुरू कर दिया तो वीरेन्द्र जी ने स्पष्ट किया। नवगीत में घुसपैठ बनाने वालों को लेकर बहुत स्पष्ट रूप से वे कहते हैं- 'काव्य सृजन के क्षेत्र में साहित्यिक वरिष्ठता ही महत्त्वपूर्ण होती है, (जिसकी उपलब्धि के लिए प्रायः लोग शार्टकट ढूँढ़ते हैं।) आयु वरिष्ठता नहीं। फिर यह भी कि नवगीत का विरोध भी मुख्यतः वही कर रहे हैं जो उसे लिख पाने में असमर्थ होने के कारण उसके विरुद्ध आज बासी पड़ जाने वाले प्रमाण और नए गढ़े तर्क प्रस्तुत करने को विवश हैं।' (पंख और पाँखुरी - 175)

आजकल भी नवगीत की नाव में ऐसे अनेक साठोत्तरी कवि पदार्पण कर चुके हैं जो चर्चित होने के लिए नवगीत के आकर्षण में खिंचे चले आ रहे हैं। यश लाभ का ये शार्टकट आज भी चल रहा है। वीरेन्द्र जी इसके आगे नवगीत पर विचार करते हुए स्पष्ट करते हैं- 'आधुनिक युगबोध से संपन्न वैविध्यपूर्ण हिन्दी नवगीत निश्चित रूप से स्वस्थ सृजनात्मकता और सुरुचिपूर्ण पाठक-श्रोता का निर्माण कर रहा है। इसी केंद्र बिंदु से उसका भविष्य आरम्भ होता है।' (पंख और पाँखुरी-180) आज वीरेन्द्र जी हमारे बीच नहीं है। उनके गीत और उनके शब्द हमारे बीच अपनी चेतना के साथ सक्रिय हैं। नवगीत को उनके दाय और उनके साथ बिताए पलों को लेकर गौरवान्वित हूँ। उनकी पुण्य स्मृति को सादर नमन।

संपर्क : *दिल्ली*

कृष्ण कुमार यादव 'कनक'

हिन्दी नवगीत में लोक चेतना

गीत के अंतर्गत नवाचार जब नूतनोद्भावनी कल्पना के साथ आया तो उसे 'नवगीत' नाम मिला। नवगीत उस कालखंड में जन्मा जब अस्तित्ववाद और मार्क्सवाद जैसे पाश्चात्य दर्शनों की लपेट में भारतीय काव्य परंपरा के जीवंत मूल्यों को शीर्षासन कराने का प्रयास किया जा रहा था और व्यक्ति स्वातंत्र्य के नाम पर मनुष्य को नदी का द्वीप बनाकर समाज की मुख्यधारा से काटा जा रहा था। ऐसे समय में बुद्धिवाद की अतिशयता, नगरीय जीवन की दमघोंटू परिस्थितियों व मूल्य विघटन की विभीषिका से उबारने के लिए नवगीत का प्रादुर्भाव हुआ। नवगीत ने किसी आयातित चिंतन को अधिग्रहीत नहीं किया है बल्कि यह तो लोक से अपना रसग्रहण करता रहा है। लोक सदैव मौलिक चिंतन और संवेदनात्मक धरातल पर जीता है। आगे बढ़ने से पूर्व लोक के अर्थ पर विचार करना उचित रहेगा। कोश के अनुसार लोक का अर्थ जगत, संसार, प्रदेश, निवास स्थान, दिशा, स्थान, जन, जीवधारी, प्राणी, समाज, कीर्ति, यश, लोक और परलोक आदि भी। (भाषा शब्दकोश, संपादक - डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', पृ. - 1642, रामनारायण लाल प्रकाशन इलाहाबाद, तृतीय संस्करण -1951) अमरकोश में कहा गया है 'लोकोस्तु भुवने जने' (लोक, यह स्वर्ग आदि भुवन और जन का नाम है) (अमरकोश (3/4/2), संपादक-देवदत्त तिवारी, पृ. - 298, मेडिकल हॉल बनारस-1883) यद्यपि उपनिषद निरुक्त आदि में लोक के अन्य अनेक अर्थ भी हैं परंतु नवगीत में लोक चेतना का स्वरूप समझने के लिए हमें उसके 'संसार और जन' इन दो अर्थों पर ही ध्यान केन्द्रित करना होगा। लोक के प्रेम, द्वेष, घृणा, आक्रोश, मूल्य, मान, संकल्प-विकल्प, आस्था-अनास्था, चिंतन-मनन, रीति-रिवाज, आचार-विचार, अनुराग-विराग, विश्वास-प्रेरणा सब लोक चेतना के ही अंग होते हैं। लोकाचार, लोक-कल्प, लोक कथाएँ, लोक गीत, लोक वेद, लोकनाट्य आदि सब लोग चेतना के अंग हैं। वस्तुतः लोक चेतना सामान्य जन के अंतर्मन का प्रतिबिंब होती है।

किसी भी साहित्यिक विधा को जब अपने भीतर नवाचार लाना होता है, तो वह लोक की मुखापेक्षी बनती है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में साहित्य की हर विधा में लोक चेतना व आंचलिकता का प्रभाव बढ़ा। क्योंकि हर विधा बदले हुए समाज, परिवेश और नगरीय घुटन के बीच अपने स्वरूप में नयापन लाने को उत्सुक थी। यहाँ यह भी याद रखना चाहिए कि सन 1950 के आस-पास हिंदी साहित्य में आंचलिकता का जो आंदोलन खड़ा हुआ, वह आधुनिकता के तीखेपन की भावना से प्रेरित नहीं था। बल्कि उसके पीछे स्वतंत्र भारत की

नईआकांक्षाओं के अनुरूप आत्मान्वेषण की धारणा कार्य कर रही थी। शहरी जीवन की नीरसता और साहित्य में उसके बदरंग, धुमैले, दमघोंटू वातावरण ने लेखकों को नई जमीन की तलाश के लिए प्रेरित किया। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है कि नवलेखन के आरंभिक दिनों में नई कविता, कहानी या उपन्यास सभी क्षेत्रों में आंचलिकता की प्रधानता रही। (भोर का आह्वान, भूमिका-डॉ.शिवप्रसाद सिंह, डॉ.विद्यानिवास मिश्र, पृ.-05, अनुराग प्रकाशन वाराणसी, द्वितीय संस्करण-1971)

नवगीत के प्रारंभिक दिनों में यह चेतना लोक परंपरा, लोक आस्था और लोक संस्कृति के प्रति आकर्षण लगभग सभी नवगीतकारों जैसे उमाकांत मालवीय, शिव बहादुर सिंह भदौरिया, डॉ. शंभुनाथ सिंह, रवींन्द्र भ्रमर, शान्ति सुमन, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', यतीन्द्र नाथ 'राही', नईम आदि सभी में दिखाई पड़ता है। लोक में विश्वास है कि गंगा स्नान से मानव को जग-जीवन से मुक्ति प्राप्त होती है। गंगा उनके लिए एक मात्र नदी नहीं बल्कि जीवित अलौकिक सत्ता है। उमाकांत मालवीय अपने एक गीत में भावुक स्वर में कहते हैं-

'गंगोत्री में पलना झूले / आगे चले बिकइयाँ
भागीरथी घुटुरुवन डोले शैल शिखर की छइयाँ
भूखा कहीं देवव्रत टेरे / दूध भरी है छाती
दौड़ पड़ी ममता की मारी / तजकर संग-सँगाती
गंगा नित्य रँभाती बढ़ती जैसे कपिला गइया
सारा देश क्षुधातुर बेटा वत्सल गंगा मइया।'

लोक चेतना के प्रभाव को इस रूप में भी समझा जा सकता है कि ठाकुर प्रसाद सिंह 'पाँच जोड़ बाँसुरी' के गीतों को संथाली लोक गीतों का अनुवाद माना गया है और पहले नवगीत दशक में 'पुरवइया क्वाँर की' (नईम), 'पुरवा जो डोल गई' (शिव बहादुर सिंह भदौरिया), मेघ आए निकट कानों के (देवेंद्र कुमार), आमों के शीश मुहर बाँधने लगा फागुन (शिव बहादुर सिंह भदौरिया) आदि गीतों में लोक चेतना का स्वर ही मुखरित हुआ है। इसी तरह लोक चेतना के प्रखर गीतकार गुलाब सिंह कहते हैं-

'हरे गोट की घँघरी पहने / साटन की अँगिया
छींट बुँदकियोंदार ओढ़कर / लहक उठी बगिया

नदी हंसिनी / छाँह नहाई
पानी हुआ मुरैला / अडहुल के
गुच्छे की पगड़ी / पर्वत लगता छैला
धूप-छाँह के पहन पटोरे / निकला दिन जोगिया।' (धूल भरे पाँव, गुलाब सिंह, पृ.-30, संजय बुक सेंटर बाराणसी-1992)

बीसवीं सदी के अंतिम दशक से गाँव का चित्र बदलना प्रारंभ हुआ। शहरों का अनियंत्रित विस्तार होने लगा है। धूल भरी पगडण्डियों पर ओवरब्रिजों और सड़कों का आक्रमण हुआ है। ग्रामीण जीवन की सरलता खोने लगी है। चुनावों की राजनीति ने आपसी मेल-मिलाप के भाव में पलीता लगा दिया है। चौपालें विद्वेष का केन्द्र बनती जा रही हैं। एक नए प्रकार का शोषक वर्ग उभरा है जिसने प्रधानी और

सरपंची हथियाकर गाँव के सामूहिक जीवन को खण्ड-खण्ड कर दिया है। अपराध और हत्याओं जैसे काण्ड भी गाँवों में प्रवेश कर गए हैं। गाँव के बदलते इस स्वरूप को भी नवगीतकारों ने पूरे मनोयोग से चित्रित करते हुए अपनी चिंता भी व्यक्ति की है। महेश 'अनघ' गाँव के बदलते इसी परिदृश्य पर चिंता व्यक्त करते हुए लिखते हैं-

'अबकी बार गाँव ने हमको जीने नहीं दिया
भौजी मिली कुँए पर भाषण देतीं सी
प्यास कमैटी के सालाना जलसे में
कजरी, करवा, होरी, गरवा, गडगौरें
हमने देखा सिसक रहीं थीं कलसे में
चरणों में अभिमान डाल हमने परनाम किया
कोई भी आशीष किसी काकी ने नहीं दिया।'(झनन-झकास, महेश 'अनघ' पृ.-38, अनुभव प्रकाशन गाजियाबाद-2008)

इसी स्वर में स्वर मिलाते हुए डॉ. रामसनेही लाल शर्मा, 'यायावर' अपने पत्र शैली में लिखे गए एक नवगीत में बदलते हुए गाँव के चित्र को चिन्तन परक रूप में इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं-

'हीरामन कुछ भी कर लेना / गाँव नहीं आना
कलह जहाँ कजरी गाती है / गाता बैर मल्हारें
हर आँगन में छत से ऊँची / तनी हुई मीनारें
झगड़ रहा है खेत मेंड़ से / आँगन से चौपालें
जिन्दा कबूतरों की रोज / उतारी जाती खालें
कोई नहीं सुनेगा तेरा / राम-राम गाना'(अंधा हुआ समय का दर्पण, डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' पृष्ठ -101-102, अयन प्रकाशन नई, दिल्ली 2009)

गाँव के भोले-भाले ग्रामीणों को जाति, वर्ग, वर्ण में बाँटकर 'अहा! ग्राम्य जीवन भी क्या है,' का विलोम रचने का काम चुनावी राजनीति ने किया है। जब भी चुनाव आते हैं, गाँव में वैर, वैमनस्यता, क्रोध, घृणा और हिंसा बोकर जाते हैं। फिर गाँव में कोर्ट, कचहरी, गोली, लाठी, पुलिस, दंगे आदि का साम्राज्य हो जाता है-

'पंचायत के इस चुनाव में / ऐसी रार हुई
तना-तनी में बंद परस्पर / राम जुहार हुई
राजनीति की गर्मी / वातावरण उबाल गई।'(आँगन में कल्प वृक्ष, ऋषि कुमार मिश्र, पृ. - 30, निखिल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स आगरा-2018)

नवगीत की लोक चेतना का एक आयाम यह भी है कि इनमें लोक जीवन के सामान्य पात्रों को प्रतीक बनाकर जीवन के कठोर यथार्थ, विसंगतियों और वर्ग वैषम्य तथा निम्न वर्ग के जीवन की कठिनाइयों को बड़ी शुचिता के साथ व्यक्त किया गया है यथा-

चल करलें रामरती / बड़ों को जुहार
नौनिहालों को प्यार / और क्या? (- महेश 'अनघ')

थकना जाने कहाँ बतसिया / फिरती रहे चकरघिन्नी सी (– डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर')
प्रेमचंद के / होरी धनियाँ / सरदारों से झगड़ न जाएँ (–कृष्ण कुमार 'कनक')
क्या कहती है / औने–पौने / रधिया का गौना कर दें? (– महेश अनघ)
बिखरा / भानुमती का कुनबा (– यतीन्द्र नाथ 'राही')
अंगारों में
पला–ढला / यौवन अंगूरी का (– डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर')

नवगीतकारों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने यह जानते हुए कि गाँव बदल गया है, रिश्तों में ठहराव आ गया है, मूल्यों का विघटन प्रारम्भ हो गया है, एक अनास्था और घनघोर निराशा जीवन में घर कर गई है फिर भी उन्होंने उदात्त मूल्यों के प्रति अपने विश्वास को कमजोर नहीं पड़ने दिया है। वे जानते हैं कि लोक जीवन में अनाचार फल–फूल रहा है। संबंध स्वार्थ की पंकिला में लिथड़ गए हैं। किसी में जीवन के प्रति उत्साह नहीं रहा। वैश्वीकरण और बाजारीकरण ने गाँव की सरलता को चर लिया है। न भीतर हरियाली बची है न बाहर। पर्यावरण प्रदूषित है और वातावरण विक्षुब्ध। यूज एण्ड थ्रो की संकल्पना केवल वस्तुओं तक नहीं अपितु मानवीय संबंधों तक पर हावी हो चुकी है। बारूद–मुखी दोपाए गरज रहे हैं। हिंसा, ईर्ष्या, द्वेष, कदाचार, मूल्य हीनता, धोखा और मुँह में राम बगल में छुरी वाला आचरण आज का युग सत्य बन चुका है। फिर भी नवगीतकारों को विश्वास है कि विकराल परिस्थिति बदलेगी। समय रूपी कर्मनाशा की यात्रा लोक रूपी पावन भागीरथी में ही जाकर पर्यवसित होगी। इसीलिए नवगीतकार पूर्ण आस्था व विश्वास के साथ कहता है–

'बने रहना गाँव के बरगद/नदी के घाट मटियारे/ यहीं पर एक दिन ठंडे करेंगे/ताज हम सारे/ यहीं पर अस्थियाँ होंगी विसर्जित/अहंकारों की/ नकाबें यहीं उतरेंगी/कभी जगमग सितारों की/ बने रहना आँख के पानी/जरा मीठे जरा खारे/ यहीं पर अंजुरी भरने रुकेंगे/तपन के मारे' (झनन–झकास, महेश 'अनघ', पृ.–35, अनुभव प्रकाशन गाजियाबाद – 2008)

नवगीत ने लोक भाषा से शब्द, मुहावरे, लोकोक्तियाँ आदि ग्रहण करके काव्य भाषा को नई जीवंतता और अर्थ गरिमा प्रदान की है। लखटकिया, हीरामन, झक्क, पुत्तर, गुड़धानी, करिया रात, बिधना, भौजी, पनघट, मुँदरी, हँसुली, राई–नौन, धुँधआना, आल्हा के कड़खे, न्योता, मितवा, तीतर,–पाँखी, गैलहारा, सोना–पतारी, सोटा, मौड़ी, आदि ऐसे ही शब्द और मुहावरे हैं जो भाषा को नई अर्थ भंगिमा और जीवंतता से भरते हैं।

सच्चाई यह है कि लोक जीवन के सारे सकारात्मक और नकारात्मक पक्ष नवगीतों में पूरी चेतना के साथ उभरे हैं। नवगीत अपनी पूरी अस्मिता के साथ लोकधर्मी है। वह लोक से रस लेता है। लोक भाषा में अपनी बात करता है। लोक के हृदय के साथ उसका हृदय धड़कता है। वह लोकगीतों, लोक संस्कारों और लोक के उत्सवों की बात करता है और लोक के उत्सवों की चर्चा करते हुए विकास की पंक्ति के अंतिम छोर पर खड़े व्यक्ति की वेदना को वाणी देता है। नवगीत समग्रतः लोक चेतना का छंदबद्ध लयात्मक रूपांतरण है। –इत्यलम

सम्पर्क : *फिरोजाबाद (उ.प्र.)*
मो.7017646795, 9259648428

माणिक विश्वकर्मा 'नवरंग'

मध्य प्रदेश के दिवंगत नवगीतकार

नवगीत गीत-परंपरा के विकास का वर्तमान स्वरूप है जिसमें समकालीन परिप्रेक्ष्य का समग्र मूल्यांकन दिखाई देता है। दरअसल नवगीत गीत ही है, वह गीत के अन्तर्गत नवाचार है, कोई अलग विधा नहीं है। अक्सर प्रश्न उठता कि जब गीत की जानकारी के बिना नवगीत नहीं लिखा जा सकता तो नवगीत नामकरण की क्या विवशता थी? इस संदर्भ में यदि कहा जाए तो नामकरण कोई नया रिवाज़ नहीं है। समकालीन कविता एवं गजल के साथ भी एक दर्जन से अधिक नाम जुड़ चुके हैं। आज़ादी के बाद जीवन की जटिल समस्याओं को जब गीतों में अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया जाने लगा तब उसे अलग पहचान देने की आवश्यकता महसूस की गई और कई नामों के बीच नवगीत नाम को उपयुक्त माना गया। गीतों की शैली में आए परिवर्तन को तत्वों के आधार पर नवगीत का नाम दिया जाने लगा और मूलरूप से जो गीतकार थे वो भी पृथक नवगीत संग्रह प्रकाशित न होने के बावजूद नवगीतकारों की सूची में शामिल किए गए।

आज बहुत से गीतकार नवगीत के शिल्प एवं तत्वों को ध्यान में रखकर लय को प्राथमिकता देते हुए नवगीत की रचना कर रहे हैं। नवगीत को विद्वानों द्वारा अपने-अपने ढंग से परिभाषित करने का सिलसिला जारी है क्योंकि नवगीत की रचनात्मकता का विस्तार, समकालीन चिंताओं का फ़लक असीमित होने के कारण समकालीन कविता की तरह हो रहा है और उसमें बुनियादी तत्वों के अलावा समकालीन विसंगतियों एवं विडंबनाओं को भी दर्शाया जाने लगा है। नवगीत का मूलस्वर आधुनिकतावादी होता है, इसके कथ्य और शिल्प दोनों में आधुनिक भावबोध और दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति की जाती है। इसमें निहित आधुनिकता को स्वतंत्रता के बाद उपजी नयी दृष्टि माना जाता है। जबकि समकालीन कविता में पूँजीवादी व्यवस्था एवं शोषक वर्ग का आतंक अधिक दिखाई देता है। समकालीन कविताएँ क्रांति एवं मुक्ति के साथ परिवर्तन की बातें भी करती हैं। सही मायने में संश्लिष्ट एवं जटिल भावों तथा आधुनिक विचारों को संवेदना में घोलकर तज्जनित शब्दों में तौलकर नये अर्थ एवं मुहावरे गढ़ने की प्रवृत्ति को नवगीत का दर्जा दिया जाता है। आज अधिकांश नवगीतों में केवल निराशावादी एवं नकारात्मक दृष्टिकोण को ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया जा रहा है जबकि उसमें समस्या के समाधान का पुट भी होना चाहिए तभी युगबोध की संकल्पना साकार हो पाएगी। ये अच्छी बात है कि 21 वीं सदी में लिखे जा रहे नवगीतों में अधिकतर कथ्य जीवन से जुड़े तत्वों से लिए जा रहे हैं।

जहाँ तक नवगीत के उद्भव का सवाल है तो इसकी झलक निराला की रचनाओं में दृष्टिगत होती है। सामाजिक यथार्थ एवं मानव मूल्यों से उनकी रचनाएँ प्रभावित थीं। अज्ञेय द्वारा 1949 में संपादित 'प्रतीक द्विमासिक, शरद अंक एवं रूपांबरा में सम्मिलित रचनाओं में भी नवगीत के तत्व विद्यमान थे। 1957 तक पारंपरिक गीतों में बदलाव साफ़ दिखाई देने लगा था। राजेन्द्र प्रसाद सिंह के संपादन में सन 1958 में 'गीतांगिनी' का प्रकाशन हुआ। इसमें नवगीत के नामकरण के साथ आवश्यक तत्वों का निर्धारण भी किया। सन 1959 से अब तक नवगीतों पर अनेक संकलन आ चुके हैं। विमर्श का सिलसिला अभी भी जारी है। नवगीत परम्परा को प्रतिष्ठा दिलाने का श्रेय निश्चित रूप से 1958 में प्रकाशित गीतांगिनी संकलन में रचनाकार एवं संपादक राजेन्द्र प्रसाद सिंह को ही जाता है। महिला साहित्यकारों में शुरू से नवगीत के शिल्प एवं कथ्य को लेकर भ्रांतियाँ रहीं। इसीलिए नयी/समकालीन कविता की तरह नवगीत लेखन में उनकी भागीदार अपेक्षाकृत कम दिखाई देती है। नवगीत में दलित, स्त्री, आदिवासी आदि विमर्श भी बहुत कम हो पाया है। मध्यप्रदेश की भूमि शुरू से गीतकारों के लिए उर्वरक रही है। रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', शिवमंगल सिंह, सुभद्रा कुमारी चौहान, भवानी प्रसाद मिश्र, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, नर्मदा प्रसाद खरे, तोरण देवी शुक्ल 'लली', हीरा देवी चतुर्वेदी जैसे गीत कवियों एवं कवयित्रियों ने इस प्रदेश को राष्ट्रीय स्तर पर गौरवान्वित किया है।

छायावाद के प्रवर्तक **स्व. मुकुटधर पाण्डेय** का जन्म भी अविभाजित मध्यप्रदेश के रायगढ़, गाँव बालपुर में हुआ था। आज प्राय: उन्हीं लोगों पर लिखा जा रहा है जो इलेक्ट्रॉनिक एवं प्रिंट मीडिया में सक्रिय रहे या उपलब्ध हैं। एकला चलो प्रवृत्ति एवं प्रचार तंत्र से दूर रहे सृजनकर्ताओं का उल्लेख कई बार छूट जाता है या हो नहीं पाता। इस लेख में मैंने सभी स्मृति-शेष नवगीतकारों को शामिल करने का प्रयास किया है फिर भी यदि भूलवश किन्हीं का नाम छूट गया हो तो मित्रगण अवश्य सूचित करें मैं उन्हें जोड़ लूँगा। मध्यप्रदेश के लब्ध प्रतिष्ठ दिवंगत नवगीतकारों का संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है -

मुकुट बिहारी सरोज (26 जुलाई 1926 - 18 सितम्बर 2002) को यथार्थ की शिनाख्त करने में महारत हासिल थी। निकिता से अपनी बात रखा करते थे यथा-

इन्हें प्रणाम करो ये बड़े महान हैं/दंत-कथाओं के उद्गम का पानी रखते हैं/पूँजीवादी तन में मन भूदानी रखते हैं/इनके जितने भी घर थे सभी आज दुकान हैं/इन्हें प्रणाम करो ये बड़े महान हैं। हो गया है हर इकाई का विभाजन / राम जाने गिनतियाँ कैसे बढ़ेंगी?/अंक अपने आप में पूरा नहीं है/ इसलिए कैसे दहाई को पुकारे/मान, अवमूल्यन हुआ है सैकड़ों का /कौन इस गिरती व्यवस्था को सुधारे/जोड़-बाकी एक से दिखने लगते हैं। राम जाने पीढ़ियाँ कैसे पढ़ेंगी? मेरी, कुछ आदत, ख़राब है/कोई दूरी, मुझसे नहीं सही जाती है/ मुँह देखे की मुझसे नहीं कही जाती है। मैं कैसे उनसे, प्रणाम के रिश्ते जोड़ूँ /जिनकी नाव पराए घाट बही जाती है/मैं तो खूब खुलासा रहने का आदी हूँ /उनकी बात अलग, जिनके मुँह पर नकाब है। किनारे के पेड़ (1959) और पानी के बीज (2001) उनके प्रमुख नवगीत संग्रह हैं।

प्रो. विद्यानन्दन 'राजीव' (4 जुलाई 1931-4अप्रैल 2020) अपने नवगीतों में यथार्थ के बदलते रूपों को बड़े ही कौशल से बिंबित करते थे। मनुष्य का संघर्ष हो या जीवनशैली का खोखलापन सभी के प्रति उनका स्वर मुखरित हुआ है - उन्होंने लिखा है कि -

बस्ती बस्ती/आ पहुँची है। जंगल की ख्वार हवाएँ /उत्पीड़न। अपराध बोध से /कोई दिशा नहीं है खाली/रखवाले / पथ से भटके हैं/जन की कौन करे रखवाली/चल पड़ने की। मजबूरी में /पग-पग उगती हैं शंकाएँ / कोलाहल/गलियों -गलियारे/जगह-जगह जैसे हो मेला/संकट के क्षण/हर कोई पाता। अपने को ज्यों निपट अकेला। अपराधों के/हाथ लगी हैं/रथ के अश्वों की वल्गाएँ / पंख कतरने में /बहेलिये ने जल्दी की है। शंका व्यापी मन में-पंछी उड़ न कहीं जाए/रहे चाकरी में हाजिर रूखा-सूखा खाए। मन को मार/समय आने पर। हम जैसा बोले/परदे के पीछे का, हर्गिज/भेद नहीं खोले/आदिम होने की मुराद/ यों, पूरी कर ली है। यह जंगल है, आज्ञा/चलती यहाँ शिकारी की/नीलामी हर रोज/परिन्दों की लाचारी की। वन के इन बाशिन्दों की भी/क्या अपनी मर्जी/कूड़ेदान पहुँच जाती/अक्सर इनकी अर्जी/यहाँ न कोई नियम/ बाहुबल की ही चलती है। टूटा छप्पर औसारे का/छत में पड़ी दरार। फैंक गई गठरी भर चिन्ता/ बारिश की बौछार/पहले-पहले काले बादल/लाये नहीं उमंग/काम काज के बिना/बहुत पहले से/मुट्ठी तंग/ किस्मत का छाजन रिसता है/क्या इसका उपचार/कब से पड़ा कठौता खाली/दाना हुआ मुहाल/आँखों के आगे/मकड़ी का/घना घना सा जाल/नहीं मयस्सर थकी देह को/कोदों और सिवार। खुशियाँ लिखी गई हैं/ अब तक भरे पेट के नाम/सपने देखे गए/मजूरी के/अब तक बाकाम/ कैसे/खो जाए ऋतु स्वर में/अंतर्मन लाचार। हिरना खोजे जल (1998), हरियल पंखी धान (2003), तथा हमने शब्द तराशे (2013) इनके प्रमुख नवगीत संग्रह हैं।

श्रीकृष्ण शर्मा (17 अक्टूबर 33 - 23 अक्टूबर 2015) ने अपने गीतों में समाज के कटु यथार्थ को सशक्त अभिव्यक्ति दी है। रायसेन जिले के ग्राम सिलपुरी में शिक्षक रहते हुए उन्होंने आसपास के गाँवों के अभावग्रस्त जीवन को गीतों के माध्यम से उजागर करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उदाहरण स्वरूप कुछ पंक्तियाँ -

इन कच्चे पत्तों की पीठ थपथपाने / हवा सब विकल्पों को लात मार आयी/ सठियाया पतझर कर चुका आत्महत्या / फागुन के हस्ताक्षर, पिंकी की गवाही।

बदलते परिवेश में प्रतिभा के अवमूल्यन को भी उन्होंने खूबसूरती से चित्रित किया है। इस विसंगति को उन्होंने 'उत्तर रामचरित के पन्ने' नामक गीत में कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त किया है -

धुँआ-धुँआ अम्बर का चेहरा/मंच हुआ तारों से खाली / जो कि तिमिर में जले उम्र भर / वही सभा से गये उठाये।

आम आदमी की पीड़ा हो या समय की मार उन्होंने अद्भुत बिंबों के माध्यम से उकेरने का सदैव प्रयास किया। बानगी के तौर पर - कोहरे के मोटे परदे के / पार नहीं जाती हैं आँखें/ किन्तु टँगी रह गयीं दृष्टि की / चौखट पर पेड़ों की शाखें / समय (2008)

साँप के काटे जैसा / कैसे कटे रात की दूरी?' गीत तुम्हें गा-गा कर हार गये/ अनजाने भ्रम की इन लहरों ने/आ-आकर मुझको भरमाया है/पेड़ों की बाँसुरियों ने बजकर/बरबस ही मन को भटकाया है। 1. फागुन के हस्ताक्षर (2006) 2.बोल मेरे मौन (2007) 3. एक नदी कोलाहल (2008) 4. मेरी छोटी आँजुरी (2009) 5. एक अक्षर और (2010) 6. अँधेरा बढ़ रहा है (2011) तथा 7 अक्षरों के सेतु इनके प्रमुख नवगीत संग्रह हैं।

हुकुम पाल सिंह 'विकल' (1 जनवरी 1935- 27 दिसंबर 2014) ने नैतिक मूल्यों एवं सामाजिक विसंगतियों पर गहरा प्रहार किया है। उनके नवगीतों में भाव सौंदर्य एवं नाद सौंदर्य का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। यथार्थ के धरातल पर लिखे सारे गीत-नवगीत बोधगम्य हैं। बानगी के तौर पर -

नानी-दादी के किस्से। जाने कब हवा हुए/ सब संवेदन आपस के/तिथि बीती दवा हुए/पगडण्डी का राजपथों से / मिलना नहीं फला। यह मन बिलकुल ऊब चुका है/नये-नये आकाश से / भय-सा लगने लगा शहर के / बढ़ते हुए विकास से। रोटी एक खड़े आँगन में/भूखे चार जने / खाते नहीं बने/ दिन-दिन बहा पसीना माथे / कटी रात सपनों में / संवेदन की एक झलक भी। नहीं दिखी अपनों में/ आशा के अंबर में कितने / बादल घिरे घने / कितने जतन किए फिर भी / अँधियारे नहीं छँटे सूरज की तानाशाही ने / ऐसे रंग बिखेरे / राजपथों पर डाल दिए। ओछी किरणों ने डेरे। दर्प सुनहरी कड़ी धूप के / बिलकुल घाटे नहीं। इनका नवगीत संग्रह 'देती है आवाज नदी' है।

प्रतिभा के अवमूल्यन एवं अक्षम लोगों की बोलती तूती पर **नईम** (1 अप्रैल 1935-9 अप्रैल 2009) ने पहले ही चिंता व्यक्त की थी। आज उनका विकराल रूप सामने दिखाई पड़ता है -

लिखने जैसा लिख न सका मैं। सिकता रहा भाड़ में लेकिन / ठीक तरह से सिक न सका मैं /अपने बदरँग आईनों में/यदा-कदा ही रहा झाँकता/थी औक़ात, हैसियत। लेकिन अपने को कम रहा आँकता/ ऊँची लगी बोलियाँ लेकिन,/हाट-बाज़ारों बिक न सका मैं / उनकी / टेढ़ी या सीधी हों, लेकिन हैं पाँचों ही घी में/रहे छीजते अपने ही ग्रह/और नखत ये धीमे-धीमे। जिसको जो भी मिला। ले उड़े/खुरपी टेढ़े बेंट आ जुड़े। होना था जिनको आधा/वो एक रात में हुए ड्योढ़े /होने को-क्या शेष रह गया/कर लो जो भी आये जी में। भुगत रहे हैं सजा न जाने/कैसे-कैसे अपराधों की/माँ का दूध पिता की छाया। उनकी ही माटी ये काया/यूँ कृतज्ञ होने के बदले/मूल सूद के साथ दबाया/समझे थे खुद को वजीर हम/किन्तु हुई गिनती प्यादों में/कैसे गाऊँ भीम पलासी/भून रही रातें वैसाखी/कोस रही अपनी ही निर्मिति। जी चाहे करने को काशी/एक बूँद जल जिसे कहें हम/बचा नहीं फूटे बाँधों में। 1. पथराई आँखें 2. बातों ही बातों में 3.पहला दिन मेरे अषाढ़ का 4. लिख सकूँ तो तथा 5. उजाड़ में परिन्दे उनके प्रमुख नवगीत संग्रह हैं। अन्तिम दोनों भारतीय ज्ञानपीठ ने प्रकाशित किये हैं। उसमें भी अन्तिम (उजाड़ में परिन्दे) रचनाकार की मृत्यु परान्त प्रकाशित हुआ है।

राम अधीर (12अप्रैल 1935-9 फरवरी 2021)मूल रूप से महाराष्ट्र के रहने वाले राम अधीर ने मध्यप्रदेश के भोपाल को अपनी कर्मभूमि बनाया। उनका जन्म आर्वी, महाराष्ट्र में हुआ था। अंतिम समय तक वे गीतों पर केन्द्रित पत्रिका संकल्प रथ का संपादन करते रहे। कोरोना प्रकोप से जूझते हुए अंततः उन्हें अपने प्राण त्यागना पड़े। उनके द्वारा रचित कुछ नवगीत बेहद प्रभावशाली हैं। यथा -

आग डूबी रात को क्या हो गया है राम जाने/ आइए हम चाँदनी के नाम से पाती लिखें/यह सफ़र बहुत है/जानती है यह सदी/सीढ़ियों का खुरदरापन/ और यह सूखी नदी/रौशनी का धर्म क्या है हम नहीं कुछ जानते/क्या बुरा है दीप से ही पूछकर बाती लिखें / जब मुझे संदेश की कुछ सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ी थीं। तब लगा मुझको तुम्हारे द्वार/पर पहरा लगा है। इस हथेली का खुलापन देख लो/ याचक नहीं हूँ। मैं किसी चौपाल या मठ का / कथा वाचक नहीं हूँ /कौन सुनता है यहाँ पर गीत की अंतर व्यथा को/इस सभाओं का

मुझे हर आदमी बहरा लगा है। उनके प्रमुख नवगीत संग्रह 1.धूप सिरहाने खड़ी है तथा 2. वह नदी बीमार है।

श्यामलाल 'शमी' (15 जून 1935–12 फरवरी 2019) के गीतों में नवगीत की उपस्थिति समग्रता के साथ दिखाई देती है। 'जो सहा सो कहा' काव्य संग्रह में उन्होंने मुख्य रूप से आदिवासियों, पिछड़े एवं सर्वहारा वर्ग तथा नारी की वेदनाओं को चित्रित किया है। श्यामलाल 'शमी' अक्सर कहते थे कि – गीत के विकासक्रम की यही नाविन्यता है कि गीतकार समयापेक्ष होते हुए युगधर्मी बने, तत्कालीन जनमानस की संवेदनाओं और उनके संघर्ष को तटस्थ रूप से गीत के माध्यम से जीवंतता प्रदान करे तथा उसमें नवशक्ति एवं नवचेतना का संचार करे। उनका मानना था कि – कविता में विद्रूपताओं को विचार माध्यम से लिपिबद्ध करने से बेहतर है कि गीत–नवगीत को गुनगुनाया जाए/जहाँ नव्यता है एवं जीवंतता है वही नवगीत है। कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य है –

दंभ से/परिपूर्ण जो था गाँव/वह हम छोड़ आए/थी जहाँ। इंसानियत की मौत/नाता तोड़ आए/झींक रहा भोला वर्षों से/पर प्रभु नहीं मिले/जिनके थे उनको भी कब/वह आसन छोड़ मिले/गंगादीन गड़रिया लो मिला एक दिन भइया/बोला खोली पंडित जी ने पली–पलाई गइया/दान–कथा ने सारे अपने अंटी में छले। मंचों पर भाषण–अभिभाषण/है विकास डुगडुगी बजी/करें किसान आत्महत्या/ले कर्ज़, महाजन लूटे/ऊँच नीच औ धर्मयुद्ध है/गड़े विकृति के खूँटे/पर उनको क्या लेना–देना/जिन महफिल अपराध सजी। इनके प्रमुख नवगीत संग्रह 1. गीत 2. हर डगर संत होती है 3. छत्रप सुनें 4. पाँखुरियाँ नोच दीं तथा 5. जो सहा सो कहा आदि हैं।

प्रेमशंकर रघुवंशी (8 जनवरी 1936 – 21 फरवरी 2016) के नवगीतों से गुजरना जीवन के यथार्थ से रूबरू होना जैसा लगता है। उन्होंने सही कहा है – बोलो भाई बोलो गम / चोर बड़ा या नंगा ऊँचा। है न किसी से कोई कम / उन्हें सिर्फ खुद की चिंता है। चाहे जग हो नरम गरम / रहबर तो दाखिल दफ्तर हैं। रखे जहाँ एटम बम / सबके लिए सोचते हर दिन / इसीलिए हैं आँखें नम! रु–रु बाजा रुंगताड़ा/ लगे लबारी ढोल पीटने / नाच रहे गलियों में नंगे / भिन्न–भिन्न फिरकों में बँट कर / भड़काते रहते दंगे / ऐसे ऐसे काम करे ये / ज्यों यमराजों के पाड़ा। अँजुरी भर घाम, मुक्ति के शंख सतपुड़ा के शिखरों से इनके प्रमुख नवगीत संग्रह हैं। नवगीत समीक्षा के भी दो ग्रन्थ इन्होंने लिखे हैं।

चन्द्रसेन विराट (3 दिसम्बर 1936–15 नवम्बर 2018) से मेरा संपर्क आठवें दशक से निरंतर बना रहा। मंचों पर भी साथ रहे। हिन्दी ग़ज़लकार एवं गीत कवि के रूप में उनकी पुख्ता पहचान थी। उनके कई गीतों को नवगीत की श्रेणी में रखा जा सकता है। यथा – दिया गया संदर्भ सही पर / अवसर और प्रसंग ग़लत है। भाव, अमूर्त और अशरीरी/वह अनुभव की वस्तु रहा है / चित्र न कर पाया रूपायित/ शब्दों ने ही उसे कहा है / उसका कल्पित रूप सही पर / दृश्यमान हर रंग ग़लत है / जब विश्वास सघन होता तब/संबंधों का मन बनता है। गगन तभी भूतल बनता है/भूतल तभी गगन बनता है। सही, प्रेम में प्रण करना पर करके प्रण, प्रण–भंग गलत है। संस्तुति, अर्थ, कपट से पायी /जो भी हो उपलब्धि हीन है। ऐसा, तन से उजला हो पर /मन से वह बिलकुल मलीन है। शिखर लक्ष्य हो, सही बात पर। उसमें चोर–सुरंग ग़लत है / संभव विडंबना भी है साथ नव–सृजन के / उल्लास तो बढ़ेंगे, परिहास कम न होंगे। अलगाव

की विवशता / हरदम निकट रही है / इतना प्रयत्न फिर भी / दूरी न घट रही है/होगा विकास फिर भी संभाव्य है विपर्यय / आवास तो बढ़ेंगे, वनवास कम न होंगे / परिणाम पक्ष में हो / परितोष पर न होगा / हो प्राप्त सफलताएँ / संतोष पर न होगा / हर प्राप्ति में विफलता का बोध शेष होगा / हों भोज अधिक फिर भी उपवास कम न होंगे। भौतिक पदार्थवादी / उपलब्धियाँ बढ़ेंगी / रक्तों रंगी वसीयत क्या पीढ़ियाँ पढ़ेंगी? / उपभोग्य वस्तुओं में है वस्तु आदमी भी/ संपन्नता बढ़ेगी, संत्रास कम न होंगे।

ओम प्रभाकर (5 अगस्त 1941 - 22 फरवरी 2021) के नवगीत बिम्ब सघनता एवं प्रतीक बाहुल्यता के कारण हृदय में गहरी छाप छोड़ते हैं, उनमें शिल्प एवं संवेदना का अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। उन्होंने लिखा है - इस क्षण यहाँ शान्त है जल / पेड़ गड़े हैं / घास जड़ी / हवा सामने के खंडहर में / मरी पड़ी / नहीं कहीं कोई हलचल / याद तुम्हारी / अपना बोध / कहीं अतल में जा डूबे हैं / सारे शोध / जमकर पत्थर है हर पल / रातें विमुख दिवस बेगाने / समय हमारा / हमें न माने। लिखें अगर बारिश में पानी / पढ़ें बाढ़ की करुण कहानी / पहले जैसे नहीं रहे अब / ऋतुओं के रंग-रूप सुहाने। दिन में सूरज, रात चन्द्रमा / दिख जाता है, याद आने पर / हम गुलाब की चर्चा - करते हैं / गुलाब के झर जाने पर / हमने, युग ने या चीज़ों ने / बदल दिए हैं। ठौर-ठिकाने। ये नवगीत के प्रारम्भिक कृतिकारों में हैं 1. कंकाल राग और 2. पुष्प चरित इनके संग्रह हैं।

दिवाकर वर्मा (25 अक्टूबर 1941 - 1 मई 2014) के नवगीतों में अनूठे शब्द विन्यास, ध्वन्यात्मकता, इंन्द्रीयबोध एवं सामयिक परिवेश का सटीक चित्रण दिखाई देता है - पल- पल जाल / बुन रही मकड़ी / युग के/ छल छंदों में फँसकर हुआ बर्फ / संवेदन बंजर। सहमी चिड़िया -भय ने जकड़ी / तार-तार / अभिशापित जीवन / चुभी फाँस। घायल अन्तर्मन/ पका घाव/ सींवन भी उधड़ी/ खिन्न देहरी / चौखट उन्मन / आँगन से भौजी की अनबन / सुलगे ज्यों। भौजी की लकड़ी। यह नकटों का गाँव / स्वर्ग का हर अधिकारी है। नाक कटाकर स्वर्ग मिले / यह किस्सा है जूना / सुख अपनी से/ उनकी कटनी का है कुछ दूना / सूर्पनखा की कटी-नाक लंका स्वर्ग सिधारी है। दृष्टिहीन धृतराष्ट्र बँध गया/ परिणय में गांधारे / भीष्म- बाण का भय/ नासिका शकुनि, कहा सँभारे/ कौरव दल को स्वर्ग/ जमानत में गांधारी है। दिवाकर जी भारतीय संस्कृति के प्रबल हिमायती रहे और वे राष्ट्रीयता बोध के शाश्वत मूल्य अपने गीतों में मुखरित करते रहे। 1. और उलझते गये जाल में तथा 2. सूर्य के वंशज सुनो इनके गीत संग्रह हैं।

डॉ. इसाक अश्क ((1 जनवरी 45 - 26 फरवरी 2016) ने सामाजिक विसंगतियों / विद्रूपताओं एवं विडंबनाओं पर खूबसूरती से कलम चलायी है। उदाहरण दृष्टव्य है - रंग गिरगिट की तरह / अभिमत बदलते हैं। अवसरों की /हुंडियाँ बढ़कर /भुनाने की / जानते हैं हम / कला झुकने। झुकाने की / यश / मिले इसके लिए हर। चाल चलते हैं / सूखी गुलदस्ते सी / प्यार की नदी / व्यक्ति / संवेग सब / मशीन हो गए/ जीवन /के सूत्र /सरेआम खो गए / और कुछ न कर पायी/ यह नई सदी / धूप जहरीली / कँटीले पल हुए / ताल -झीलों के तरल अनुबंध टूटे / प्यास के सौ तीर तन की ओर छूटे / मछलियाँ घायल नदी के तल हुए / स्वप्नदृष्टा टहनियों के पात सूखे। हो उठे व्यवहार किरणों के बड़े रूखे/ खुशबुओं के साथ हर क्षण छल हुए। आ गईं नदियाँ घरों तक खून की / मुँह चिढ़ाती भूख बच्चों की तरह। हो रही जिसपर ज़माने की जिरह / मुश्किल जुटाना रोटियाँ दो जून की / न्याय खुद अन्याय ढोने के लिए।

वे लम्बे समय तक समांतर नामक अनियत कालीन पत्रिका के माध्यम से नवगीत को प्रकाशित करते रहे। अभिशप्त हैं दिन रात रोने के लिए/हाँकते हैं यहाँ बस सब इनकी / बनाते रहे। इनके नवगीत संग्रह सूने पड़े सिवान, फिर गुलाब चटके, काश हम भी पेड़ होते लहरों के सर्पदंश तथा हरे दिन लौट आये हैं।

महेश अनघ (14 सितम्बर 47 - 4 दिसम्बर 2012) के नवगीत में - कौन है? सम्वेदना / कह दो अभी घर में नहीं हूँ / कारखाने में बदन है। और मन बाज़ार में / साथ चलती ही नहीं/ अनुभूतियाँ व्यापार में/ क्यों जगाती चेतना / मैं आज बिस्तर में नहीं हूँ / तन मालिक का / धन सरकारी। मेरे हिस्से परमेसुर / शहर धुएँ के नाम चढ़ाओ/ सड़कें दे दो झंडों को/ पर्वत कूटनीति को अर्पित/ तीरथ दे दो पंडों को / खीर-खांड खैराती खाते / हमको गौमाता के खुर। अहा बुद्धिमानों की बस्ती / या तो चुप्पी या तकरार / कोने-कोने भूत बियाने / सारा घर सन्नाटेदार। सूचीबद्ध हुई दिनचर्या-मज़बूरी रेखांकित है / चौके से चूल्हे की / अनबन / हर भांडा आतंकित है-किसी ख़ास दिन ख़ास वजह से / काग़ज़ पर लिखते हैं प्यार / यों तो इस भुतहा बाखर में / कोई आएगा ही क्यों / जिस धन से ख़ुशबू गायब है। उसे चुराएगा ही क्यों/फिर भी ताला है, कुत्ता है। और गोरखा चौकीदार / अपना कद ऊँचा रखने में / झुक कर चलना छूट गया। विज्ञापन से जोड़ा रिश्ता / विज्ञापन से टूट गया / इतनी चीजें जुड़ी कि हम भी / चीजों में हो गए शुमार। ये प्रखर और दमदार नवगीतकार हैं। 1. कनबतियाँ 2. झनन झकास 3. फिर माँडी रांगोली तथा 4. गीतों के गुरिया इनके प्रमुख नवगीत संग्रह हैं।

जहीर कुरेशी (5 अगस्त 1950- 20 अप्रैल 2021) को मुख्य रूप से हिन्दी ग़ज़लकार के रूप में जाना जाता है लेकिन उनके लिखे नवगीतों का आकलन किया जाए तो वे किसी से कमतर दिखाई नहीं देते। बानगी के तौर पर - बंजारों से चले / पीठ पर लादे अपना घर / मीलों लम्बा सफ़र / योजनों लम्बा जीवन है। लेकिन, उसके साथ / भ्रमित पंछी जैसा मन है / ग़लत पते के ख़त-से / भटक रहे हैं इधर-उधर / भीतर से तो हम श्मशान हैं। बाहर मेले हैं / कपड़े पहने हुए/ स्वयं को नंगे लगते हैं। दान दे रहे हैं। फिर भी भिखमंगे लगते हैं / ककड़ी के धोखे में/ बिकते हुए करेले हैं। हम स्वयं से भी / अपरिचित हो गए हैं। रास्ते हैं / और उनकी दूरियाँ हैं / दूरियों की भी / अलग मजबूरियाँ हैं / हम भटकते रास्तों में / खो गए हैं। वासनाएँ /जिन्दगी से भी बड़ी हैं / प्यास बनकर/उम्र की छत पर खड़ी हैं। तृप्ति के पथ पर /मरुस्थल हो गए हैं। यदि विसंगतियों के साथ नवगीत से संदेश प्रतिध्वनित होता हो तो यह नवगीतकार की कुशल कारीगरी मानी जाती है।

इस संदर्भ में **हरीश निगम** (31 जुलाई 55 - 28 जून 18) की कुछ पंक्तियाँ - मेहँदी-सुर्खी। काजल लिखना / महका-महका / आँचल लिखना। धूप-धूप / रिश्तों के / जंगल / ख़त्म नहीं / होते हैं / मरुथल / जलते मन पर / बादल लिखना। धूप ने / ढाया कहर / फूल घायल / ताल सूखे। हैं हवा के बोल रूखे / बो रहा मौसम / ज़हर / सूखे में। सूखे हम, बाढ़ में बहे / जहाँ रहे हरदम मँझधार में रहे / धूप सदा / कच्ची ही कान की रही। खेत-बैल-फसलें। परधान की रहीं। अपने तो कर्जों के / क्रूर अजदहे! / चाहे हो जनवरी/चाहे हो जून / एक जून / रोटियाँ, एक जून सून / बाज़ों की घातों से / रात-दिन सहे / मुट्ठी में / काग़ज़ से मुड़े-तुड़े हैं। टूट-टूट, / रोज़ कई बार जुड़े हैं। घुन खाई देहों में / लिए कहकहे। इस नगर

से / आ गए हम तंग / भीड़ का/पीकर ज़हर हँसते रहो / रोज़ उजड़ो / और फिर बसते रहो/ किस तरह के / ये नियम, ये ढंग / इस नगर से / आ गए हम तंग। थी बहुत / अपनी नदी मीठा कुआँ। खो गए सब/ बच रहा काला धुआँ। लग गई है। जिंदगी में जंग / इस नगर से / आ गए हम तंग। वैसे तो उनका कोई स्वतंत्र नवगीत संग्रह नहीं प्रकाशित है। पत्र-पत्रिकाओं और समवेत संकल्पों में नवगीत छपे हैं।

मूल रूप से शायरा **डॉ. वर्षा सिंह** -(29 अगस्त 1955 - 2 मई 2021) के कुछ नवगीत भी प्रकाशित हुए थे जिसमें प्रकृति एवं प्रवृत्ति के माध्यम से जन जीवन की पीड़ा और संघर्ष - प्रतिरोध का सुंदर चित्रण दिखाई देता है-

वर्षा हूँ / बूँद के साथ मुझे रहने दो/छप्पर भी गीले हों /छाजन भी गीले हों/ सड़कें भी गीली हों। आँगन भी गीले हों। धनिया का चूल्हा पर / आग आज दहने दो। कुछ सपने भीगे हैं। कुछ सपने सूखे हैं। झाड़ी हैं, बूटे हैं। दादुर का शोर है। उग आई घासों का/ रस्ता हर ओर है। छप्पर के नीचे भी / भीगते सलूखे हैं।

अविभाजित मध्यप्रदेश में शामिल रहे छत्तीसगढ़ के नवगीतकारों की यदि मैं बात न करूँ तो कुछ अधूरा प्रतीत होगा। छ.ग.में लिखे गए या लिखे जा रहे नवगीतों का अपना अलग मिजाज रहा है। यहाँ के स्मृति शेष नवगीतकारों पर दृष्टि डालें तो - **नारायण लाल परमार** (1 जनवरी 1927- 27 अप्रैल 2003) के नवगीतों में अनुभूति एवं अभिव्यक्ति का बेजोड़ समन्वय दिखाई देता है। प्रकृति, मनुष्य एवं जीवन से उनका गहरा रिश्ता रहा। सटीक बिंबों का रचाव, भाषिक सौंदर्य एवं शब्द विन्यास की कुशलता उनके नवगीतों की विशेषता है। मिसाल के रूप में -

माँगती हिसाब नहीं / रेत कभी पानी से/ जीने का अर्थ एक/ क्षण प्रतिक्षण जागता/ हर स्थिति को अपने/ अनुभव से पागता/ स्वाभिमान ऊँचा होता/ अक्सर धानी से।

आदमी सलीब पर / और बहस जारी है / जासूसी से भरा / लगता हर दृश्य है। नोटिस हड़ताल की/ दे चुका भविष्य है। वर्तमान बेखबर। और बहस जारी है।

त्रिभुवन पाण्डेय (21 नवम्बर 1938-6 मार्च 1921) अपने नवगीतों में आधुनिक जीवन शैली के खोखलेपन एवं नारकीय जीवन के यथार्थ को बखूबी रेखांकित करते हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण पंक्तियाँ -

आ गए शब्दों पर / पहरे के दिन/ उनके ही नारे हों /उनका ही ध्वज/ उनका इतिहास हो/ उनके पूर्वज/ उनकी ही आस्था पर / ठहरे से दिन। बोझ लदे कंधों पर / काँवर भर धूप/ खोज रहे लकड़हारे। पेड़ों की छाँव/ हाँफ रही नदियों में/ थकी हुई नाव/ अलग अलग तृष्णा है / एक ही स्वरूप/ सपनों में दिखते हैं / पोखर और ताल/ पूछ रही पुरवासिन/ पनघट का हाल/ पत्तों सा कुम्हलाया/ धनिया का रूप

अनिरुद्ध नीरव (1 जुलाई 1945-18 फरवरी 2016) की गणना देश के लब्ध प्रतिष्ठ नवगीतकारों में होती है। उनके नवगीतों में शिल्प एवं मानवीय संवेदना का अद्भुत संतुलन दिखाई देता है। उनके नवगीत संग्रह - उड़ने की मुद्रा में की सभी रचनाएँ सहज, संश्लिष्ट एवं दृष्टि संपन्न हैं। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

चिड़िया / पत्थर हो जाए तो? / ये चिमनी / सीमेंट मिलों की / ये विष के बादल / विकसित होने की / परिणति हैं / या पापों के फल / हल से / मक्खन होती मिट्टी /बंजर हो जाए तो? यह नदी। रोटी

पकाती है / हमारे गाँव में / सूखती-सी / क्यारियों में /फूलगोभी बन हँसे /गंध / धनिए में सहेजे /मिर्च में ज्वाला कसे / यह कड़ाही / खुदबुदाती है /हमारे गाँव में।

अशोक शर्मा (18 फरवरी 1943 -14 जुलाई 2014) का विज़न एवं कैनवास बहुत व्यापक था। जीवन की सच्चाइयों को वे हूबहू रूपायित करते थे। कुछ पंक्तियाँ इस दृष्टि से गौरतलब हैं -

मेरे भी घर यही हादसा / आखिरकार हुआ/ सूख गया है/बहुत पुराना/घर में खुदा कुआँ/ आग चढ़ी हँड़िया के दाने। अबतक कच्चे हैं। पत्तल लिए हाथ में बैठे/ भूखे बच्चे हैं। जलती लकड़ी से उठता है/ काला स्याह धुआँ/समीकरण चूल्हे चक्की का / खाता मेल नहीं/ आज नहीं है घर में आटा/ कल था तेल नहीं / माँ कहती है दाल पकाना मुख में दाँत नहीं/ कई दिनों से पिता कह रहे। खाया भात नहीं/ दाल भात का जोड़ बिठाना/ बस का खेल नहीं।

गीतकार **पुष्कर भारती** (31 दिसम्बर 1948 -6 नवम्बर 2008) मेरे घनिष्ठ रहे हैं। सन 1980 में हम दोनों बालकों के अनुसंधान एव नियंत्रण प्रयोगशाला के स्मेल्टर अनुविभाग में एक साथ काम करते थे। एक-दूसरे के गीतों एवं ग़ज़लों के प्रथम श्रोता होने के कारण आज भी मेरी स्मृति में उनके वो गीत हैं जिन्हें नवगीत की श्रेणी में रखा जा सकता है। कुछ पंक्तियाँ -

नहीं मायने रखता कोई। नजर हमारी ओर फेंकना/ जागी रात मसहरी काटे/नागफनी ने मिलजुल बाँटे/ आँगन के चुभते सन्नाटे/ सहमा-सहमा रात का माथा/ पीछे मुड़कर नहीं देखना। दीपक बाती नेह अगन बिन/ खूब जला ये हिया रातभर / नहीं मिला रजनीगंधा से/ खुशबू का काफिया रातभर।

परम्परागत छन्दों पर गीत लिखने वाले जिन गीत कवियों ने नवगीत की रचना की उनमें श्यामा सलिल, भगवान स्वरूप 'सरस', डॉ. गोविन्द 'अमृत', शंकर सक्सेना एवं वीरेन्द्र मिश्र एवं केशव पांडे का नाम उल्लेखनीय है। बहुत से गीतकार ऐसे हैं जिनके किसी न किसी गीत में नवगीत के तत्व दिखाई देते हैं। पढ़ने के बाद संशय की स्थिति निर्मित हो जाती है कि उन्हें किस श्रेणी में रखा जाए। साहित्य जगत में अपनी पुख्ता पहचान बनाने में कामयाब नवगीत की ओर आज सभी रचनाकारों का आकर्षण हिंदकी - हिन्दी ग़ज़लों की तरह निरंतर बढ़ रहा है।

यह शाश्वत सच है कि पचास साठ साल के अंतराल में हर प्रचलित विधा को समय की माँग के अनुरूप परिवर्तन के दौर का सामना करना पड़ता है। नवगीत के साथ भी इन दिनों यही हो रहा है। इसलिए इसे समकालीन गीत भी कहा जाने लगा है। समय के साथ हो रहे परिवर्तन को खुले मस्तिष्क से स्वीकार करना होगा। यह नवगीत की सफल यात्रा के लिए बहुत ज़रूरी है वरना नवगीत एक सीमित, बौद्धिक समाज तक ही सिमट कर रह जाए तो कोई आश्चर्य नहीं होगा। मुझे विश्वास है नये आलोचक इस दिशा में अपनी महती भूमिका का निर्वहन पूरी ईमानदारी के साथ करेंगे / नवगीत आलोचना की दृष्टि से मैं कह सकता हूँ कि स्थिति आज बहुत अच्छी नहीं है। पूर्णकालिक आलोचकों की नगण्यता है। देश में मुख्य धारा के आलोचकों द्वारा नवगीत एवं नयी कविता की प्रकृति को समतुल्य एवं दोनों की वैचारिक अंतर्वस्तु को समान मानने के कारण नवगीत के मूल्यांकन पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया जबकि सच्चाई यह है कि वैचारिकता के आधार पर नवगीत एवं समकालीन कविता के बीच के अंतर को साफ़ देखा जा सकता है।

किसी भी विधा को लोकप्रिय एवं समृद्ध बनाने में आलोचकों की तुलना में पाठकों का बहुत बड़ा योगदान होता है। आज भाषा के सरलीकरण की महती आवश्यकता है। शब्दकोशी नवगीतों की जगह ऐसे नवगीतों की रचना पर जोर देने की आवश्यकता है जो जनमानस की समझ के अनुरूप हों। इधर कुछ पत्रिकाओं ने नवगीत विशेषांक निकालना आरंभ किया है। यह सराहनीय पहल है। पहले की तुलना में आज अच्छे नवगीत लिखे जा रहे हैं। नवगीत का भविष्य अच्छा है, बशर्ते वर्चस्व की लड़ाई एवं मुँह देखी समीक्षा / आलोचना को छोड़कर पूरी निष्ठा एवं ईमानदारी के साथ इस दिशा में काम किया जाए। मैं आँकड़े एवं दस्तावेजों के एकत्रित करने को शोध नहीं मानता। शोध वो होता है जिससे अनुसंधान के नये द्वार खुलें, साहित्य को नयी दिशा मिले। 'तू मेरा चाँद मैं तेरी चाँदनी' की परंपरा के विकृत रूप के चलते कई बार प्रतिभाशाली लोग एवं सही बातें सामने नहीं आ पातीं। यही वजह है कि आज पीएचडी करने वालों की कम और करवाने वालों की पूछ परख अधिक होने लगी है। नवगीतों पर कार्य कर रहे शोधार्थियों को आज सजग होने की आवश्यकता है क्योंकि शोध सत्य की बुनियाद पर आधारित होना चाहिए / मैंने बहुत से मार्गदर्शकों एवं जिनपर शोध किया जा रहा हो उन्हें शोधार्थियों के लिए थीसिस लिखते देखा है। इन दिनों स्वयं पर पीएचडी करवाने का चलन भी जोरों पर है। शोधार्थियों को चाहिए कि वे ऐसे हथकंडों से बचकर रहें। अंत में एक बात और कि इस आलेख में मैंने श्रेष्ठता एवं वरिष्ठता को आधार न मानकर जन्मतिथि के आधार पर नवगीतकारों का उल्लेख किया है।

सम्पर्क : *कोरबा (छ.ग.)*
मो. 7974850694 / 9424141875

डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'

कुसुम-कोमलता से वज्र-कठोरता के गीत यात्री : श्यामलाल शमी

लक्ष्य प्राप्ति के लिए संकल्पित दृढ़ता, सर्वतोभावेन गीतधर्मा कोमल और मनोहर व्यक्तित्व, सरस कोमल गीतों से प्रारम्भ हुई यात्रा का दलितों, शोषितों, पीड़ितों, वंचितों और वनवासी-गिरिवासियों की व्यथा और संघर्ष के चित्रण में रूपान्तरण, गीत के कथ्य और शिल्प का पूर्ण सामंजस्य और अनुभूति की सच्चाई को यदि एक ही नाम देना हो तो वह होगा स्व. श्यामलाल 'शमी'। शमी जी की गीत-यात्रा 'हृदय और आत्मा की सच्ची भावनाओं से अनुप्राणित' गीतों से प्रारम्भ हुई थी।

1956 से 1966 तक के गीतों का संग्रह 'गीत' वस्तुत: किशोर और युवा मन की गहन आत्मानुभूति के गीतों का संग्रह है। इसमें प्रथम प्रणय की उल्लासमयी अनुभूति, प्रणय पर लगी संसार की वर्जनाओं का कटु यथार्थ, अज्ञात प्रिय के प्रति समर्पण, वियोग की व्यथा और मन की अकृत्रिम सहज संवेदनाओं का प्रकाशन है। कई गीतों में लोकगीतों की शैली भी अपनायी गयी है। जब वे विगलित स्वर में अज्ञात प्रिय को संसार के कटु यथार्थ से परिचित कराते हुए कहते हैं -

'मुझको मन देने से पहले, इतना सोच लिया तो होता

मैं बन्धन से मुक्त नहीं हूँ, मेरी साँसों पर पहरे हैं।' (गीत - श्यामलाल 'शमी' - पृष्ठ-11 साहित्य सदन देहरादून - 1970)

तो कवि की वर्जनाजन्य विवशता मानो मूर्तिमान हो उठती है।

शमी जी के पास गीतों के माधुर्य के अनुरूप कण्ठ में भी माधुर्य था। उस काल में अलीगढ़ में नीरज जी छायावादोत्तर गीतों को नया रूपाकार दे रहे थे और कवि सम्मेलनों को स्वर के सम्मोहन से सजा रहे थे। उन्हीं के समानान्तर शमी जी के स्वर का माधुर्य भी कवि सम्मेलनी मंचों को लालित्य से सम्पन्न कर रहा था। अलीगढ़ के ही वार्ष्णेय महाविद्यालय में उनकी एम.कॉम. तक की शिक्षा पूर्ण हुई थी। बीसवीं सदी के छठवें दशक से 8वें दशक तक अलीगढ़ की भूमि गीत-सृजन की दृष्टि से स्वातन्त्र्योत्तर काल में अत्यन्त उर्वरा हो गयी थी। एक ओर गोपालदास 'नीरज' कवि सम्मेलनों के क्षितिज को अपने ऐन्द्रिक अतीन्द्रियता के प्रणयधर्मी गीतों से मधुमय बना रहे थे, दूसरी ओर रवीन्द्र भ्रमर रोमांस और लोकचेतना के सामंजस्य से नवगीत की पृष्ठभूमि तैयार कर रहे थे और तीसरी ओर रमेशरंजक अपनी सृजनधर्मी ऊर्जस्वी चेतना से नवगीत की जनवादी भाव-भंगिमा का विस्तार कर रहे थे। अब तक नयी

कविता ने हिन्दी-काव्य को छन्द-मुक्ति का अराजकतावादी मन्त्र देकर काव्य को रुक्ष और जटिल बिम्बधर्मी गद्य में परिवर्तित करना प्रारम्भ कर दिया था। नयी कविता के कवि और समीक्षक कवि सम्मेलनों में गीतों की सम्मोहक स्वर-भंगिमा और लोकप्रियता से आतंकित थे। इसलिए वे गीत को युग की विसंगतियों, जटिल यथार्थ और संश्लिष्ट अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए अक्षम घोषित कर रहे थे। वे आलोचना के लिए भी गीतों का नाम नहीं ले रहे थे। ऐसे समय कुछ गीतधर्मा कवियों को रचनात्मक धरातल पर गीत के सामर्थ्य को प्रमाणित करना जरूरी लगा और इसी जरूरत की अनुभूति ने नवगीत को जन्म दिया।

जीवन की विसंगतियों, आम आदमी के जीवन-संघर्ष, मूल्य-संक्रमण और अनास्था को स्वरबद्ध करने की आवश्यकता और शोषित, पीड़ित, मानवता को वाणी देने की चुनौती को स्वीकार करके उसे गीत के फार्मेट में ढालना दुरूह कार्य था परन्तु नवगीतकारों ने इस चुनौती को स्वीकारा ही नहीं उसका रचनात्मक उत्तर भी दिया। तब शमी जी के अलीगढ़ से ही एक स्वर उठा था, 'आज के युग में आज का गीत लिखना, नयी चेतना और नयी संवेदनाओं को मथकर गीतमय करना तथा उसे, उसके अनुरूप नया शिल्प, नया छन्द, नयी भाषा, नयी गति देना कोई आसान काम नहीं है, लेकिन यह बात उन अलोचकों के गले नहीं उतरती जो गीत को आज के युग के अनुरूप विधा ही नहीं मानते। उनका यह कहना कि आज जब जीवन ही उलझ गया है और जब जीवन की रागात्मकता ही टूट गयी है, तब गीत जैसी शर्तों से जुड़ी हुई विधा का प्रासंगिक रहना कहाँ सम्भव है? लेकिन वे यह भूल जाते हैं कि जीवन के उलझाव और बिखराव की इसी खण्डित गति को पचाकर गीतमय करना और ताजगी के साथ अभिव्यक्त करना ही तो आज के समर्थ गीतकार का दायित्व है।' (हरापन नहीं टूटेगा- (सही जमीन) -रमेश रंजक पृष्ठ - 08 अक्षर प्रकाशन प्रा. लि. अंसारी रोड दिल्ली - 06 - 1974)

नवगीतकार आदमी का संघर्ष और उद्वेलन ही नहीं उसकी अपराजेय जिजीविषा का भी चित्रण कर रहे थे। शमी जी को इस दृष्टि से नवगीत अपने लिए उपयुक्त और समर्थ माध्यम प्रतीत हुआ। इसलिए उन्होंने गीतों में अपने समय के खुरदरे यथार्थ और आम आदमी की संघर्षरत जिजीविषा को स्वर देना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने कहा-

'जीवन-गति सुबह-शाम उलझन में जकड़ी
दिनचर्या रहती है नोन-तेल लकड़ी।
जब-जब भी पाँव गये। खुशियों के द्वारे
तब-तब ही पीड़ा ने। अग्निबाण मारे' (पाँखुरियाँ नोंच दीं- श्यामलाल 'शमी'- पृष्ठ -25 कल्पतरू प्रकाशन दिल्ली -32 - 1998)

परन्तु तमाम अग्निबाणों की चुभन और जलन को झेलकर भी शमी जी की जिजीविषा अपराजित रहकर कहती यही है, 'आत्मघात करना तो कोरी बकवास' यही नहीं हर संघर्ष, हर आघात और हर प्रहार उन्हें नयी ऊर्जा और नया सामर्थ्य देकर एक दृढ़ निश्चय से भर जाता है। इसीलिए वे दृढ़ता से कहते पाये जाते हैं-

'जूझते हुए कि टूटना/झुकने का अर्थ तो नहीं।
माना कि चौसर की/पिटी हुई सी/गोटी हम हैं

यह सच है कि पाले/पैने नाखूनों/ वाले भ्रम हैं
अब तक निस्संग चले/जीवन पर व्यर्थ तो नहीं।' (वही- पृष्ठ- 30)

शमी जी के नवगीतों में एक ओर आत्मव्यथा का स्वर है (आहें भरकर भी दर्द कहा है मैंने) तो दूसरी ओर वे परपीड़ा से भी व्यथित और आहत दिखाई पड़ते हैं। (जड़ जिसकी खोखली हुई/हम ऐसे पेड़ के तने) परन्तु इन दोनों स्वरों से अलग शमी जी 'पाँखुरियाँ नोंच दीं' के गीतों में प्रणयानुभूति के गीतों से भी अपने को पूरी तरह मुक्त नहीं कर पाये हैं। इस संग्रह के दूसरे खण्ड का नाम 'सौन्दर्य और प्रणय' है जिसमें प्रणयातुरता, देहगंध की मादक छुअन, स्मृति, वर्जनामुक्त प्रणय-जीवन की कामना तथा विरह-वेदना और बिछुड़न की तड़प के 25 नवगीत संग्रहीत हैं। इन गीतों की आनुभूतिक गहनता के साथ-साथ इनका शिल्प भी नूतन है। 'पीपल के पत्ते सी पियरायी आशायें' अधनंगे नीम तले, चितकबरी धूप जले, 'पर्वत के छज्जे पर मौन बैठी शाम', 'जामुन के रंग रची संध्या के द्वारे' जैसी पंक्तियों की भाषा और बिम्ब नवगीत के स्वरूप को प्रकट करने में सक्षम हैं।

शमी जी का तीसरा गीत संग्रह 'हर डगर संत होती है' पारम्परिक गीतों का संग्रह है। स्वाभाविक है कि ये पहले के लिखे हुए गीतों का पुनः प्रस्तुतीकरण भर है।

शमी जी का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नवगीत संग्रह 'जो सहा सो कहा' है। वाणी प्रकाशन दिल्ली से 2012 में प्रकाशित इस संग्रह में कवि के नवगीतों का नितान्त बदला हुआ स्वरूप हमें देखने को मिलता है। इन नवगीतों के स्वरूप का आभास हमें 'मेरी बात' शीर्षक से लिखी भूमिका से ही मिल जाता है। वे कहते हैं 'एक गंभीर और समसामयिक बात यह भी है कि जन-संघर्ष से निरपेक्ष रहकर साहित्य कर्म आज के युग में करना एक बेमानी एवं अनर्गल प्रक्रिया है... यदि यह बात हम सामाजिक आन्दोलन, जनसंघर्ष एवं विभिन्न प्रकार की जनसमस्याओं के सन्दर्भ में लें, तो यह कहा जा सकता है कि एक रचनाकार का सीधा सम्बन्ध, यद्यपि इनसे नहीं होता है, परन्तु फिर भी कहीं न कहीं वह इनसे जुड़ाव अवश्य महसूस करता है। चूँकि वह इसी समाज के बीच रहता है, अतः समाज में व्याप्त विसंगतियों, विकृतियाँ एवं बिडम्बनायें रचनाकार के मन में एक प्रकार के नकार का भाव उत्पन्न कर देती हैं और वह समय-समय पर इन्हीं विद्रूपताओं के विरुद्ध अपनी आवाज, अपनी रचनाओं के माध्यम से उठाता रहता है।' (जो सहा सो कहा- श्यामलाल 'शमी'-पृष्ठ-07- वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए. दरियागंज-नयी दिल्ली-110002)

इस कृति का समर्पण भी 'देश की दलित, आदिवासी, पिछड़ी नारी एवं सर्वहारा वर्ग की उस समूची मानवता को, जो सदियों से और आज भी दमन, अत्याचार, उत्पीड़न, शोषण, भूख, गरीबी, छुआछूत, अपमान, तिरस्कार, अमानवीय व्यवहार एवं अनेक सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक विषमताओं से जूझते हुए अपने अस्तित्व, स्वाभिमान एवं सुखमय भविष्य के लिए प्राणपण से संघर्षरत है' को किया गया है। यह अनायास नहीं है कि संग्रह का प्रथम नवगीत 'नक्सलवाद' वनवासी-गिरिवासियों की समस्याओं और जीवन-संघर्ष को चित्रित करता है तो अन्तिम गीत 'भूकंप या सुनामी' समाज में व्याप्त जातिप्रथा की भयावहता और ऊँच-नीच की समस्या पर केन्द्रित है।

शमी जी के दलित चिन्तन में अन्य अनेक दलित रचनाकारों की तरह आक्रोश और सवर्णों के प्रति प्रज्ज्वलित घृणा की अभिव्यक्ति का सरलीकरण भर नहीं है अपितु उनकी रचनाओं में एक ठहराव

और वैचारिक दृढ़ता दिखती है। वे समस्याओं की भयावहता और उसके ऐतिहासिक क्रम को तो चित्रित करते ही हैं परन्तु उनकी व्यग्रता समस्या का समाधान सुझाने में भी रहती है। उदाहरणार्थ 'नक्सलवाद' गीत में वे कहते हैं कि नक्सली समस्या का कारण 'भूमिघरों के उत्पीड़न का फल है और हमें गरीब से आँखें नहीं चुरानी चाहिए। उनकी समस्याओं का हल भी बताते हैं। गीतांश देखें – 'सब कहते हैं, मैं भी कहता/ नक्सलवाद बुरा... इन्हें चाहिए रोजगार, शिक्षा/ भरपूर चिकित्सा/धन–धरती, जंगल विकास/में वाजिब अपना हिस्सा/हटे इस तरह, इनकी आँखों/ कुण्ठा–जाल पुरा हिंसा, प्रतिहिंसा की विधि तो/ नहीं समस्या हल है/उग्रवाद का रहा कभी भी/क्या भविष्य उज्ज्वल है?'(वही– पृष्ठ – 13–14)

वनवासी–गिरिवासी और आदिवासियों के जीवन संघर्ष उनकी समस्याओं, उनके अधिकारों और उनके जल, जमीन और जंगल के अधिकार के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण के नवगीत लिखने वाले रचनाकार गिने–चुने हैं। सत्यानारायण, आचार्य भगवत दुबे और लक्ष्मी नारायण 'पयोधि' को छोड़कर इस विषय पर कलम चलाने वाले नहीं दिखाई पड़ते पर इन सबने भी चार–छः या दस ही गीत इस ज्वलन्त विषय पर लिखे हैं परन्तु श्यामलाल शमी एकमात्र ऐसे नवगीतकार हैं जिन्होंने आदिवासियों की व्यथा के साथ 'सहानुभूति' नहीं अपितु 'समानुभूति' के साथ नवगीतों की रचना की है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि शोषितों, पीड़ितों, वंचितों और वनवासियों के लिए वे नवगीत 'प्रतिबद्धता' के साथ नहीं 'सम्पूर्ण सम्बद्धता' के साथ लिखते हैं। आदिवासियों के शोषण के प्रति सम्पूर्ण सम्बद्धता का उदाहरण बनता निम्नलिखित गीतांश दृष्टव्य है–

'उनकी माताएँ/बच्चों को/भूखा नहीं सुलाएँ/जल, जंगल में भी अपनी हिस्सेदारी हो/शोषण मुक्त समाज/ बनाना होगा अपना,/हमको भी विकास का/सूरज घर लाने दो/ अत्याचारों की सिहरन का/टूटा सपना/ मुट्ठी उछले/ इससे पहले/ हम वाजिब हक पाएँ' (वही– पृष्ठ – 64–65)

वस्तुतः शमी जी शोषितों के साथ अपनी सहानुभूति और 'सम्बद्धता'–अर्थात् यह आभास कि वे उन्हीं में से एक हैं–का प्रमाण अनेक नवगीतों में देते चलते हैं। यथा –

1.'कूड़ाघर–सी रही जिन्दगी/हम कचरे से कुचले बन्दे'–पृष्ठ 96

2.'वंचित नकारे हैं सदा तुमने/स्वीकार हमको कीजिए'–पृष्ठ 15

3. हाड़तोड़ मेहनत में अपना/सारा तन सूखा–पृष्ठ 19

4. गया सदियों से/हमें समझा/दो पैरों वाले जानवर–पृष्ठ 60

5. बाहुबलि जुल्मी/तुम तो/ पास अपने/मधुर बानी भी–पृष्ठ 51

6. हम त्रिशंकु से घृणा पटल पर/टँगे हुए हैं, अब भी–पृष्ठ 22

7. मौरूसी जायदाद तुम्हारी/ कब तक बने रहें?/ दलित आदिवासी अब कब तक/पीड़ा अग्नि दहें? पृष्ठ 34

'जो सहा सो कहा' के नवगीत शमी जी की कुछ निश्चित मान्यताओं को प्रकट कर देते हैं। वे मानते हैं कि – समाज में समरसता आए। जाति बन्धन टूटें और शोषणमुक्त समाज का ढाँचा तैयार हो, तभी राष्ट्र का उत्थान सम्भव है यथा–

'हो निर्धन–उत्थान/राष्ट्र का तब होगा उत्थान/तब मानव–मानव/का अन्तर होगा एक समान/.....इस

समाज की व्यवस्था/ के मानी को हमें बदलना है/ऊर्ध्वाधर वर्ण-व्यवस्था-चंगुल, शीघ्र निकलना है/ कुटिल कारणों नहीं/राष्ट्र में रहा एकता-भान, (वही - पृष्ठ - 37) शमी जी की दूसरी मान्यता यह है कि दलित साहित्य दलितों के द्वारा ही लिखा जाना चाहिए क्योंकि वे लिखेंगे तो उनके लेखन में भोगी हुई पीड़ा का चित्रण होगा, वे स्वानुभूति से लिखेंगे, सहानुभूति से नहीं, 'इसीलिए कहता दलितों को/ अपनी व्यथा-कथा लिखने दो' जैसी पंक्तियाँ इसी तथ्य की साक्षी देती हैं। शमी जी की तीसरी मान्यता है कि दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र भिन्न है। वह साहित्य शास्त्र के पुराने मापदण्डों से नहीं मूल्यांकित किया जा सकता है। वे दलित साहित्य को कबीर और रैदास की परम्परा से जोड़ते हैं। इसलिए स्पष्ट कहते हैं -

'अपनी बानी कह रैदासा/अपनी साखी बोल कबीरा/....उनको निर्धारित करने दे भाषा-शैली/ मूर्धन्य वे लोग/चदरिया/जिनकी मैली/ 'रामविलासों' 'नामवरों' की/ बहसों में मत उलझ फकीरा' (वही- पृष्ठ - 55)

'जो सहा सो कहा' के अतिरिक्त उनके दो गीत संग्रह और हैं 1.अधरप्रिया, 2. छत्रप सुनें। इनमें 'अधरप्रिया' के तो नाम से ही स्पष्ट होता है कि यह प्रथम गीत संग्रह 'गीत' की परम्परा के गीतों का संग्रह होगा। और 'छत्रप सुनें' निश्चित रूप से 'दलित चिन्तन' के नवगीतों का संग्रह होगा। कुछ गीत मुझे उनके सुपुत्र श्री 'संजीव शमी' जी (आई.पी.एस.-म.प्र.) ने उपलब्ध कराए हैं। उन्होंने बताया है कि गीत उन्होंने अपने पूज्य पिताश्री के कम्प्यूटर से ही डाउनलोड किये थे, अत: नहीं कहा जा सकता कि ये उनके अप्रकाशित नवगीत हैं या 'छत्रप सन' के नवगीतों की पाण्डलिपि इनकी संख्या कल 24 है, अत: इनकी छत्रप 37 पाण्डुलिपि होने की सम्भावना क्षीणतम है, हाँ इनमें एक 'छत्रप सुनें' शीर्षक का गीत अवश्य है। दृष्टव्य है-

'छत्रप सुन लो/कान खोलकर/ निचले पायदान वालों की चीख/ चौपालों पर जले/ अलावों की कानाफूसी/ एक दिवस तो -/मुखर बनेगी ही/ आमजनों का जीवन/ जब भी त्रस्त बनाओगे/दबी राख/ चिनगी सुलगेगी ही।' (वही-पृष्ठ - अप्रकाशित गीत)

यह भी सम्भव है कि यह गीत छत्रप सुनें के गीतों में सम्मिलित हो और यह भी सम्भव है कि शोषकों और सामन्तों के लिए छत्रप प्रतीक उनके मन को भा गया हो और उन्होंने इसे दूसरे गीतों में भी ढाल दिया हो।

अपने मौलिक गीत संग्रहों के अतिरिक्त 'शमी जी' ने एक 'संघर्ष के स्वर' नामक काव्य संग्रह का सम्पादन भी किया था। संघर्ष के स्वर 'दलित, आदिवासी रचनाकारों की रचनाओं का संग्रह है। इसमें 66 दलित-आदिवासी व शोषित रचनाकारों की रचनायें सम्मिलित हैं। इसमें दलित साहित्य पर प्रथम पुस्तक लिखने वाले तीन बार विभिन्न राज्यों के राज्यपाल रह चुके स्व. माताप्रसाद जी 500 से अधिक पुस्तकों के लेखक और यायावर-साहित्य के पुरोधा एवं डॉ. अंबेडकर रचनावली के सम्पादक, डॉ. श्याम सिंह शशि, ओम प्रकाश वाल्मीकि, डॉ. धर्मवीर और श्योराज सिंह बेचैन जैसे वरिष्ठ रचनाकारों के साथ-साथ युवा दलित रचनाकारों की रचनायें भी सम्मिलित हैं। इसी दृष्टि से यह एकमात्र उत्तम संकलन है।

श्यामलाल 'शमी' जी के समग्र लेखन पर चर्चा करते समय उनके दो महत्त्वपूर्ण अप्रकाशित ग्रन्थों पर चर्चा किए बिना यह आलेख अधूरा रहेगा। उन्होंने भगवान बुद्ध की धर्मपत्नी पुश्यश्लोका यशोधरा पर

'यशोधरा' महाकाव्य लिखा था। बुद्ध पर असंख्य महाकाव्य, खण्डकाव्य और फुटकर कविताएँ और ग्रन्थ लिखे गए हैं परन्तु राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के 'यशोधरा' खण्डकाव्य के अतिरिक्त 'यशोधरा' पर किसी और कवि ने कलम चलायी हो, मुझे ज्ञात नहीं। इस दृष्टि से शमी जी नारी-सशक्तीकरण के पुरोधा दिखाई पड़ते हैं। अपनी पुत्रियों को भी पुत्र के समान परिवरिश, प्रेरणा और शिक्षा देकर उन्हें पुत्र के समकक्ष ही भारतीय प्रशासनिक सेवा में उच्च पदों पर पहुँचाने का मार्ग प्रशस्त करना इसका ज्वलन्त प्रमाण है। तभी तो उनकी पुत्री श्रीमती नीलम शमी राव आई.ए.एस होकर आज उच्च प्रशासनिक पद सुशोभित कर रही हैं और कनिष्ठ पुत्री श्रीमती दीपिका शमी बहुराष्ट्रीय कम्पनी में उच्चपदस्थ रहकर स्वेच्छा से उसका त्याग कर चुकी हैं। इसके अतिरिक्त दूसरी अप्रकाशित कृति एक शोधग्रन्थ है।

'बुद्ध-समकालीन तीर्थंकर भगवान बुद्ध और बोधिसत्व डॉ.अंबेडकर' यह शोधग्रन्थ 596 पृष्ठ में टंकित है। इसमें हिन्दी के 83 और अंग्रेजी के 24 श्रेष्ठ सन्दर्भ ग्रन्थों के सन्दर्भ तथ्यों के प्रमाणीकरण हेतु लिए गए हैं। बुद्ध और डॉ. अंबेडकर पर अलग-अलग असंख्य ग्रन्थ उपलब्ध हैं। डॉ. भीमराव अंबेडकर का सम्पूर्ण साहित्य भी भारत सरकार द्वारा 40 खण्डों में प्रकाशित कराया जा चुका है परन्तु भगवान बुद्ध और डॉ. भीमराव अंबेडकर को जोड़कर और बाबा साहब को बोधिसत्व कहकर इस तरह का शोधग्रन्थ लिखने में भी सम्भवत: शमी जी एकमेव हैं।

शमी जी बेहद प्रतिभाशाली, सहृदय, भावुक और हर उत्तरदायित्व को उसकी पूर्णता के साथ निर्वाह करने वाले थे। उनकी भावुकता, उनकी कर्मठता के मार्ग का अवरोध नहीं बनती थी। इसी का परिणाम है कि उनके जीवन के पुण्य उनकी संतान में प्रतिफलित होते दिखाई पड़ते हैं। एक तथ्य और महत्त्वपूर्ण है, उन्होंने काव्य रचना के लिए जो 'शमी' उपनाम चुना था वह अब उनके पूरे परिवार में केवल उनके अनुजों और सन्तान द्वारा ही नहीं उनके अग्रजों द्वारा भी अपनाया जा चुका है। आश्चर्यजनक यह है कि इस प्रचण्ड प्रतिभा के धनी नवगीतकार की उपेक्षा लगभग सभी नवगीत-समीक्षकों ने की है। केवल नवगीत समीक्षकों ही नहीं तमाम जनगीतकार उनके मूल्यांकन से आँख बन्द किये रहे। क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है कि 580 पृष्ठ और 704 पृष्ठ के बड़े-बड़े गीत कोश सम्पादित करने वाले सम्पादकगण क्रमश: 65 और 94 पृष्ठ की 'भूमिकाओं में शमी जी पर एक वाक्य तक न लिखें? उन्होंने अपना जितना ध्यान दूसरों के निपटाने पर केन्द्रित किया उसका दशांश भी यदि शमी जी पर केन्द्रित किया होता तो ग्रन्थ शायद अधिक सार्थक और उपयोगी बन गए होते।

बृजनाथ श्रीवास्तव

महेश अनघ : वक्त के दस्तावेजी नवगीतकार

बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न महेश चंद्र श्रीवास्तव यानी महेश 'अनघ' हिंदी साहित्य के नवगीत रचनाकारों में चिर-परिचित एवं प्रतिष्ठित नाम है। उनका जन्म मध्य प्रदेश के गुना जनपद के 'राजा की ऊमरी' नामक गाँव में भारत का स्वतंत्रता प्राप्ति के एक माह बाद 14 सितम्बर 1947 हुआ था। अनघ जी प्रारम्भ से ही मेधा के धनी सरल, सहज, पारदर्शी व्यक्तित्व वाले थे। उन्होंने बहुआयामी एवं विपुल साहित्य की रचना की। ऐसा लगता था कि शब्द-ब्रह्म उनकी वाणी पर विराजमान हो गया है। भाषा का कबीराना अंदाज उन्हें सिद्ध हो गया था। भाषा से जैसा कहलवाना चाहते, वे कहलवा लेते थे। वे 04 दिसम्बर 2012 को स्वर्गारोहण की अनंत यात्रा पर निकल गये किंतु जब तक हम लोगों के बीच रहे 'घर का पता' (गजल संग्रह) 'महुअर की प्यास' (उपन्यास), 'जोग लिखी' तथा 'शेष कुशल' (कहानी संग्रह), झनन झकास (गीत) 'कनबतियाँ' (नवगीत संग्रह) रचीं जो प्रकाशित हुईं। 'माँडी राँगोली' (नवगीत संग्रह) वर्ष 2018 में उनकी विदुषी धर्मपत्नी डॉ. प्रमिला श्रीवास्तव ने प्रकाशित करवाया। और वर्ष 2018 में महेश अनघ द्वारा रचित दो खण्ड काव्य संग्रहों-'बिंदु-विलास' तथा 'प्रसाद काव्य' का भी प्रकाशन डॉ. प्रमिला श्रीवास्तव जी ने करवाया है। इतने समृद्ध एवं विपुल साहित्य के प्रकाशित होने के साथ ही अभी भी गजल, ललित निबंध, गीत, व्यंग्य, कहानी, गीतनाटिका, नाटक और लोक साहित्य के कई संग्रह प्रकाशन की प्रक्रिया में हैं।

बहुमुखी प्रतिभा से समृद्ध महेश 'अनघ' जी प्रथम पांक्तेय नवगीतकार हैं। उनके तीन नवगीत संकलनों 'झनन झकास', 'कनबतियाँ' और 'माँडी राँगोली' से रूबरू होने का अवसर मिला। 'अनघ' जी का कवि समाज का जागरूक चितेरा और दायित्वबोध से लबरेज एक चौकन्ना प्रहरी है जो भवानी प्रसाद मिश्र के सूत्र वाक्य कि 'जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख और उसके बाद भी, हमसे बड़ा तू दिख' का अक्षरशः अनुगमन करता परिलक्षित होता है। 'झनन झकास' के गीतों को पढ़ने के बाद लगता है कि कवि अपने गाँव में जिये गये लम्हों, पारिवारिक सम्बंधों को ग्वालियर जैसे बड़े नगर में आने के बाद भी विस्मृत नहीं कर पाया है। शेष दोनों संकलनों के गीतों में आधुनिक बदलते हुए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक वातावरण का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा है। उनके गीतों ने गाँव से लेकर शहराती परिवेश को बड़ी ही संजीदगी से जिया है। जो कुछ देखा, सुना, समझा, पढ़ा, आत्मसात

किया वही सब आँखों देखे और स्वयं भोगे गये जीवन के लम्हों को अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। वे राजनीतिक प्रपंच, छल-कपट, पैंतरेबाजी देखते हैं, नेताओं की कथनी और करनी के अंतर को देखते हैं, मजहबों के आपसी संघर्ष और दंगे देखते हैं, अंधाधुंध भौतिकतावादी विकास द्वारा पर्यावरण का क्षरण देखते हैं, अंधा कानून और सरकार द्वारा की जाने वाली लूट को देखते हैं, समाज एवं घर-परिवार में मूल्यों का क्षरण, बूढ़ों का अकेलापन और असहाय दशा में टूटते रिश्ते और लोकतंत्र के दयनीय हालात। 'अनघ' जी की आँखों के सामने ही देखते-देखते वैश्वीकरण और विश्वहाट ने अपने पाँव पसार दिये। विदेशी कम्पनियों ने अर्थव्यवस्था को अपने कब्जे में ले लिया। अंधाधुंध मशीनीकरण के कारण लोग बेरोजगार हो गये, दो जून की रोटियों के लाले पड़ गये। अराजक, अमानुष और दायित्वहीन व्यवस्था के फलस्वरूप सर्वत्र हत्या, बलात्कार, डकैती, लूट, अपहरण, रँगदारी जैसे असामाजिक अपराधों ने अस्तित्व बना लिया। नेता और संत अपने भाषणों और प्रवचनों के द्वारा आवाम को बरगलाने में जुटे हैं और आज वह सब अक्षरश: सच साबित हो रहा है जो कभी 'वागर्थ' जैसी प्रतिष्ठित साहित्यिक पत्रिका में गीत के माध्यम से स्वयं 'अनघ' जी ने कहा था कि 'आदमी अब तो सुधरने से रहा'।

चारों ओर व्याप्त आज के अराजक, अमानुष, अपराधी, संसाधनों की बलात छीना-झपटी वाले और सत्ता पर छल-बल से काबिज होने की आम होती गतिविधियों को महेश 'अनघ' का कवि मन देख-देख कर, अंदर-अंदर गुनकर बड़ा ही आहत है, संवेदित है और अचानक कवि की ब्रह्मवाणी से निकलकर शब्द कह उठते हैं कि:-

'एक परिंदे की पीड़ा ने पूरा संविधान रचवाया'

सच में यह करुणा अथवा संवेदना का भाव ही गीत की सफलता की पुष्टि के लिए पर्याप्त साक्ष्य है। संवेदना के अभाव में गीत न तो सच्चाई का बयान कर पाते हैं और न ही श्रोता अथवा पाठक के अंतस से सीधे-सीधे जुड़ पाते हैं। जीवन है तो संवेदना है और संवेदना है तो गीत है। संवेदना के आगे वैज्ञानिक तर्कजाल भी बौना हो जाता है। और गीत की अमरता का सबसे बड़ा प्रमाण भी यही है। अत: कितने ही फतवे, मुनादियाँ जारी की जायें किंतु गीत का अवसान असम्भव है। इसी परिप्रेक्ष्य में गीत का मार्ग प्रशस्त करते हुए 'अनघ' जी अपने शब्दों को आकार देने लगते हैं कि-

'गीत उठो बेटे/चलने को मन तैयार करो
दूध नहा-अमरौती खाकर/आँगन पार करो
तू जो मरम कुरेदेगा/रो देगा विज्ञानी
चट्टानों के भीतर/होता है मीठा पानी
कंचनमुखी अहिल्या को/छूकर उद्धार करो'
और भी-
गीत शहजादा नहीं है। एक नन्हीं जान है
इधर आँसू उधर आँसू। बीच में मुस्कान है।'

समय ने चाल बदली वेब्लेन के प्रौद्योगिक निश्चयवाद, (Technological Determinism) के अनुसार जैसे-जैसे प्रौद्योगिकी और मशीनों का विकास होता गया वैसे-वैसे आदमी के आदमी से रिश्ते

बदलते गये। धोती-कुर्ता की जगह आदमी कोट, पैंट, सूट और टाई पहनना सीख गया, बैलगाड़ी के बजाय कार और हवाई जहाज से चलना सीख गया किंतु हो गया पहले से और अधिक नंगा। आज अमानुष राजनीति के साथ-साथ घोटालों, लूट, अपराधीकरण, दायित्वहीनता, सत्वर मशीनीकरण, पूँजी के निजीकरण, नगरों के सुरसामुखी विस्तार, जनसंख्या विस्फोट एवं भौतिकता की अंधी दौड़ जैसी विकृतियों ने आदमी से आदमी को दूर कर दिया है और उनके बीच में प्रेम, भाईचारा, सहयोग, विश्वास, सहिष्णुता, त्याग एवं अपनेपन को हटाकर रख दी गयी हैं मशीनें।

और इस राक्षसी संस्कृति का दुष्प्रभाव यह पड़ा कि जीवित रहने के लिए साँस में ली जाने वाली प्राणवायु भी जहरीली हो गयी। पीने का पानी भी प्रदूषित हो गया, भोज्य पदार्थों में विषैली मिलावटें की जाने लगीं। धरती पर जीवों का अस्तित्व ही संकटग्रस्त हो गया। इस भौतिकवादी संस्कृति का दुष्परिणाम यह हुआ कि टूटने लगी हैं घर-परिवार, नाते-रिश्तों की सहयोग और सौहार्द्र की पीढ़ी दर पीढ़ी बँधीं डोरियाँ। विघटन यहाँ तक हुआ कि परिवार जैसी संस्था ही अंतिम साँसें गिन रही है। ऐसे भौतिकवादी माहौल में संवेदना को जीवित रख पाना बड़ा ही चुनौतीपूर्ण है। महेश 'अनघ' का कवि संवेदना का मानवीकरण करता हुआ इसे शब्दों में कुछ इस प्रकार ढालता है कि :-

'कौन है? संवेदना/कह दो अभी घर में नहीं हूँ
कारखाने में बदन है। और मन बाजार में
साथ चलती ही नहीं। अनुभूतियाँ व्यापार में
क्यों जगाती चेतना। मैं आज बिस्तर में नहीं हूँ।'

आज की दुनिया छोटी होकर विश्वहाट में तब्दील हो चुकी है। वामपंथ और दक्षिणपंथ अपनी अस्मिता खोते जा रहे हैं। सब कुछ दिखावटी और बाजारू होता जा रहा है। आदमी भी एक बिकाऊ वस्तु जैसा हो गया है। अमराइयाँ और उनकी भीनी-भीनी बासंती, मधुमयी सुवास विदेशियों के डिब्बों में बंद होकर आज रसोई की शोभा बन रही है। विश्वहाट बनकर अमरीका और चीन गाँवों और नगरों की रसोइयों तक अपनी पैठ निर्भय होकर धड़ल्ले से बना रहा है। प्रतिष्ठित नवगीतकार डॉ. राधेश्याम शुक्ल ने इसे कुछ इस प्रकार कहा है कि 'चूल्हे तक बाजार आ गया। अम्मा घर सँभाल कर रखना'। और महेश 'अनघ' का कवि उसे इस भाषा में प्रस्तुत करता है :-

'सीलबंद डिब्बे ही डिब्बे / राम रसोई में
अमरीका आ बैठा है आटे की लोई में
देखे से उबकाई हो / वह सब है भाई जी।'

इतना ही नहीं अमेरिका भारत के आंतरिक मामलों में भी दखलंदाजी कर रहा है। उसके पास आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों का विकसित बाजार है। वह अपने उत्पादों को येन-केन-प्रकारेण विश्वहाट में अविकसित और विकासशील देशों को बेचना चाह रहा है। खरीदारी की आवश्यकता बनाये रखने के लिए वह हिंदू-मुस्लिम (भारत पाकिस्तान) को आपस में लड़वा रहा है और दोनों को अपने औजार बेच रहा है। प्रतिष्ठित नवगीतकार महेश 'अनघ' जी ने अमेरिका के बढ़ते व्यावसायिक वर्चस्व से उपजी भयावह स्थिति को कुछ इस तरह प्रस्तुत किया है -

'कच्ची दातुन पकी निबौरी। अब डालर खाएगा
छैयाँ वाला नीम सुना है / अमरीका जायेगा
माल झकाझक / चाल झकाझक
जादू बगराया है मेरे गाँव में / अमरीका आया है मेरे गाँव में
दादी माँ का हुनर खरीदा / काजल मुनिया का
बदले में बारूद बिछाकर / नक्शा दुनिया का
खड़ी फसल पर गंगा जल पर / कैसा ललचाया है मेरे गाँव में
खेल-खेल में हरि हुसैन का / पंजा लड़वाया दोनों को कटार बेची / हौले से मुस्काया
खेत बिकाने सगुन सिराने / डालर की माया है मेरे गाँव में।'

आज राजनीति राज्य को ठीक ढंग से चलाने की नीति मात्र कुछ लोगों को खुश रखने के लिए भाई भतीजावाद (nepotism) में ही अनुरक्त होकर रह गई है। संसाधनों एवं सत्ता पर बलात कब्जा करने की लूट मची है। आम आदमी का भरपूर शोषण किया जा रहा है। लोगों को नौकरियाँ देना तो दूर येन-केन-प्रकारेण लगी लगाई नौकरियों से निकाला जा रहा है। देश में घोर अराजकता का माहौल है। अपराधीकरण का वक्र ऊर्ध गति से बढ़ रहा है। कुछ उद्धरण दृष्टव्य हैं :-

'सावधान आतंकवाद से / घर में आग न लग जाये
रिश्वत रँगे हुए हाथों का / ध्वज में दाग न लग जाये
जरा देखना मंचों पर / नकली चेहरा तो नहीं रखा
किसी सिरफिरे के सिर पर / तुमने सेहरा तो नहीं रखा
हम अनुरागी हैं अथवा बैरागी हैं। खुली जेल में / आत्म समर्पित बागी हैं।'

चालबाज, झूठे, कपटी राजनेताओं, गेरुये वसनों का आवरण ओढ़े हुए संतों के मुखों पर चिपके सभ्य मानव के मुखौटों का अनावरण करके महेश अनघ के गीत दोहरे चरित्र की सच्चाई को जनमानस के समक्ष अपने गीतों के माध्यम से रखते हुए जरा भी नहीं हिचकते हैं। दूध का दूध और पानी को पानी करते हुए वे बोल पड़ते हैं कि :-

'घर से सज कर आये हम / चिथड़ा होकर लौटे
काँटे थे उनके उद्बोधन में
उजली हँसी ओढ़कर आये / गुमसुम से लौटे
काले छींटे थे संतों के प्रवचन में
पिछवाड़े रसखीर पकी / हम खुशबू में तर थे।
गोलमेज की दावत से / पहले हम बेहतर थे
समरसता लेकर आये / दलदल होकर लौटे
जहर परोसा गया सियासी व्यंजन में
सबको रोजगार तालीम / अयोध्या बस्ती गोकुल गाँव भला
सबसे पिछड़ी बस्ती में अव्वल / हाकिम का पड़ा पड़ाव भला

वही खून के छींटे / वही फिरौती वही रुदन।'

देश के कोने-कोने शहरों से लेकर गाँवों तक सभी जगह दंगे, अपराध, हत्याएँ, बलात्कार और हादसे आज के भौतिक और आपाधापी के परिवेश में आम हो गये हैं लोगों में भयंकर दहशत है। समय की फितरत को जीते महेश अनघ की दृष्टि से ऐसी घटनाएँ भी नहीं बच पायीं। आज के वक्त की तस्वीर का जिक्र करते हए वे कहते हैं :-

'घने कुहरे में। चमक हथियार जैसी
हवा में है गंध ताजा रक्त की। हाँ यही तस्वीर मेरे वक्त की।'

ठीक इसी तरह आये दिन घटने वाले धार्मिक और राजनीतिक दंगों की सच्चाई बयान करने में कवि की लेखनी चुप नहीं बैठती और दंगों की कारण दहशत में रात भर जगते रहने की सच्चाई/इसी तरह रेल, सड़क पर होने वाले हादसों को हू ब हू शब्दों में उतार देती है कवि की कलम :-

'छप्पन मरे तिरेसठ घायल / समाचार है जी
आदरणीय वजीरे आजम / नमस्कार है जी
उमर हमारी लगे आपको / आप रहें चंगे
हमने तो रतजगा किया / रात हुए दंगे
हादसा
बारह बार रेल टकराई / एक महीने में
जरा पूछना दिल है क्या / दिल्ली के सीने में
बाकी कुशलक्षेम जो है सो / इस प्रकार है जी
मिलजुल कर खुदकशी करें / ऐसा विचार है जी।'

प्रौद्योगिकीय एवं अंधाधुंध भौतिक विकास के फलस्वरूप धरती का पारिस्थिकीय संतुलन ध्वस्त होता जा रहा है और पर्यावरणीय आपदाओं का विनाशकारी साम्राज्य बढ़ता जा रहा है। सड़कों, रेलवे लाइन बिछाने एवं नई-नई बस्तियों के बसाव के संजाल के और अधिक विस्तार के कारण जंगल और पेड़ काटे जा रहे हैं, नदियाँ रेत होती जा रही हैं, खेतिहर जमीन का रकबा शनैः-शनैः कम होता जा रहा है। किसानों की जमीने भी जबरदस्ती छीनी जा रही हैं और उन्हें औने-पौने दाम देकर टरकाया जा रहा है। इसका जीता-जागता विवरण प्रस्तुत किया गया है प्रस्तुत पंक्तियों में :-

'पेंड़ पर फीता लगा / जागी कुल्हाड़ी / और चिड़ियाँ बेदखल
फाइलों में आम जामुन / बेर महुआ बो रहे हैं
पंचतारा होटलों में / वन महोत्सव हो रहे हैं
राजपथ चौड़े हुए / संयंत्र काबिज / और नदियाँ बेदखल।'

परिवर्तन का यह प्रभाव केवल भौतिक ही नहीं है, यह लोगों के अंतर्मन को भी प्रभावित करने लगा वारदा शहर जाकर बहुत दिनों बाद गाँव लौटता और देखता है जो रिश्ते प्यार के रस से सराबोर रहते थे उनमें अब व्यंग्य, घृणा और तिरस्कार का विष भर गया है। वक्त ने दूरियाँ और भी बढ़ा दी हैं। देखिये:-

'अबकी बार गाँव ने हमको जीने नहीं दिया

भौजी मिलीं कुएँ पर भाषण देतीं सी
प्यास कमेटी के सालाना जलसे में
कजरी, करवा, होरी, गरबा, गणगौरे
हमने देखा सिसक रहीं थीं कलसे में
चरनों में अभिमान डाल हमने परनाम किया
कोई भी आशीष किसी काकी ने नहीं दिया।'

लोकतंत्र राजनीतिक अपराधियों की सुरक्षित सैरगाह बन गई है। लोकतंत्र के चारों खम्भे दिशाहीन और दायित्वहीन हो चले हैं। राजनीति जो अव्यवस्था को नियंत्रित करने के लिये थी आज स्वयं ही अव्यवस्था के दलदल में स्नान करने लगी है। राजनीतिक स्तर पर भी सर्वत्र घोटालों एवं अन्य अपराधों का बोलबाला है। आये दिन जिस पर देखो उसी पर कोई न कोई दाग लग जाता है क्योंकि इस अपराधिक लोकतंत्र ने सब कुछ ध्वस्त करके रख दिया है। विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र का स्याह चिट्ठा खोलते हुए कवि कहता है :-

'जिनके पेट बड़े हैं / जिनके पंजे खून रँगे
उनके कंठ पड़ी माला / छाती पर पदक टँगे।
संतों का चोला खोला / तो निकला रंगरसिया।'

और आज के इस लोकतंत्र में जन गण वोट देने के बाद अधिकारविहीन हो गया है कोई भी जनप्रतिनिधि उसकी ओर आँख उठाकर देखना भी उचित नहीं समझता ऐसे माहौल में सहमा, डरा हुआ लोकजन लोकतंत्र के चारों खम्भों के बीच इस तरह दबाया जा रहा है कि उसके मुँह से तोता रटंत वाली सुआ-धुनें 'हाँ जी हाँ जी' ही निकलती है / इसे रचनाकार के गीत शब्दों में देखें :-

'जन-गण- मन की बात / सुआ बोले हाँ जी हाँ जी
बारहमासी रात / सुआ बोले हाँ जी हाँ जी
छोटी बहना संसद / बड़ा रुपैया काला है।
सबका मालिक / हाकिम के नेता का साला है
सुन रे ओछी जात / सुआ बोले हाँ जी हाँ जी
बारह पंजै सात / सुआ बोले हाँ जी हाँ जी।'

अंत में यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि समाज के भीतर रहते हुए संयुक्त पारिवार के रिश्तों और सांस्कृतिक मूल्यों की सांद्रता को सहेजने में, उसे पोर-पोर जीने में, उसे निभाने में कवि की सघन आसक्ति है। दादी, नानी, बुआ, काका, काकी, बन्नो, देवर चाचा, बालम जैसे पावन रिश्ते उनके गीतों की पाहर हैं। घर-परिवार के बुजुर्गों को प्राय: छाया एवं आश्रय देने वाले बरगद के माध्यम से व्यक्त किया जाता है। अनघ जी ने भी कुछ ऐसा ही कहा है। आधुनिक तकनीक एवं मशीनों से उपजे स्वार्थी, एकाकी, लोभी भौतिकवाद ने आज के जटिल वक्त में सरल, पारदर्शी, सहकारी मानवीय सम्बंधों एवं तदुद्भूत संवेदनाओं को कुछ इस कदर चकनाचूर करके रख दिया है कि वे सब निष्प्राण सी होने लगी हैं किंतु महेश 'अनघ' का त्रिकालज्ञ योगी कवि अभी भी आश्वस्त है कि एक न एक दिन ये भौतिकता की

दुरभिसंधि विदीर्ण होगी और पुनर्स्थापना होगी शनैः-शनैः विगलित होने वाले स्वस्थ मानवीय एवं सांस्कृतिक मूल्यों की। उनका गीतांश देखिये :

'बने रहना गाँव के बरगद / नदी के घाट मटियारे
यहीं पर एक दिन ठंडे करेंगे। ताज हम सारे
यहीं पर अस्थियाँ होंगी विसर्जित। अहंकारों की
नकाबें यहीं उतरेंगी/ कभी जगमग सितारों की
और भी-
गिरेगी आधुनिक तकनीक / औंधे मुँह यहीं आकर
मशीनें सिर धुनेंगी / सातिया पर फूल चिड़िया पर
बने रहना शीतला के थान / शंकर जटा जल धारे
यहीं पर बुझेंगे परमाणुओं के। अस्त्र अंगारे
बने रहना खील गुड़धानी / पुआ लिट्टी शकर पारे
यहीं पर तृप्त होंगे / राजभोगी जन थके हारे'

समाज में प्रेम, अपनापन, भाईचारा, विश्वास, सहयोग, त्याग, सहिष्णुता एवं समानता जैसे आदमी से आदमी को जोड़े रखने वाले मानवीय गुणों का भौतिकवादी समाज से शनैः-शनैः तिरोहित होना, विकास के नाम पर नदियों और जल स्रोतों का सूखना, जंगलों और उपवनों का विनष्ट होना, प्राणवायु का प्रदूषित होना, आदमी का नितांत अकेले होते जाना महेश 'अनघ' जैसे विचारक को निरंतर खलता रहा है। 'ढाई आखर' की तलाश में कवि की यात्रा के पाथेय गीत आपके समक्ष है :-

'सभी अक्षर हैं उपस्थित / बस वही ढाई आखर नहीं हैं
हम न पानी हैं न पत्थर / हम नदी में रेत जैसे
विश्व को परिवार कहकर। हम खड़े हैं प्रेत जैसे
छुअन भर की वासना है / यही भरपाई नहीं है।' -

और यह कहना सर्वाधिक वाजिब है कि अपने आसपास के सहज, सरल, जिये गये, सांद्र रसीले एवं मनोरम शब्दों से रिश्तेदारी निभाते, बोलचाल के मुहावरों से रसचर्वणा में अभिवृद्धि करते, सम्मोहन के मंत्रों से वशीकरण करते, मानवीय सरोकारों एवं संवेदनाओं से सम्पृक्त ये गीत हिंदी साहित्य की कालजयी धरोहर हैं। इनका वाचन, अनुशीलन ही वसुधैव कुटुम्बकम की परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखना है। इसी पावन मान्यता के साथ...

सम्पर्क : *कानपुर (उ.प्र.)*
मो. 9795111907

राजा अवस्थी

आभासी दुनिया में नवगीत

परम्परा से साहित्य विद्या के दो रूप चले आ रहे हैं। एक तो कहत-सुनत अर्थात् वाचिक परम्परा का और दूसरा लिखत-पढ़त का अर्थात् पाठ परम्परा का। कालांतर में इस परम्परा में देखना भी जुड़ा किन्तु प्रकारान्तर से यह भी उक्त दोनों परम्परा रूपों में समाहित होता है। क्योंकि नाटकीय रूपान्तर भी कहे-सुने या लिखे-पढ़े का ही होता है। दूसरी कई-कई बातों के समान बीसवीं सदी में साहित्य विद्या के रूपों, सुविधाओं आदि में भी क्रांतिकारी बदलाव हुए हैं। इन्टरनेट, कम्प्यूटर और मोबाइल के आविष्कार ने साहित्य विद्या में एक आभासी दुनिया को बड़ी जगह दी है, जो अब तक एक परम्परा की तरह स्थापित हो गई है कहें, तो अतिशयोक्ति नहीं कहा जा सकता।

साहित्य की परम्पराओं से प्राप्त कुछ-कुछ कथ्य का आभासीय रूपान्तर बीसवीं सदी में ही आरम्भ हो चुका था और इसने चलचित्रों के रूप में समाज में अपना खूब प्रभाव दिखाया। इसी आभासीकरण को कम्प्यूटर, मोबाइल और इन्टरनेट के आते ही पंख लग गये। इन्टरनेट की दुनिया में सर्च इंजन के आविष्कार और क्लाउड ने साहित्य की आभासी दुनिया के लिए उसकी उपयोगिता व सुलभता दोनों में असीमित वृद्धि कर दी। इसके साथ ही समूचे लिखे-छपे साहित्य व अन्य प्रकार के उपलब्ध ज्ञान के आभासी रूप में परिवर्तन-संरक्षण की होड़ लग गई या कहें कि धुआँधार कोशिश शुरू हो गई। आज इस आभासी दुनिया में अरबों पृष्ठ का साहित्य उपलब्ध है। महत्त्वपूर्ण यह है कि साहित्य के इस आभासी रूप को प्रिंटर के माध्यम से उसके स्थूल रूप यानी छपे हुए रूप में भी तत्काल प्राप्त किया जा सकता है। इस बात का एक अर्थ यह भी है कि यह आभासी संसार हमारे चाहने से स्थूल रूप में भी आ सकता है। इस तरह यह एक सीमा के भीतर आभासी से कुछ अधिक है।

इस आभासी दुनिया का वास्तविक संसार असीमित है। इसकी व्यापकता व पहुँच भी इस विराट संसार में असीमित है। इस संसार में भिन्न-भिन्न तरह के असीमित ज्ञान के साथ साहित्य की सभी विधाओं में किया जाने वाला सृजन भी काफी मिलता है और इसमें लगातार वृद्धि होती जा रही है। इस आभासी दुनिया के साहित्य संसार में नवगीत - कविता ने भी अच्छी खासी जगह पर अपना आधिपत्य जमा रखा है। नवगीत-कविता की यह दुनिया लगातार बढ़ती-फैलती जा रही है। यहाँ नवगीत-कविता के रचनाकार कवियों-लेखकों को न सिर्फ शेष दुनिया तक पहुँचने का अवसर मिला है, बल्कि काव्य-प्रेमी पाठकों

को भी वास्तविक कविता के आस्वादन का अवसर सुलभ हुआ है। छपी हुई सामग्री का मूल्य आम पाठक की पहुँच से बाहर होने और पुस्तकों की अनुपलब्धता से जो पाठक साहित्य का आस्वाद नहीं ले पाते थे, उन्हें इस आभासी दुनिया ने सभी तरह का साहित्य बहुत सरलता से सुलभ करा दिया है। नवगीत-कविता तक भी पाठकों की पहुँच आसान हुई है और बढ़ी है।

नवगीत को आभासी दुनिया में उपलब्ध कराने के लिए फेसबुक, वाट्सएप, ब्लाग, आर्कुट, यूट्यूब आदि पर, जहाँ व्यक्तिगत साहित्य प्रस्तुत करने का काम हुआ है, वहीं समूची नवगीत परम्परा में उपलब्ध साहित्य को आभासी संसार में सुलभ कराने के लिए कुछ साहित्यकार सक्रिय हैं। उनका यह कार्य उल्लेखनीय व रेखांकित करने योग्य है। आज इनके ही सद्प्रयासों से नवगीत का विपुल साहित्य अन्तर्जाल पर उपलब्ध है। आभासीय संसार में नवगीत-संसार की निरन्तर वृद्धि कुछ विशिष्ट नामित मंचों के माध्यम से की जा रही है। ये सभी मंच ब्लॉग, ई-पत्रिका, वेब-पत्रिका, वेबसाइट, फेसबुक, फेसबुक समूह, वाट्सएप समूह आदि के रूप में कार्य कर रहे हैं।

बीसवीं सदी के अंतिम कुछ दशकों में अन्तर्जाल के प्रति समझ और ज्ञान के प्रसार की गति बढ़ी। तब भी यह ज्ञान एक सीमित दायरे के लोगों तक ही था। हिन्दी-फोन्ट की बड़ी समस्या थी। आज की तरह मंच उपलब्ध नहीं थे। जियोसिटीज पर ही कुछ इस तरह का काम होता था। आई सी क्यू एक ही चैट प्लेटफार्म था। एम एस ऑफिस हिन्दी और यूनीकोड भी बहत बाद में आये। इन्टरनेट की गति भी बहुत कम हुआ करती थी, तो यहाँ उपलब्ध साहित्य-संसार भी सीमित ही था, किन्तु अन्तर्जाल के प्रति समझ और सुविधाएँ बढ़ने के साथ कुछ साहित्यक, पत्रकार इस आभासी दुनिया में सक्रिय हुए। इन साहित्यकारों, पत्रकारों में नवगीत-कविता के लिए समर्पित कवयित्री, अभिव्यक्ति कला केंद्र, लखनऊ की संचालक पूर्णिमा बर्मन का नाम प्रारम्भ के कुछ लोगों में भी प्रथमत: लिया जा सकता है। इनके बहुत बाद में बहुत लोग जैसे ललित श्रीवास्तव, डॉ. अनिल जनविजय, डॉ. अवनीश सिंह, रवि रतलामी, डॉ. जगदीश व्योम, आचार्य संजीव वर्मा 'सलिल', राजा अवस्थी, मनोज जैन मधुर, रामकिशोर दाहिया, डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर', आदि सक्रिय हुए।

आभासी संसार पर लगातार अपनी उपस्थिति को व्यापक और गहन बनाते जा रहे नवगीत की बात करें तो, जो सबसे पहला नाम दृष्टि में आता है, वह है पूर्णिमा बर्मन का। संस्कृत साहित्य में परास्नातक, पत्रकार, कवि व साहित्य के लिए ही कंप्यूटर का डिप्लोमा प्राप्त करने वाली पूर्णिमा बर्मन जी की यात्रा अंतर्जाल पर नवगीत की ही यात्रा है। अंतर्जाल पर नवगीत की यात्रा और' पूर्णिमा बर्मन की यात्रा इन दोनों को अलग करके नहीं देखा जा सकता। पूर्णिमा बर्मन जी की यात्रा के बारे में जानते हए एक तरह से हम अंतर्जाल के विकास की यात्रा भी जान पाते हैं। नवगीत की दुनिया और अन्तर्जाल पर दृश्यमान विराट साहित्यिक संसार में पूर्णिमा बर्मन जी की पहचान अभिव्यक्ति-अनुभूति की संपादक और एक साहित्यकार-पत्रकार के रूप में है। पूर्णिमा बर्मन जी की यह पत्रिका अभिव्यक्ति विदेशों के लगभग 140 ऐसे विश्वविद्यालयों के संदर्भ अध्ययन की सूची में है, जहाँ हिंदी पढ़ाई जाती है। विदेशों के विश्वविद्यालयों में अभिव्यक्ति-अनभूति के बारे में पढ़ाया जाता है।

सन 1995, जब वेब पर हिंदी को कोई सहयोग नहीं था तब से पूर्णिमा वर्मन अंतर्जाल पर सक्रिय

हैं। हिंदी को अंतर्जाल पर सहयोग 2004 से मिलना संभव हुआ, जब एमएस ऑफिस हिंदी जारी किया गया। हिंदी विकिपीडिया भी 2003 में शुरू हुआ। यूँ चिट्ठाकारिता का जन्म तो 1994 के आसपास हुआ, किंतु ब्लॉगर 1999 में आया। यूनिकोड भी 2003 में आया। पूर्णिमा बर्मन जी की चर्चा और आभासी दुनिया में नवगीत की चर्चा करते हुए इन सब बातों की चर्चा जरूरी है ताकि अंतर्जाल पर उनके साहित्यिक अवदान को, उनके इस रास्ते की मुश्किलों और सुविधाओं की न्यूनता के सापेक्ष भी समझा जा सके।

पूर्णिमा बर्मन जी के बताए अनुसार अभिव्यक्ति निकालने का विचार 1995 में एक चैट कार्यक्रम में बातचीत करते हुए उठा। यह चैट कार्यक्रम संभवत: जिओसिटी पर आइसीक्यू चैट प्लेटफार्म पर था। उस समय कनाडा के ओकनागन विश्वविद्यालय में कंप्यूटर साइंस के प्रोफेसर डॉ. अश्विन गाँधी और कुवैत से दीपिका जोशी के सहयोग से अभिव्यक्ति की शुरुआत हुई। यद्यपि यह काम अंतर्जाल पर सुविधाओं की न्यूनता के कारण बहुत मुश्किल था, किन्तु 1996 में अभिव्यक्ति शुरू हो गई। आरम्भ में इसमें ही कविता, कहानी, रसोई आदि हर तरह की सामग्री होती थी। अभी भी अभिव्यक्ति पर सब कुछ मिलता है। बाद के दिनों में अनुभूति कविता केन्द्रित हो गई। उन दिनों पूर्णिमा बर्मन यू.ए.ई. के शारजाह शहर में रहती थीं। 15 अगस्त 2000 से अभिव्यक्ति का नियमित प्रकाशन वेब पर आरंभ हो गया। पहले यह मासिक थी फिर पाक्षिक निकलने लगी। 16अप्रैल 2002 तक पाक्षिक निकलने के बाद, एक मई 2002 से नियमित साप्ताहिक प्रकाशित होने लगी। अभिव्यक्ति अनुभूति 2017 से पूर्णिमा बर्मन जी की व्यस्तता के कारण मासिक अंकों के रूप में नियमित निकल रही है।

पहले अभिव्यक्ति-अनुभूति एक साथ थीं और इसमें सभी तरह की सामग्री होती थी। किन्तु, बाद में कविता के लिए अनुभूति नाम से अलग वेब पत्रिका शुरू की गई। अभिव्यक्ति, अनुभूति जुड़वाँ लेकिन एक ही हैं।

हमारे समय के साहित्यकारों में जो दो चार लोग अंतर्जाल पर सबसे पहले आए, उनमें भी पूर्णिमा बर्मन पहली हो सकती हैं। बाद के दिनों में अनिल जनविजय, रविशंकर रतलामी, जो स्वयं कंप्यूटर के प्रकांड विद्वान हैं, सक्रिय हुए थे। चिट्ठाकारिता में कंप्यूटर तकनीक के उनके चिट्ठे बहुत मशहूर, ज्ञानवर्धक और सिखाने वाले हैं। इसके साथ ही रवि रतलामी जी की 'रचनाकार' नाम से एक वेबसाइट है, जिस पर कहानी, आलेख, व्यंग्य, बालसाहित्य आदि के साथ नवगीत भी खूब प्रदर्शित हैं। डॉ. जगदीश व्योम, डॉ. अवनीश सिंह चौहान आदि कई साहित्यकार अन्तर्जाल पर गंभीरता के साथ सक्रिय थे। लेकिन कंप्यूटर व अंतर्जाल की जानकारी न होने से हिंदी का ज्यादातर साहित्यकार इस से बहुत दूर था। इसके फायदे और प्रभाव को भी कम कर के आँका जा रहा था, किंतु इन सबके बीच पहले से सक्रिय पूर्णिमा बर्मन की सोच बहुत स्पष्ट एवं सकारात्मक व यथार्थवादी थी। यह आज प्रमाणित भी हो चुका है। पूर्णिमा जी को उनके इस काम के लिए पहली बार 2003 में हिंदी भवन दिल्ली में कमलेश्वर सहित 500 साहित्यकारों की उपस्थिति में अशोक चक्रधर की अध्यक्षता में सम्मानित किया गया। अशोक चक्रधर ने पूर्णिमा वर्मन पर केंद्रित एक घंटे की पावर प्वाइंट प्रस्तुति दी थी। कार्यक्रम का नाम था 'वेब की दशा और दिशा- पूर्णिमा बर्मन के बहाने'।

आभासी संसार में पूर्णिमा बर्मन की इस यात्रा में नवगीत कितना है? इस पर बात को केंद्रित करना जरूरी है तो पूर्णिमा बर्मन कहानी, निबंध, मुक्त छंद सभी कुछ लिखती हैं, किन्तु साहित्य जगत में उनकी ख्याति अभिव्यक्ति-अनुभूति की संपादक नवगीत कवयित्री के रूप में ही है। अनुभूति वेब पत्रिका लगभग नवगीत की ही वेब पत्रिका है। इसमें कविता की सभी विधाओं को प्रकाशित किया जाता है। अभिव्यक्ति के अब तक 775 अंक आ चुके हैं। अभिव्यक्ति में भी नवगीत लगातार प्रकाशित किए जा रहे थे, किंतु जब अनुभूति नाम से इसे अलग किया गया, तो पहले अंक में जो गीतकार प्रकाशित हुए, वे थे जीवन यदु और उनका गीत था 'सच', 'मैंने अपने होंठ जलाकर जो भी सच है बोल दिया वह/यदि सुनने में कान तुम्हारे जलें तो मेरी क्या गलती है।' अनुभूति के हर अंक में कम से कम एक नवगीत कवि की कुछ नवगीत कविताएँ अवश्य प्रकाशित की जाती हैं। अनुभूति विशेषांक भी प्रकाशित करती रही है और विशेषांक में कई नवगीत कवियों को एक साथ प्रकाशित किया जाता है। इस तरह हम कह सकते हैं कि अभिव्यक्ति-अनुभूति की 775 अंकों की यात्रा में 775 नवगीत कवि चाहे प्रकाशित न भी हुए हों, किंतु हजारों नवगीत कवितायें, सैकड़ों समीक्षायें, दर्जनों साक्षात्कार अभिव्यक्ति-अनुभूति के द्वारा आभासी दुनिया में सहेजे जा चुके हैं।

अपने आलेख के आरंभ में आभासी साहित्यिक दुनिया के स्थूल दुनिया में बदलने की चर्चा भी मैंने की थी। हिंदी साहित्य समास की पहली वेब पत्रिका अभिव्यक्ति-अनुभूति की संपादक, पत्रकार पूर्णिमा बर्मन ने इसे सच करके भी दिखाया है। प्रथम नवगीत महोत्सव 2011 (जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे) में पढ़े गये सभी आलेखों का संग्रह 'नवगीत परिसंवाद' के नाम से और नवगीत की पाठशाला लिखे गये चयनित नवगीतों का संग्रह 'नवगीत 2011' के नाम से मुद्रित रूप में प्रकाशित किए जा चुके हैं।

हिंदी साहित्य के इतिहास में पहली हिंदी वेब पत्रिका अभिव्यक्ति-अनुभूति, जो नियमित निकलने वाली एकमात्र वेब पत्रिका भी है, के बाद कई पत्रिकायें आईं, जिनमें नवगीत कविता और उससे संबंधित सामग्री प्रकाशित होती रही है। इनमें सृजनगाथा, प्रवक्ता, स्वयंप्रभा, गीत पहल, पूर्वाभास, भाषांतर आदि प्रमुख हैं। इनमें भी जो एक बड़ा नाम है, वह अवनीश सिंह चौहान और उनके पूर्वाभास का है। किन्तु, अभिव्यक्ति - अनुभूति के बाद और पूर्वाभास व गीतपहल से पहले आभासी दुनिया में एक बड़ा काम 'कविता कोश' वेबसाइट के रूप में अस्तित्व में आया। इसके संपादक और प्रारम्भकर्ता थे बहुभाषाविद, मस्क्वा विश्वविद्यालय (मास्को-रशिया) में हिन्दी के प्राध्यापक डॉ. अनिल जनविजय। अनिल जनविजय स्वयं अच्छे कवि, अनुवादक और भारतीय कविता के साथ विश्व कविता की भी अच्छी समझ रखने वाले विद्वान हैं। कविता कोश का काम बड़ा और व्यापक दृष्टि के साथ शुरू किया गया था। इसके शुरुआत में जिन लोगों ने मिलकर काम किया उनमें डॉ. जगदीश व्योम, ललित कुमार, डॉ. पूर्णिमा बर्मन, मितुल और दीपक प्रमुख थे। 'कविता कोश' वेबसाइट बनाने का काम आई. टी. विशेषज्ञ ललित कुमार ने किया। फरवरी 2006 में अनिल जनविजय की मुलाकात ललित कुमार से हुई और जब अनिल जनविजय जी ने ऐसी एक वेबसाइट बनाने का विचार उनसे साझा किया, तो ललित कुमार ने ऐसी वेबसाइट बनाने का वादा किया और वेबसाइट बनाकर दे दी। अगस्त 2006 में सबने मिलकर काम शुरू कर दिया। सबसे पहला पन्ना जो बनाया गया, वह गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरितमानस का था और

बालकाण्ड के आरम्भिक पन्नों को जोड़ने से इसकी शुरुआत की गई। आज कविता कोश में सभी तरह की काव्यविधाओं के पुराने से पुराने कवियों के परिचय व कवितायें देखी-पढ़ी जा सकती हैं। इसके साथ ही अधिकाधिक नवगीत कवियों के नवगीत यहाँ उपलब्ध हैं और इसमें पन्ने जोड़ने का काम लगातार चल भी रहा है। इस तरह आभासी दुनिया में नवगीत की चर्चा में 'कविता कोश' और अनिल जनविजय का ऐतिहासिक और दीर्घकालिक महत्त्व है। अब 'कविता कोश' का अपना एप भी है, जिसके द्वारा कविता कोश को पढ़ा जा सकता है।

नवगीत पर लगातार केन्द्रित रहकर काम करने वाले लोगों में डॉ. अवनीश सिंह चौहान और उनके 'पूर्वाभास' का नाम प्रमुखता से उल्लेखनीय है। अवनीश जी अंग्रेजी साहित्य के विद्यार्थी, लेखक, आलोचक और संपादक हैं। अंग्रेजी में भी उनकी दो वेब पत्रिकाएँ निकल रही हैं बावजूद इसके नवगीत कविता और वेबदुनिया में नवगीत के लिए लगातार काम करने वालों में अनुभूति और पूर्णिमा बर्मन के बाद दूसरा सबसे बड़ा नाम पूर्वाभास और डॉ. अवनीश सिंह चौहान का ही है। नि:संदेह नवगीत कविता को लोकप्रिय बनाने में डॉ. अवनीश सिंह चौहान और पूर्वाभास की बड़ी भूमिका है। सन 2010 में डॉ. अवनीश सिंह चौहान ने पाँच-छ: माह की मेहनत के बाद 'गीत-पहल' वेब पत्रिका प्रकाशित की। इसका लोकार्पण 24 अक्टूबर 2010 को मुरादाबाद में कराया गया। कई कारणों से इसका दूसरा अंक नहीं आ सका। इतना बड़ा अंक देना हमेशा संभव ना हो पाना भी इसके स्थगित रखने का शायद एक कारण रहा हो, किंतु गीत-पहल आभासीय दुनिया में नवगीत की उपस्थिति के लिए महत्त्वपूर्ण इसलिए है, कि पहली बार नवगीत-कविता पर वेब पर एक साथ इतनी अधिक सामग्री प्रदर्शित की गई थी। गीत-पहल में लगभग 60 नवगीत कवियों के नवगीत, 'नये पुराने' (संपादक दिनेश सिंह) के सभी अंकों के संपादकीय लेख, नवगीत कवियों के साक्षात्कार और नवगीत केन्द्रित आलेख वेब पर प्रकाशित किए गये। गीत पहल का यह अंक वेब पोर्टल पर सबसे पुरानी पत्रिका के रूप में अब भी प्रदर्शित हैं।

गीत पहल की शुरुआत करने में आई मुश्किलों और तकनीकी ज्ञान बढ़ने के साथ अवनीश जी 'गीत पहल' के लोकार्पण के पहले ही 'पूर्वाभास' (अनियत कालीन वेब पत्रिका) पर काम शुरू कर चुके थे। पूर्वाभास का पहला अंक 11 अक्टूबर 2010 को अंतर्जाल पर प्रकाशित किया गया। पूर्वाभास के प्रथम अंक में दिनेश सिंह के पाँच नवगीत, परिचय और चित्र प्रकाशित किए गये, तब से अब तक 60 नवगीत कवियों के नवगीत और नवगीत पर लगभग इतने ही आलेख, की साक्षात्कार यहाँ पर प्रकाशित किए हैं। डॉ. अवनीश सिंह चौहान को उनके इस काम के लिए स्वीकृति और सम्मान भी मिला है। अमेरिका की नामी संस्था 'द थिंग्स क्लब' द्वारा 2012 में 'द बुक ऑफ द ईयर' सम्मान से सम्मानित किया जा चुका है। यह एक बड़ा पुरस्कार है।

वेब पर इस तरह का काम करने का विचार कैसे आया? के सवाल पर डॉ. अवनीश बताते हैं, कि दिनेश सिंह के संपादन में निकलने वाली प्रतिष्ठित पत्रिका नये पुराने के कैलाश गौतम पर केंद्रित अंक को निकालते समय अवनीश जी, जो उस समय 'नये पुराने' के संपादन-प्रकाशन में दिनेश सिंह जी का सहयोग कर रहे थे, तो भारी आर्थिक मुश्किलों का सामना करना पड़ा। इसी बीच डॉ. अवनीश 'खबर इंडिया' नाम के एक बहुत बड़े वेब पोर्टल पर प्रकाशित होने वाले पत्र के साहित्य संपादक बन गए और

2007 में कैलाश गौतम पर केंद्रित यह अंक ई-अंक के रूप में प्रकाशित किया। 'खबर इंडिया' पर भी डॉ. अवनीश सिंह चौहान ने नवगीत प्रकाशित किये। संभवत: यहीं से वेब पत्रिका का विचार आया और फिर गीत पहल व पूर्वाभास आदि अस्तित्व में आई।

वेब पत्रिका के रूप में 'कविता कोश' से अलग होने के बाद डॉ. अनिल जनविजय ने भाषांतर वेब पत्रिका की शुरुआत की, किन्तु इस पर भी आगे बहुत काम नहीं हुआ।

आभासी दुनिया में अंतर्जाल पर नवगीत की उपस्थिति इन कुछ वेब पत्रिकाओं के अलावा निजी ब्लॉगों, फेसबुक समूह और व्हाट्सएप समूह के साथ यूट्यूब पर बहुत अधिक मात्रा में है। व्हाटसएप समूह पर प्रकाशित सामग्री का स्थायित्व और संरक्षण नहीं होने के कारण यहाँ उपस्थित मंच दैनिक चर्चा, आपसी संपर्क और निजी महत्त्वाकांक्षाओं व कुण्ठाओं की तृप्ति तथा समय बिताऊँ। जैसा काम हो गया है। तथापि कुछ काम यहाँ भी उल्लेखनीय हुए हैं। उनकी चर्चा होना चाहिए। व्हाट्सएप पर नवगीत पर केंद्रित समूहों में संवेदनात्मक आलोक प्रमख है। यह समूह 2015 से चल रहा है। इसके संचालक नवगीत कवि रामकिशोर दाहिया है। 'इस समूह में सप्ताह के निश्चित दिनों में किसी एक नवगीत कवि के कुछ नवगीत एक टिप्पणी के साथ चर्चार्थ प्रस्तुत किए जाते हैं। समूह में शामिल नवगीत कवि उन नवगीतों पर अपनी टिप्पणी करते हैं। संवेदनात्मक आलोक नाम से इनका एक ब्लॉग व फेसबुक समूह भी है। व्हाट्सएप समूह संवेदनात्मक आलोक की सामग्री को बाद में ब्लॉग और फेसबुक समूह पर भी प्रस्तुत कर दिया। इस तरह व्हाट्सएप समूह की सीमाओं में यहाँ पर भी उल्लेखनीय काम हो रहा है। संवेदनात्मक आलोक पर इस तरह अब तक 105 नवगीत कवियों को प्रस्तुत किया जा चुका है।

व्हाट्सएप पर 'सजल सर्जना' मथुरा नाम से एक समूह का संचालन विद्वान प्राध्यापक डॉ. अनिल गहलोत करते हैं। इस समूह में सप्ताह में 1 दिन नवगीत-दिवस होता है। इस दिन का आयोजन और संचालन वरिष्ठ नवगीत कवि-आलोचक-संपादक डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' करते हैं। इस दिन पटल पर समूह के सभी नवगीत कवि अपने नवगीत प्रस्तुत करते हैं एवं उन पर चर्चा होती है। गीत-नवगीत परंपरा के महान कृतिकारों का परिचय विरासत में दिया जाता है। आलोचक डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी नवगीत लेखन के संबंध में आए प्रश्नों का समाधान भी करते हैं।

व्हाट्सएप पर गीतकार सखियाँ नाम से भी एक समूह संचालित किया जा रहा है। इसमें केवल स्त्री गीतकार और नवगीतकार जुड़ी हुई हैं। यह समूह भी नये-नये प्रयोग करता रहता है। 'किस्सा कोताह', 'साहित्यिक संवाद', 'कलम-दवात' 'अभियान जबलपुर' आदि कई व्हाट्सएप समूह चल रहे हैं, जिन पर नवगीत भी प्रस्तुत किए जाते हैं। किंतु, जैसा मैंने कहा, कि चर्चा की संभावना से अधिक स्थायित्व की दृष्टि से इनका कुछ ज्यादा महत्त्व नहीं है। यद्यपि इन समूहों में कुछ गुरु, कुछ चेले, कुछ मठ और कुछ मठाधीश अवश्य पैदा कर दिए हैं, जो किसी भी विधा में अंतत: एक जड़ता को बढ़ाने वाले ही प्रमाणित होते हैं, हुए भी हैं।

ब्लॉग अन्तर्जाल पर निजी तौर पर संचालित किया जाने वाला अंतर्जाल स्थान है। वर्तमान में ब्लॉग पर कई नवगीत कवि-साहित्यकार नवगीत पर निजी रचना कर्म के अतिरिक्त शेष नवगीत कविता संसार पर केंद्रित सामग्री भी प्रकाशित कर रहे हैं। डॉ. पूर्णिमा बर्मन के ब्लॉग, नवगीत की पाठशाला',

'चोंच में आकाश', 'संग्रह और संकलन', 'एक आँगन धूप,' डॉ. जगदीश व्योम के ब्लॉग 'नवगीत', 'व्योम के पार', आचार्य संजीव वर्मा 'सलिल' का विश्व वाणी संस्थान का, 'दिव्य नर्मदा', राजा अवस्थी के ब्लॉग 'गीतपथ', 'दृष्टिकोण' 'राजा अवस्थी' जयकृष्ण राय तुषार के ब्लॉग 'छांदसिक अनुगायन', 'सुनहरी कलम से' मनोज जैन 'मधुर' का ब्लॉग 'वागर्थ' एवं रामकिशोर दाहिया का ब्लॉग 'संवेदनात्मक आलोक' इसी तरह के ब्लॉग हैं। डॉ. पूर्णिमा बर्मन यद्यपि 1995 से ही अंतर्जाल पर सक्रिय हैं और अभिव्यक्ति-अनुभूति के साथ नवगीत कविता के लिए काम कर रही हैं, किंतु ब्लॉग पर वे 2007 में आईं। उसके बाद उन्होंने कई ब्लॉग बनाये। उनके ब्लागों में जहाँ नवगीत कवियों की नवगीत कवितायें, नवगीत कविता पर आलेख, साक्षात्कार, समीक्षाएँ, प्रकाशित होने वाले नवगीत संग्रह व समवेत नवगीत संकलनों की जानकारी है, वहीं उनके विशेष ब्लॉग 'नवगीत की पाठशाला' में उनकी कार्यशाला में प्रस्तुत नवगीत, उन पर हुए विमर्श आलेख आदि प्रदर्शित किए गए हैं, किए जाते हैं। इस तरह यहाँ नवगीत पर केंद्रित हजारों पृष्ठों की सामग्री उपलब्ध है। पूर्णिमा बर्मन जी के सभी ब्लॉगों में इसी तरह की सामग्री है।

डॉ. जगदीश व्योम के ब्लॉग 'नवगीत' की शुरुआत 2011 में हुई। 'नवगीत' ब्लॉग में जहाँ लगभग सभी नवगीत कवियों की कुछ-कुछ नवगीत कवितायें प्रदर्शित की गई हैं, वहीं अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, धर्मवीर भारती, कुँवर नारायण जैसे मुक्त छंद कवियों के नवगीत भी प्रदर्शित किए गए हैं। यद्यपि इन एकाध नवगीतों के बल पर इन्हें नवगीत कवि नहीं माना जाना चाहिए। इसका एक संभावित प्रभाव यह अवश्य हो सकता है, कि चूँकि ये लोग अपने समय और अपने क्षेत्र के बड़े रचनाकार हैं, इसलिए इनका नाम कुछ अच्छे और बड़े नवगीत कवियों से पहले लिया जाने लगे और कालांतर में ये नवगीत कविता के भी पुरखे घोषित कर दिए जाएँ। डॉ. व्योम के ब्लॉग में डॉ. पूर्णिमा बर्मन द्वारा 2011 से लखनऊ में आयोजित होने वाले नवगीत महोत्सव-नवगीत परिसंवाद के 2011 से लेकर 2015 तक के चित्र भी सहेजे गए हैं। कुछ समीक्षायें, कुछ आलेख, कुछ पुस्तकों की जानकारी भी प्रदर्शित है। डॉ. जगदीश व्योम तकनीकी ज्ञान से सम्पन्न नवगीत कवि हैं और अंतर्जाल पर काम करने वाले दूसरे नवगीत कवियों को भी सहयोग करते हैं। डॉ. पूर्णिमा बर्मन को अभिव्यक्ति-अनुभूति के संचालन में कैनेडा के डॉक्टर अश्विन गाँधी और कुवैत से दीपिका जोशी सहयोग कर रही थी। वहीं भारत में डॉ. अवनीश सिंह चौहान और डॉक्टर जगदीश व्योम ने काफी सहयोग किया है। उल्लेखनीय है कि यह सहयोग रचनात्मक सहयोग है। किसी तरह की आर्थिक सहयोग की बात यहाँ नहीं है। पूर्णिमा बर्मन स्वयं सारा आर्थिक भार उठाती रही हैं। डॉ. व्योम ने संवेदनात्मक आलोक व्हाट्सएप समूह, ब्लॉग और संवेदनात्मक आलोक फेसबुक समूह को भी भरपूर सहयोग प्रदान किया है। इस तरह आभासी संसार में इनका काम महत्त्वपूर्ण है।

आचार्य संजीव वर्मा सलिल का 'दिव्य नर्मदा' नाम से ब्लॉग ने इसे हिंदी तथा अन्य भाषाओं के मध्य साहित्यिक-सांस्कृति नये नवगीत कवि भी मिल जाते हैं, जो कहीं और नहीं मिलते। इसका रचनात्मक रूप से लोगों को तैयार करते रहते हैं। सलिल 'गीतपथ' पर ही हैं। इस ब्लॉग साल का 'दिव्य नर्मदा' नाम से ब्लॉग है। इसको अस्तित्व में लाते हुए आचार्य संजीव वर्मा सलिल 'मध्य साहित्यिक-सांस्कृतिक-सामाजिक संपर्क हेतु रचना सेतु कहा है। यहाँ कई ऐसे गुमनाम' नवगीत भी मिले जाते हैं जो

कहीं और नहीं मिलते। इसका कारण यह है कि सलिल जी कार्यशालाओं के माध्यम से भी रचनात्मक रूप से लोगों को तैयार करते रहते हैं। सलिल जी की लिखी लगभग 70 समीक्षायें अंतर्जाल पर उपलब्ध हैं।

अंतर्जाल पर राजा अवस्थी के तीन ब्लॉग 'राजा अवस्थी', 'दृष्टिकोण' एवं 'गीतपथ' संचालित हैं, किन्तु अधिकांश प्रस्तुतियाँ – 'गीतपथ' पर ही है। इस ब्लॉग की विशेषता यह है, कि यू-ट्यूब की 'नवगीत धारा' शृंखला के वीडियो के साथ नवगीत महोत्सव 2019 की प्रस्तुतियाँ भी यहाँ वीडियो के रूप में प्रदर्शित हैं। डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' के लगभग 1 घंटे के वक्तव्य के साथ कछ नवनीत आलेख, समीक्षायें आदि प्रदर्शित की गई हैं। नवगीत कवि जयकृष्ण राय तुषार के 'छांदसिक अनुगायन' और 'सुनहरी कलम से' 2010 से 'अंतर्जाल पर संचालित हैं। इन दोनों ब्लॉगों में नवगीत प्रदर्शित हैं। रामकिशोर दाहिया का ब्लॉग 'संवेदनात्मक आलोक अंतर्जाल पर संचालित है, जहाँ पर उनके वाट्सएप समूह में चर्चार्थ प्रस्तुत नवगीत व टिप्पणियाँ प्रदर्शित की जाती हैं। इस तरह यहाँ पर भी नवगीत पर काफी सामग्री प्रदर्शित है।

नवगीत कवि मनोज जैन मधुर ब्लॉग पर 'वागर्थ' का संचालन करते हैं। नवीन कविता के लिए यह बिल्कुल नया ब्लॉग है। जनवरी 2021 में इसकी शुरुआत हुई। अभी इसे शुरू हुए मात्र कुछ माह ही हुए हैं, किन्तु कम समय में भी 'वागर्थ' पर लगभग 8000 पृष्ठ जोड़े जा चुके हैं। इस मंच पर नवगीत कविता पर केंद्रित आलेख, नवगीत कवितायें और ई-बुक्स को भी जोड़ा गया है। यदि इसी गति से 'वागर्थ' पर पन्ने जोड़े जाते रहे तो भविष्य में यह ब्लॉग नवगीत-कविता एक समृद्ध मंच होगा। ब्लॉग पर जनवरी 2009 से भारतेंदु मिश्र का 'छंद प्रसंग' निरंतर संचालित है। इसमें भी नवगीत केंद्रित सामग्री है। यह सबसे पुराने नवगीत केंद्रित ब्लॉगों में एक है।

वेब पत्रिका, ब्लॉग, यूट्यूब और व्हाट्सएप समूह के साथ फेसबुक पर भी नवगीत कविता की उल्लेखनीय उपस्थिति है। यह उपस्थिति नवगीत व उन पर चर्चा के रूप में है। जहाँ एक और लगभग सभी नवगीत कवि अपनी निजी फेसबुक वॉल पर अपनी नवगीत कवितायें प्रदर्शित करते हैं, वहीं कुछ फेसबुक समूह भी सक्रिय हैं और महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। फेसबुक पर नवगीत केंद्रित समूहों की एक लंबी सूची है। ये सभी समूह कुछ विशिष्ट उद्देश्यों के साथ एवं गंभीरता से नवगीत कविता के लिए काम करने वाले नवगीत कवियों द्वारा बनाए गए हैं। फेसबुक पर समूह के रूप में जो पहली उपस्थित है, वह डॉ. अवनीश सिंह चौहान की 4 अगस्त 2011 को उनके फेसबुक समूह 'गीत नवगीत' के साथ होती है। दूसरा समूह भी उन्होंने ही 9 जुलाई 2012 को 'हिंदी साहित्य' (1.4 हजार सदस्य) के नाम से बनाया। अब इन दोनों समूहों पर नवगीत केन्द्रित सामान्य गतिविधियाँ चलती रहती हैं। फेसबुक समूह की संचालक के रूप में डॉ. पूर्णिमा बर्मन की महत्त्वपूर्ण उपस्थिति 23 दिसंबर 2012 को 'नवगीत की पाठशाला' के साथ हुई। इसी नाम से इनका ब्लॉग भी है और इस फेसबुक समूह पर भी उसी तरह की गतिविधियाँ संचालित की जाती है, जैसी 'नवगीत की पाठशाला' ब्लॉग पर कई जाती हैं। इनके के बाद फेसबुक समूह का निर्माण डॉ. जगदीश व्योम ने 31 अगस्त 2013 को 'नवगीत समूह' के नाम से फेसबुक समूह बनाया। आचार्य संजीव वर्मा सलिल का प्रवेश फेसबुक समूह संसार में उल्लेखनीय कहा जाएगा, क्योंकि 'गीत-नवगीत सलिला' के अलावा भी ये की नवगीत समूहों का संचालन करते हैं। आचार्य सलिल के मार्गदर्शन

में ही 'अभियान जबलपुर' के नाम से एक फेसबुक समूह का संचालन बसंत कुमार शर्मा एवं मिथिलेश बड़गैंया करते हैं।

'कविता कोश' फेसबुक समूह भी 27 दिसंबर 2014 को फेसबुक पर आया। सर्वाधिक सदस्यों वाले इस समूह के लगभग 42000 सदस्य हैं। डॉ. जगदीश व्योम ने दो और समूह 25 फरवरी 2015 को 'नवगीत के आसपास' और 3 जून 2015 को 'नवगीत विमर्श' बनाये। 20 दिसंबर 2015 को डॉ. राधेश्याम बंधु 'नवगीत चर्चा' के साथ फेसबुक समूह संसार में आते हैं। 30 जनवरी 2016 को रामकिशोर दाहिया ने 'नवगीत वार्ता' एवं 14 फरवरी 2016 को राजा अवस्थी ने 'नवगीत कविता' फेसबुक समूह बनाकर उनका संचालन शुरू किया। रामकिशोर दाहिया ने व्हाट्सएप समूह की सामग्री को फेसबुक पर प्रस्तुत करने के उद्देश्य से 14 मार्च 2016 को संवेदनात्मक आलोक नाम से एक और समूह बनाया। मनोज जैन मधुर ने 11 अक्टूबर 2016 को 'वागर्थ' एवं 7 दिसंबर 2017 'अंतरा' फेसबुक समूह बनाया था, किन्तु सक्रिय हुए वे 29 जनवरी 2021 से और अब इसपर वे बहुत महत्त्वपूर्ण काम कर रहे हैं। सप्ताह में कम से कम 2 दिन दूसरे नवगीत कवियों के 14-15 नवगीत आलोचकीय समझ वाले किसी महत्त्वपूर्ण नवगीत कवि की विशेष टिप्पणी, जो संक्षिप्त आलेख की तरह होती है, के साथ चर्चार्थ प्रस्तुत किए जाते हैं। इनकी इन प्रस्तुतियों की इन दिनों खूब चर्चा है। वागर्थ के इस मंच पर नवगीतों पर भी उल्लेखनीय चर्चा होती है। यहाँ प्रस्तुत सामग्री को बाद में इनके ब्लॉग 'वागर्थ' पर भी प्रस्तुत कर दिया जाता है। 'वागर्थ' के फेसबुक समूह एवं ब्लॉग के लिए विशेष सलाह एवं मार्गदर्शन बहुभाषाविद, विद्वान अनुवादक कवि डॉ. अनिल जनविजय का एवं सहयोग नवगीत कवि अनामिका सिंह का प्राप्त होता है। 30 नवंबर 2019 को आचार्य ओम नीरव जी ने 'नवगीत लोक', फेसबुक समूह बनाया। इस समूह में नवगीत के स्थूल शिल्प को लेकर चर्चा होती रहती है। ओम नीरव सनातनी छंदों के विद्वान आचार्य हैं और उनका झुकाव उसी ओर है। उनके द्वारा प्रस्तुत प्रश्नों पर उनका यह झुकाव प्रदर्शित भी होता है। यद्यपि प्रश्न छोड़ने के बाद वह स्वयं अपना मंतव्य कभी नहीं रखते। 3 सितंबर 2020 को डॉ. पंकज परिमल ने 'रामकथा प्रसंग नवगीत' नाम से एक समूह बनाया। इस पर उनके ही राम कथा पर आधारित नवगीत हैं और यह विषय केंद्रित नवगीतों के लिए बनाया गया समूह है। डॉ. पंकज परिमल ने ही 6 अक्टूबर 2020 को 'गीतिका- नवगीत' समूह बनाया। नवगीत पर केंद्रित अभी बिल्कुल नया फेसबुक समूह योगेंद्रदत्त शर्मा एवं जगदीश पंकज द्वारा संचालित 'नवगीतम-नवनीतम है। अब इस तरह कुल 18 फेसबुक समूह है, जो नवगीत कविता के प्रदर्शन चर्चा विमर्श आदि के लिए कार्य कर रहे हैं। कुछ समूह गंभीरता के साथ सक्रिय होकर कार्य कर रहे हैं।

आजकल फेसबुक लाइव का चलन तेजी से बढ़ा है। फेसबुक पर नवगीत कवियों के नवगीत वीडियो के रूप में भी उपलब्ध हैं। कई समूह इस तरह फेसबुक लाइव के कार्यक्रम आयोजित कर रहे हैं। इस तरह के आयोजनों की लम्बी शृंखला चलाने वालों में गीत-गोपाल, कला-भारती, अभियान आदि हैं। ये लाइव कार्यक्रम नवगीत केन्द्रित नहीं हैं, किन्तु यहाँ नवगीत भी काफी मात्रा में पढ़े गये हैं। अभी 'वागर्थ' ने नवगीत केन्द्रित फेसबुक लाइव कार्यक्रम शुरू किया है। निश्चित ही यह नवगीत यात्रा में उल्लेखनीय भूमिका निभाएगा।

इन दिनों 'वागर्थ' चर्चा में है और 'नवगीत की पाठशाला' सदैव चर्चा में रहने वाला समूह है। 'कविता कोश' एक विशाल मंच से संबद्ध है, तो उसका अपना महत्त्व है। नवगीत-विमर्श और नवगीत वार्ता यदा-कदा अच्छा विमर्श आयोजित करते रहते हैं। नवगीतम-नवनीतम अपना स्थान बनाने में लगा है। 'नवगीत-कविता' भी सामान्य गति से चल रहा है।

आभासी दुनिया का एक महत्त्वपूर्ण मंच यूट्यूब भी है। यहाँ पर आज की स्थिति में विश्व साहित्य की सभी विधाओं के गंभीर विवेचन के साथ साहित्यकार, प्राध्यापक, चिंतक उपस्थित हैं। हिंदी भाषा में भी विश्व साहित्य पर यहाँ विफल सामग्री वीडियो के रूप में उपलब्ध हैं। नवगीत कविता की उपस्थिति यहाँ नगण्य है, किंतु कुछ-कुछ काम अवश्य हो रहा है। नवगीत कविता को लेकर यूट्यूब पर सक्रिय रहने वाले इकलौते नवगीत कभी राजा अवस्थी हैं। इनके यूट्यूब चैनल नवगीत धारा में 'नवगीत धारा' एवं 'कविता प्रवाह' शृंखला का प्रदर्शन निरंतर किया जा रहा है। 'नवगीत धारा' में कई महत्त्वपूर्ण नवगीत-कवियों पर केंद्रित बड़े-बड़े वीडियो उपलब्ध हैं। इनमें नवगीत कविता पर आलोचनात्मक टिप्पणी एवं परिचय के साथ उनके कुछ न नवगीत प्रस्तुत किए जाते हैं। भविष्य में इस मंच पर बहुत कुछ किए जाने की संभावनाएँ एवं जरूरत भी है। यूट्यूब पर व्यक्तिगत रूप से भी कुछ नवगीतकारों के वीडियो उपलब्ध हैं, किंतु नवगीत साहित्य पर केंद्रित यूट्यूब चैनल राजा अवस्थी का नवगीत धारा ही है। यूट्यूब पर 'नवगीत धारा' लिखकर खोज करके पहुँचा जा सकता है। प्रत्येक वीडियो पर बड़ी-बड़ी टिप्पणियाँ भी असीमित मात्रा में की जा सकती हैं। इस तरह अंतर्जाल पर उपस्थित आभासी संसार में नवगीत की उपस्थिति बहुत उत्साहित करने वाली है और नवगीत के पाठकों, कवियों व शोधार्थियों, प्राध्यापकों के लिए उपयोगी है। वेब पत्रिका अनुभूति व पूर्वाभास, फेसबुक समूह वागर्थ, यूट्यूब चैनल नवगीत धारा की तरह और बहुत से प्रयासों की बहुत जरूरत है। व्हाट्सएप समूहों को मठाधीशी की प्रवृत्ति से उबर कर काम करना चाहिए और अपने काम को सुरक्षित अवश्य करना चाहिए, क्योंकि व्हाट्सएप पर कुछ सुरक्षित नहीं रह पाता। यह आभासी संसार दिनोंदिन विस्तार पा रहा है। इसी अनुपात में नवगीत कविता भी यहाँ अपना स्थान बना रही हैं। नवगीत कवि को इस आभासी संसार को समझकर यहाँ अपनी उपस्थिति बढ़ाने के और प्रयत्न करना चाहिए।

सम्पर्क : *कटनी (म.प्र.)*
मो. 9131675401

माखनलाल चतुर्वेदी
(4 अप्रैल 1888–30 सितम्बर 1967)

दूबों के दरबार में

क्या आकाश उत्तर आया है
दूबों के दरबार में?

नीली भूमि हरी हो आई
इस किरणों के ज्वार में!
क्या देखें तरुओं को उनके
फूल लाल अँगारे हैं

बन के विजन भिखारी ने
वसुधा में हाथ पसारे हैं।
नक्शा उतर गया है, बेलों
की अलमस्त जवानी का
युद्ध ठना, मोती की लड़ियों से
दूबों के पानी का!

तुम न नृत्य कर उठो मयूरी,
दूबों की हरियाली पर,
हंस तरस खाएँ उस मुक्ता
बोने वाले माली पर!
ऊँचाई यों फिसल पड़ी है
नीचाई के प्यार में!
क्या आकाश उतर आया है
दूबों के दरबार में?

महाकवि निराला
(बसंत पंचमी 1897–15 अक्टूबर 1961)

आओ-आओ

जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ!

आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला,
धोबी, पासी, चमार, तेली
खोलेंगे अँधेरे का ताला,
एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ।

यहाँ जहाँ सेठजी बैठे थे
बनिये को आँख दिखाते हुए,
उनके ऐंठाये ऐंठे थे
धोखे पर धोखा खाते हुए,
बैंक किसानों का खुलाओ।

सारी सम्पत्ति देश की हो,
सारी आपत्ति देश की बने,
जनता जातीय वेश की हो,
वाद से विवाद एक ठने,
काँटा काँटे से कढ़ाओ।

केदारनाथ अग्रवाल
(1 अप्रैल 1911–22 जून 2000)

नई ज़िंदगी

नई ज़िंदगी है
नए फेफेड़ों में हवाएँ नई हैं
नए लोचनों में निगाहें नई हैं

नया दिल धड़कता है
नई ज़िंदगी है।

नई ज़िंदगी है
नए आदमी की भुजाएँ नई हैं
करोड़ों उमंगें कलाएँ नई हैं
नया बल उमड़ता है
नई ज़िंदगी है

नई ज़िंदगी है
नई कल्पना की जवानी नई है
नई कामना की कहानी नई है
नया रवि विहँसता
नई ज़िंदगी है

नई ज़िंदगी है
नए तीर-तरकस निशाने नए हैं
जुझारू नए गीत, गाने नए हैं
नया स्वर सँवरता,
नई ज़िंदगी है

नई ज़िंदगी है
नई राह हैं चौमुहाने नए हैं
नई मंज़िलों के दहाने नए हैं
नया लोक बसता
नई ज़िंदगी है।

रामावतार त्यागी
(8 जुलाई 1925–12 अप्रैल 1965)

और मैं कैद हूँ

सिर्फ ताले, किवाड़ें, सलाखें नहीं
एक दीवार तक भी नहीं है कहीं
एक ऐसी भयानक हवालात है
और मैं कैद हूँ

एक ही काम है जो मिला है यहाँ
मैं हवा को कभी गर्म होने न दूँ
और सब छूट है एक ही शर्त है
जो कहूँ आँसुओं में भिगोकर कहूँ
रील में जिस तरह हो पिरोई हुई
दूर तक भीड़ है भीड़ सोई हुई
प्रश्न जागे हुए गश्त पर रात है
और मैं कैद हूँ

एक भय है अजाना कि संदेह है
खिड़कियों की तरह प्राण-मन-काँपता
कर रही झनझनाहट कि फैलो नहीं
वक्त गज से कदों को नहीं नापता
नालियाँ हर तरफ रास्ता ही नहीं
दूर तक आदमी का पता ही नहीं
बस घुटन से घुटन की मुलाकात है
और मैं कैद हूँ

है निवेदन अगर आप स्वीकार लें
सिर्फ इतना कि मेरी तलाशी न लें
ये विफलताएँ, आँसू, पराजित सपन
यह थकन और मेरी उदासी न लें
रात ठहरी, थकी एक निरूपाय-सी
हर समस्या बनी मरखनी गाय-सी
बेकली साथ थी, बेकली साथ है
और मैं कैद हूँ

डॉ. महेन्द्र भटनागर
(26 जून 1927–27 अप्रैल 2020)

नवोन्मेष

खण्डित पराजित
ज़िंदगी ओ!
सिर उठाओ।
आ गया हूँ मैं
तुम्हारी जय सदृश
सार्थक
सहज विश्वास का
हिमवान!

अनास्था से भरी
नैराश्य-तम खोयी
थकी, हत-भाग, सूनी
ज़िंदगी ओ!
सिर उठाओ,
और देखो
द्वार दस्तक दे रहा हूँ मैं
तुम्हारे भाग्य-बल का
जगमगाता सूर्य
तेजोवान!

ज़िंदगी
इस तरह
टूटेगी नहीं!

ज़िंदगी
इस तरह
बिखरेगी नहीं!

डॉ. शिवबहादुर सिंह भदौरिया
(15 जुलाई 1927- 5 अगस्त 2013)

नदी का बहना मुझमें हो

मेरी कोशिश है
कि-
नदी का बहना मुझमें हो।

तट से सटे कछार घने हों
जगह-जगह पर घाट बने हों,
टीलों पर मन्दिर हों जिनमें
स्वर के विविध वितान तने हों,

भीड़
मूर्च्छनाओं का
उठना-गिरना मुझमें हो।
जो भी प्यास पकड़ ले कगरी
भर ले जाये खाली गगरी
छूकर तीर उदास न लौटें
हिरन कि गाय कि बाघ कि बकरी
मच्छर, मगर
घड़ियाल
सभी का रहना मुझमें हो।

मैं न रुकूँ संग्रह के घर में
धार रहे मेरे तेवर में
मेरा बदन काट कर नहरें
ले जायें पानी ऊसर में
जहाँ कहीं हो
बंजरपन का-
मरना मुझमें हो।

डॉ. वीरेन्द्र मिश्र
(1 दिसम्बर 1927–01 जून 1995)

आखिरी साँस है रात की

आखिरी साँस है रात की
गीत गा चाँद की चातकी
सो नहीं, सो नहीं

शबनमी वायु है बह रही
किन्तु वह भी यही कह रही
भैरवी ने किया साथ है
रात के कोष में प्रात है
खो नहीं, खो नहीं

द्वार खुलने लगे लौह के
पल सफल कंस से द्रोह के
कृष्ण पर है कृपा शैव की
देख वसुदेव की देवकी
रो नहीं, रो नहीं

दृष्टि को दूर तक भेज तो
हर जगह तृप्ति की सेज तो
दो निमिष और सूरजमुखी
व्यर्थ में इस तरह तू दुखी
हो नहीं, हो नहीं।

उमाकांत मालवीय
(2 अगस्त 1931–11 नवम्बर 1982)

वत्सल गंगा मइया

गंगोत्री में पलना झूले
आगे चले बिकइयाँ
भागीरथी घुटुरुवन डोले शैल शिखर की छइयाँ

छिन छिपती, छिन हौले किलके
छिन ता झाँ वह बोले,
अरबराय के गोड़ी काढ़ै
ठमकत–ठमकत डोले।
घाटी–घाटी दही–दही कर चहके सोन चिरैया
पाँवों पर पहुड़ाकर परवत गाये खन्ता खइयाँ।

पट्टी पूज रही है
वरणावत की परिक्रमा कर,
बालों में रूमाल फेन का
गाये दौड़े हर–हर।
चढ़ती उमर चौकड़ी भरती, छूट गई लरिकइयाँ
भलो लगे मुग्धा को अपनी ही प्यारी परछइयाँ।

दिन–दिन आँगिन छोटी पड़ती
गदराये तरुणाई
पोर–पोर चटखे मादकता
लहराये अँगड़ाई
दोनों तट प्रियतम शान्तनु की घेर रही दो बँहियाँ,
छूट गया मायका बर्फ का बाबुल की अँगनइयाँ।

भूखा कहीं देवव्रत टेरे
दूध भरी है छाती
दौड़ पड़ी ममता की मारी
तज कर संग सँगाती
गंगा नित्य रँभाती बढ़ती जैसे कपिला गइया,
सारा देश क्षुधातुर बेटा, वत्सल गंगा मइया।

डॉ. ठाकुर प्रसाद सिंह
(1 दिसम्बर 1924–26 अक्टूबर 1993)

एक प्रहर

झर–झर झर–झर
जैसे यूकिलिप्टस के स्वर
बरसे बादल, कुल एक पहर

ओरी मेरी चुई रात भर
नन्हे छत्रक दल के ऊपर
इन्द्रदेव तेरा गोरा जल
मेरे द्वार विहँसता सुन्दर

तेरे स्वर के बजते मादल
रात–रात भर
बादल, रात रात भर
झर–झर झर–झर
बरसे–बादल, कुल एक पहर!

देवेन्द्र कुमार बंगाली
(18 जुलाई1933–18 जून 1991)

शामें अच्छी हों

लाख बुरे हों दिन
तो हुआ करें
शामें अच्छी हों
कुछ छन गुजरें

कमरे में सूनेपन की बातें
कर लेंगे हम
सुन लेंगी रातें
चढ़ती धूप उतरती किरनों से
कैसे जान बचे
कैसे उबरें!

नदी पार्कों लानों की शर्तें
कच्ची नींव मकानों की शर्तें
परिचय और अपरिचय की शर्तें
एक–दूसरे को काटती फिरें

आये कोई हवा इधर कट के
बात करें बैठें थोड़ा सट के
कुछ मौसम की
कुछ बे–मौसम की
लायें ढेरों की ढेरों खबरें

लाख करे हों दिन तो हुआ करें
शामें अच्छी हों
कुछ छन गुजरें।

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र'
(1 अप्रैल 1934–17 अप्रैल 2019)

कहो वासवदत्तिके!

सुनो बादल
सिन्धु को सूखी नदी तक ले चलो
आग पीती
आम्र-वन की मंजरी तक ले चलो।

शस्य श्यामल
वसुमती का
स्वर्ण आँचल जल रहा
स्वाति का घन
चातकी से
नित्य करता छल रहा

है तुम्हारे पास अमरित
सलिल, सुरधनु, क्या नहीं
भरी अँजुरी को
पिपासित देहरी तक ले चलो।

पौंछ दी तुमने
गगन से
चन्द्रचूड़ा चाँदनी
दृष्टिवंशी
घिर रही
विषधर-घटा उन्मादिनी

दिये की खुशबू
अँधेरे किले में दम तोड़ती
रोशनी के सिलसिलों को
झोपड़ी तक ले चलो।

छन्दगन्धी काव्य को

जिनने दिये
नव प्राण तब
हैं कहाँ वे
गद्यकार
सुबन्धु, दण्डी, बाण अब

कहो वासवदत्तिके!
तुम दशकुमारों के चरित
हम सुनेंगे फिर कथा
कादम्बरी तक ले चलो।

क्यों यमन-अनुप्रास
मन को
बाँध अब पाते नहीं
श्लेष के अश्लेष
तन को
साध अब पाते नहीं

इस कसैले धुएँ में
घुटने लगी है चेतना
तुम उसे
आम-आदमी की जिन्दगी तक ले चलो।

डॉ. रवीन्द्र भ्रमर
(6 जून 1934–28 नवम्बर 1998)

वंशी करो मुखर!

गूँज उठे युग की साँसों में
नव जीवन का स्वर।

सदियों की सोई मानवता
ज्योति नयन खोले,
मिटे कलुष तम तोम
प्रभाती स्वर्णरंग घोले!
उतरें देव स्वर्ग से
मधु के कलश लिये भू पर।
वंशी करो मुखर।

वाणी की वाणी पर
शाश्वत सरगम लहराये,
नये स्वरों में नये भाव भर
कवि का मन गाये!
फूटें जड़ चट्टानों से
रस के चेतन निर्झर।
वंशी करो मुखर।

गूँज उठे युग की साँसों में
नव जीवन का स्वर।

चन्द्रपाल शर्मा 'शीलेश'
(2 जनवरी 1933–30 मई 2011)

खाली हाथ

खाली हाथ लिए बैठा है
दानवीर सा मन।
भीतर दूर-दूर तक फैला
खाली घर पा
तितली के पर सा
सुन्दर
सपनों का परदा
झरते रहते रंग
जागती
जब पीड़ा कम्पन।

खुली हुई खिड़की की
आँख
पथिक को टोके
जोगन के गीतों को
काजल
आकर रोके

नील कंठ की तरह
अतिथि
रंग जाते हैं आँगन।

कोयल
पूँछ उठाये
चारों ओर निहारे
बिन दरपन
अपने
पंखों के केश सँवारे

मन पर छाई है
शहनाई
तन पर वृन्दावन।।

नईम
(1 अप्रैल 1935–9 अप्रैल 2009)

रह जाने को

सुबहे बनारस, शामे अवध...
होकर रह जाने को,
जी करता है
शबे मालवा सा बह जाने को।

ऋतुएँ चाहे कैसी भी हों, हो कैसा मौसम,
हुआ करेंगे हाट-बाट, घर, गलियारों में हम।
जीवन के मतलब, मकसद
मर-खपकर पाने को।

भ्रम ही सही किन्तु सच से तो ज्यादा सच्चे हैं,
लगा न पाये गणित हमेशा से हम बच्चे हैं।
माटी अपनी जबर...
धूल-धक्कड़ सह जाने को।

अभिशापित हैं जब हम-तुम यह जीवन जीने को,
मिले ओक से या प्याले से, लेकिन पीने को।
अन्त मिले तो मिले
कगारों-सा डह जाने को।

श्यामलाल 'शमी'
(15 जून 1935–12 फरवरी 2019)

शब्द

शब्द अगर आना तो–
कोई शुभ्र अर्थ लाना,
तुमको रच, अपने गीतों का
कोष सँवारूँगा।
अर्थ कि वह ताजा–टटका
जो मन पीड़ा हरदे
हृदय–कुंड खारे पानी को
जो मीठा करदे

मित्र सार्थक बनकर
मन के पन्नों छा जाना,
मिले भाव–नवनीत, सृजन की–
रई बिलोडूँगा।
दीन–दुखी के दर्दों का–
मरहम लाना भाई
'घीसू' हरषे और असीसे
'जुम्मन' की माई
मुल्ला–पंडित गले मिलें
वह युक्ति साथ लाना,
आपस में जो पड़ी बैर–
की, गाँठें खोलूँगा।
वंचित को हो चना–चबैना
भूखा पेट भरे
सन्नाटों को चीर चिरइया
होकर मुक्त उड़े
बच्चों की बेलौस हँसी
अक्षर–अक्षर दमके,
अपनी कलम उतार, धुंध के
बादल छाटूँगा।

चन्द्रसेन 'विराट'
(3 दिसम्बर 1936–15 नवम्बर 2018)

किरण के कशीदे

कढ़े हुए मेघों पर
किरण के कशीदे
यंत्रों की दुनिया में कौन पर खरीदे

क्लिष्ट व्यस्तताओं में
कभी सुबह शाम
यत्न-जनित मुस्कानें
फेंकती प्रणाम
लोहे के स्वप्न लिये
थके दृग उनींदे

मिल गयी चिमनी भोंपू
शोर धुँआ राख
यंत्र-बोध मीच गया
भीतर की आँख
संवेदन पर अपनी
कौन जो सही दे

गति के पहियों नीचे
पिसे हुए लोग
सिर्फ ऊब देते हैं
घिसे हुए भोग
बुढ़ा गई असमय ही
किशोरी उमींदे...।

अमरनाथ श्रीवास्तव
(21 जून 1937–15 नवम्बर 2009)

मंज़िल-दर-मंज़िल

मंज़िल-दर-मंज़िल
पुण्य फलीभूत हुआ
कल्प है नया
सोने की जीभ मिली
स्वाद तो गया
1 :
छाया के आदी हैं
गमलों के पौधे
जीवन के मंत्र हुए
सुलह और सौदे
अपनी जड़ भूल गयी,
द्वार की जया
2 :
हवा और पानी का
अनुकूलन इतना
बंद खिड़कियाँ
बाहर की सोचें कितना
अपनी सुविधा से है
आँख में दया
3 :
मंज़िल-दर मंज़िल
है एक ज़हर धीमा
सीढ़ियाँ बताती हैं
घुटनों की सीमा
हमसे तो ऊँचे हैं
डाल पर बया...।

रमेश रंजक
(12 सितम्बर 1938–8 अप्रैल 1991)

अब की बरस

बड़ा तरस-तरस बीता
दीवारें नहीं पुतीं, रंग नहीं आये
एक-एक माह बाँध, खींच-खींच लाये
अब की यह बरस

जाने क्या हो गया सवेरों को
रोगी की तरह उठे खाट से
रूखे-सूखे दिन पर दिन गये
किसी नदी के सूने घाट-से

हमजोली शाखों के हाथ-पाँव
पानी में तैर नहीं पाये

शामें सब सरकारी हो गयीं
अपनापन पेट में दबोच कर
छाती पर से शहर गुजर गया
जाने कितना निरीह सोचकर

बिस्तर तक माथे की मेज पर
कागज दो-चार फड़फड़ाये

वेतन की पूर्णिमा नहीं लगी
दशमी के चाँद से अधिक हमें
शीशों को तोड़ गयी कालिमा
समझे फिर कौन आस्तिक हमें

खिड़की से एक धार ओज भर
हम आधी देह भर नहाये...।

शलभ श्रीराम सिंह
(5 नवम्बर 1938–22 अप्रैल 2000)

शलभ, गीत ही लिखो

तुम्हें कविता लिखने के लिए
सीखना नहीं पड़ेगा
किसी बंद कमरे में
खुद मजबूरी में घिरकर अक्सर
तुम्हें चीखना नहीं पड़ेगा।

शलभ, गीत ही लिखो
गीत–गीत इतने कि उन्हें गिनते–गिनते
पढ़ने की इच्छा लगे जगने
और उन्हीं में रमकर पाठक
अपने लिए राह पा जाए
चलते हुए उन्हीं को गाए
जो कुछ भी जुड़ा हुआ है तुमसे
सबका–हो–सबका हो जाए

शलभ, गीत ही लिखो
कि अपने छंदों की
निजता का सुख बहुत बड़ा है
वैसे इस पथ पर चलने में
सबके पैरों में शूल गड़ा है
खून बहा है और जमा है
क्योंकि खून था
तुमसे पहले लोगों में
यह जुनून था
जो वस्त्रों के नहीं
जिंदगी के करीब था
क्या अजीब था
हो अजीब तुमको क्या
तुम बस लिखते जाओ

शलभ, गीत ही लिखो
विद्यापति–जयदेव–रवीन्द्र–निराला ही क्यों
अजी त्रिलोचन के सॉनेट में भी
बसती है पद की आत्मा
जो कबीर, तुलसी, मीरा की परंपरा है
सूर–काव्य की धाम–धरा है
वही तुम्हारी, वही तुम्हारी
शलभ, गीत ही लिखो।

तारादत्त 'निर्विरोध'
(14 जनवरी 1939–14 मार्च 2013)

कडुवेपन में

कुछ भी नहीं सुनाई देता
कोलाहल के शहरीपन में,

यह तुम मुझे कहाँ ले आये?
इन जगहों पर उलटे पाँवों
चलना होता
सीधे पाँव मुड़े जाते हैं,
मेरे ही पदचिन्ह दूर तक
मुझसे ही बिछुड़े जाते हैं,

कुछ भी नहीं दिखाई देता
आकृतियों के धुँधलेपन में,
यह तुम मुझे कहाँ ले आये?

हर अगले क्षण
लाशें ढोती हैं जीवन को
अपना-सा कुछ कहीं न मिलता,
चहुँदिस में टँग रहे धुँधलके
कोनों में छिप रहे उजाले
किसी दिशा से सूर्य न उगता
किसी छोर पर चाँद न ढलता,

सबकी प्यास जुड़ी रहती है
अधरों वाले कडुवेपन में,
यह तुम मुझे कहाँ ले आये?

कुमार रवीन्द्र
(10 जून 1940–1 जनवरी 2019)

गीत-गली के वासी

हमें न भायी
जग की माया
हम हैं गीत-गली के वासी

वहाँ, साधुओं
सिर्फ नेह की
बजती है शहनाई
जो लय हमने साधी उस पर
वह है होती नहीं पराई

गीत-गली में ही
काबा है
गीत-गली में ही है कासी

वह दुलराते
हर सूरज को
गीत-गली की हमें कसम है
उसमें जाते ही मिट जाता
हाट-लाट का सारा भ्रम है

वहाँ साँस
जो छवियाँ रचती
होती नहीं कभी वे बासी

कल्पवृक्ष है
उसी गली में
जिसके नीचे देव विराजे
लगते हमें भिखारी सारे
दुनिया के राजे-महाराजे

महिमा
गीत-गली की ऐसी
कभी न रहतीं साँसें प्यासी

ओम प्रभाकर
(5 अगस्त 1941–22 फरवरी 2021)

सुबह हो गयी

सुबह हो गयी
जाग उठे घर आँगन।

बन्द रही सब रात
खुली दीवारें।
हवा हुई जीवन्त
पा कर माँ की मधुर गुहारें।
बहिन ने उठकर
आँचल खोंस कमर में
लीपा चौहा–माँजे बासन।
सुबह हो गयी।
यह कौन रख गया द्वारे
चावल पीले?
किसके हैं ये पाँचों कपड़े
ये अस्त्र–शस्त्र
वल्गाएँ–अश्व हठीले?
ये सूर्यवाह पथ
गुंजित है
डोले हैं कहीं बहुत ऊँचे सिंहासन
सुबह हो गयी।

डॉ. कैलाश गौतम
(8 जनवरी 1944–9 दिसम्बर 2006)

तोड़ते पत्थर

तोड़ते पत्थर
वनस्पतियाँ उगाते दिन
दुबारा फिर नहीं दीखे।

नदियाँ रहीं
लेकिन समय की रेत में
खोती गईं
जंगल हवा होते गये
और बारिशें रोती गईं
पंछियों से घाटियों से
चहचहाते दिन
दुबारा फिर नहीं दीखें।

जो नाव जैसे बाढ़ में थे
फूल जैसे बौर में
कंधे नहीं नारे नहीं
अगुवा हुए हर दौर में
वंशजों की पीठ
खुलकर थपथपाते दिन
दुबारा फिर नहीं दीखे।

ऊबे नहीं भागे नहीं
जमकर लड़े जीते समर
धन्य हैं वे प्राण वे संकल्प
वे हस्ताक्षर
पोंछते हँसकर पसीना
सुर मिलाते दिन
दुबारा फिर नहीं दीखे।

डॉ. इसाक 'अश्क'
(1 जनवरी 1945–26 फरवरी 2016)

जागते रहना

फिर न कर ले कैद कोई
झील की नीली सुरंगों में
शरद के चन्द्रमा को
जागते रहना।

जागते रहना कि
काली रात...
छाई है,
वक्त ने बारूद
विघटन की...
बिछाई है,

फिर न कर दे स्वाह निर्धन
बस्तियों को आग बदले की
प्रहरियों से सीटियाते
खाँसते रहना।

प्यार के पुल
शील के...
तट बंध टूटे हैं,
छद्म से
इंसानियत के...
हाड़ फूटे हैं,

फिर न जाएँ लील जीवन को
घृणा–उन्माद की लहरें
आदमी के भीतरी पशु को निरन्तर
नाथते रहना।

गुरुदत्त अग्रवाल
(वसन्त पंचमी 1945–18 दिसम्बर 2014)

भोला बंजारा

मैं निश्छल, भोला बंजारा
हर कण मेरा ठाकुरद्वारा
मैं पूरा करता रोज सफर
काँधे पर रख सपनों के घर,

जब शिशिरावृत दिन रैन हुए
अतृप्त समीरण का बहाव
हाँफा न कभी मन का सम्बल
हाँ, दिखता था हाँफता अलाव।

पग डिगे भले, पर रुके नहीं
पुनि-पुनि गहते थे गति सत्वर,

चीखती टिटहरी देती थी
जब-जब कोई भी आशंका
वैसे ही रहा जीतता मन
ज्यों राम विजित कर ली लंका।

आनन पर कोई गर्व नहीं
हाँ तृप्ति भरे थे अधराधर,

लहरों पर करता है किलोल
तन जैसे सोन मछलिया का
वैसे ही मन में मुखरित है
एक अनहद नाद बाँसुरिया का।

ये वंशी प्राण-तन्त्रिका है
कोमल, मादल बादल से स्वर,

मैं पूरा करता रोज सफर
काँधे पर रख सपनों के घर...।

कुमार शिव
(11 अक्टूबर 1946–22 मार्च 2021)

ऐसा ही होता आया है

सूरज होता रहा उपेक्षित
जुगनू होते रहे प्रशंसित
अन्धकार के निर्देशन में
ऐसा ही होता आया है।

तड़ित अगर बेहया नहीं है
आँधी में यदि दया नहीं है
ऐसा ही स्वभाव है इनका
इसमें कुछ भी नया नहीं है।

तू क्यों उत्तेजित होता है
अपना आपा क्यों खोता है
सत्ता के टेढ़े आँगन में
ऐसा ही होता आया है।

कुछ बनने से पहले बिगड़े
कुछ फैले तो कुछ हैं सिकुड़े
कुछ के नयन बड़े-छोटे हैं
कुछ के नाक-कान हैं उखड़े।

यह दैनन्दिन व्यथा कथा है
जो दर्शक हैं उन्हें पता है
मेले के टूटे दर्पण में
ऐसा ही होता आया है।

नर्म-नर्म कालीन बिछे हैं
जगह-जगह हाशिये खिंचे हैं
कोई बोल नहीं पाता है
जिसके देखो होंठ भिंचे हैं

तुमको क्यों हो रही निराशा
यह महलों का खेल तमाशा
सदियों से इस लाक्षागृह में
ऐसा ही होता आया है।

डॉ. रामदरश मिश्र
(15 अगस्त 1924)

एक नीम-मंजरी

एक नीम-मंजरी
मेरे आँगन झरी
काँप रहे लोहे के द्वार।

आज गगन मेरे घर झुक गया
भटका-सा मेघ यहाँ रुक गया
रग-रग में थरथरी
सन्नाटा आज री
रहा मुझे नाम ले पुकार।

एक बूँद में समुद्र अँट गया
एक निमिष में समय सिमट गया
वायु-वायु बावरी
किसकी है भाँवरी
साँस-साँस बन रही फुहार।

यतीन्द्रनाथ 'राही'
(31 दिसम्बर 1926)

जीवन

टूटा कितना
आज आदमी
जीवित है
जीवन से हारा।

जीवन
सजा नहीं पूजा है
परम प्राप्ति का
अर्चन-वन्दन
अभिनन्दन है
आराधन है
तुलसीदास-माथे का चन्दन
साम गान है यह सृष्टा का
सृजन-यज्ञ की
प्रथम अर्चिका
जूझ रही जो सतत् तमस से
वह प्रकाश की
प्रखर वर्तिका
जीवन ही तो मुक्ति-गान है
कैसे,
कह देते हो कारा?

महाशून्य की उल्काओं से
घटित प्रणव का प्रथम प्रकम्पन
जीवन ही तो जगती तल का
है अतिगूढ़ सूक्ष्मतम दर्शन
शोध ग्रन्थ है यह अनन्त का
यह अनहद का मौन ध्वनन स्वर
स्वर्गिक सुख है परम प्राप्ति का
बूँद-बूँद अमृत का निर्झर
डूबो-पियो-जिओ तिर जाओ
विष्णु-पदी
कल्याणी धारा।

सम्पर्क : भोपाल (म.प्र.)
मो. 7725004444

डॉ. जीवन शुक्ल
(3 अप्रैल 1932)

तुम पार करोगे

गंधक के रंग की साड़ी में
सिंधुफेन सी काया लेकर।
हे बसंत! कैसे फगुन्हारी
गलियों को तुम पार करोगे।।
इसी एक दिन सोया कुम्भकरण जगता है।
सूनी आँखों को आँखों का बल मिलता है।
एक रंग में तुम्हें देखने से मन ऊबा
इसी लिये मन सतरंगी बन कर खिलता है।
क्षमा याचना को कर जैसे
अधर जुड़े पल्लव की पाँखें।
हे दानी कैसे याचक बन
तृष्णा का उद्धार करोगे।।

बगुलों की उड़ती टोली को किरनों ने
अपने ही रंग में रंग डाला, बचा न पाये।
मन्मथ की धनुही से छूटे तीर कि जैसे
योगी नारद के संयम से जो इठलाये।
शीशे की सी मंजूषा में
झलक रहा यह सेव आस्य ले।
हे सौदागर! कैसे मन के
ग्राहक से इन्कार करोगे।
अतिथि अवज्ञा रहे सही अधरों तक लेकिन
क्योंकि कूल की रेखा है शृंगार लहर का।
प्रतिक्रिया के बिन स्नेह पंगुल, एकाकी
थोड़ा तप कर ही ढलता है सूर्य उमर का।
फूलों के कंदुक के नीचे
जन्मे हुए स्नेह के शिशु में
हे माधव! कैसे ऊपर के
पय से प्राण प्रसार करोगे।।

सम्पर्क : *कन्नौज*
मो. 9415471813

सोम ठाकुर
(5 मार्च 1934)

प्रश्न-वन के देवता

ओ, कँटीले प्रश्न-वन के देवता!
हम रहे हँसते हुए झरने
नदी के मंत्र गुंजन,
घोष सागर के,
कौन हमको रोकता है?
कौन हमको टोकता है?
कौन है जो बाँधता है
एक गुमसुम ताल बनने के लिए
हमको?
दे हमें उस ध्वंस दानव का पता,
ओ, कँटीले प्रश्न-वन के देवता!

ओ, विषैले प्रश्न-वन के देवता!
लो, उठी काली लहर,
जो फेन रचती है
किसी पागल हँसी के,
रक्त जमता जा रहा है धमनियों में
हो गई भाषा अपाहिज,
आज उजला होश खोता जा रहा है,
इस गरल का तू सही परिचय बता,
ओ, विषैले प्रश्न-वन के देवता!

ओ, हठीले प्रश्न-वन के देवता!
अभी हमने चितवनों की गाँठ खोली है,
अभी बाँटे हैं हवा को सबद-कीर्तन,
अज़ानें, प्रार्थनाएँ,
खुले दालान-आँगन में रची
पँचरंग रांगोली,
सींचते हैं हम पसीने से जिसे, वह
कब फलेगी स्वप्न फूलों की लता?
ओ, हठीले प्रश्न-वन के देवता।

सम्पर्क : *आगरा (उ.प्र.)*
मो. 9412255604

सत्यनारायण
(13 सितम्बर 1934)

आदिवासी

बंधु,
हम हैं आदिवासी

सृष्टि ने होंठों रचा जो
वही आदिम राग हैं हम
पर्वतों की कोख से जन्मी
धधकती आग हैं हम
यह सदानीरा नदी
बहती रही, फिर भी पियासी,

हम वही, वन-प्रांतरों को
जो हरापन बाँटते हैं
रास्ते आगे निकल, जब
पर्वतों को काटते हैं
राजमहलों के नहीं, हम
जंगलों के हैं निवासी

हाँ, अपढ़ हैं, भुच्च हैं हम
बेतरह काले-कलूटे
जंगलों के आवरण पर
हम सुनहरे बेल-बूटे
तन भले अपना अमावस
किन्तु, मन है पूर्णमासी

पूछिए मत, युग-युगों से
चल रहे ये सिलसिले हैं
भद्रजन जब भी मिले हैं
फासले रखकर मिले हैं
आज के इस तंत्र में तो
मोहरे हम हैं सियासी।

किशोर काबरा
(26 दिसम्बर 1934)

चंदा की चिड़िया ने

चंदा की चिड़िया ने
किरणों के तिनकों से
घोंसला बनाया जामुनिया की डाली पर।

कोयलिया बहक गई
निमिया के गाँव-गाँव
पायलिया चहक गई
छिमिया के पाँव-पाँव।
खेत के सिवाने पर
गली के मुहाने पर
झूठी अफवाहों-सा फैल गया काँव-काँव।
अम्बुवा की झुरमुट में
बतियाते बरगद ने
हल्की-सी गाली दी दुनिया की ताल पर।

शरमीली सरसों का
पियराया छोर-छोर।
निंदियाती अलसी का
अलसाय पोर-पोर।
गदराई रातों में
कजरारी बातों में
माला के मनके सब बिखर गए ठौर-ठौर।
कथियाये हाथों पर
मिसियाये दाँतों पर
पनवाड़ी बहक गया चुनिया की लाली पर।

बालस्वरूप 'राही'
(16 मई 1936)

गीत नया जन्मा

गूँज भरे हरे चरागाहों से
क्षितिजों की ओर गई राहों से
दूर कहीं

धुँधुआते शहरों के
साँवली दुपहरों के आस-पास
गीत नया जन्मा!

बच्चा है
भीड़ भरी सड़कों पर रेंग-रेंग चलता है
दुर्घटनाओं ही के साये में पलता है!
पहियों का कोलाहल
रेलों की सीटियाँ घबरा कर सुनता है
पटरी पर बिछी हुई नौजवान खुदकुशी
चौंक कर निरखता है।
जाने क्या गुनता है!
लिए हुए कुम्हालए ख्वाबों का
काग़ज़ी गुलाबों का रिक्त हास
गीत नया जन्मा!

नई परिस्थितियों में
नई मन:स्थितियों का दरपन बन जाएगा
गाएगा नहीं किन्तु तनिक गुनगुनाएगा
तितली को पंख से
फूलों को गंध से
लय को मानवता से
मन को संवेदन से जोड़ेगा
लेकिन भावुकता की
रीत गए छन्दों की रूढ़ियाँ
तोड़ेगा!
जीने की शर्तों से जुड़ा हुआ
अँकुराती पीढ़ी का नव-प्रयास
गीत नया जन्मा!

सम्पर्क : *दिल्ली*
मो. 9818557891

मधुकर अष्ठाना
(27 अक्टूबर 1939)

दर्द के लम्बे सफर में

कैद हैं
संवेदनायें
पत्थरों के इस नगर में
आँख मूँदे
चल रहे हम
दर्द के लम्बे सफर में
कालिमा पर
आजकल होने लगी
चूनाकली है
बन्द सदियों से पड़ी
सम्भावनाओं की
गली है

हो रही है
चाँदमारी
मूल्य की सँकरी डगर में

सूर्य को बन्दी बनाने टिड्डियों का दल चला है
जटायू के वंशजों का
रोष भी
उनसे मिला है
बढ़ गया है
आँधियों का ज़ोर
फिर अंतिम पहर में

भीड़ से
खुद को बचाकर
एकला चलना कठिन है
टूटती अनुराग में
विश्वास की लय
दिन-ब-दिन है

नाम के पीयूष के
डूबा हुआ है
जग ज़हर में...।

सम्पर्क : लखनऊ (उ.प्र.)
मो. 9450447579

डॉ. मधुसूदन साहा
(15 जुलाई 1940)

परदेशी दिन

चार पहर ठहर कर पुनः
लौटा परदेशी दिन
सैनिक-सा लाम पर।

सुबह-सुबह आया था
क्षितिजों के गाँव से,
आँखों में दहशत ले
लँगड़ाते पाँव से,

संदेशा आया जब
लौट गया कर्मठ दिन
अपने मुकाम पर।

घर-घर से मिल आया
गली-गली घूम कर,
बच्चों की किलकारी
होंठों से चूम कर,

उतरी जब साँझ सघन
चुपके से पाहुन दिन
लौट आया काम पर।

उसके यूँ आने से
घर-आँगन मुस्काये,
चौका में चूल्हे के
बीते दिन फिर आये,

सँझवाती से पहले
सागर में कूदा दिन
रंगों के नाम पर।

सम्पर्क : *राउरकेला (ओड़िशा)*
मो. 9861564729, 8763907619

मयंक श्रीवास्तव
(11 अप्रैल 1942)

हवा से कह दो

घर में अभी मुखौटों वाले
चेहरे नहीं
हवा से कह दो।

अभी झरोखों से दीवारें
तन से मन से दूर नहीं हैं
हैं मजबूत इरादों वाली
लेकिन दिल से क्रूर नहीं हैं
आपस में मतभेद किसी में
गहरे नहीं
हवा से कह दो।

आने जाने और नाचने
गाने पर प्रतिबंध नहीं है
हाँ उसका सम्मान न होगा
जिसमें कोई गंध नहीं है
खनक नृत्य की सुनने वाले
बहरे नहीं
हवा से कह दो।

आँगन में तुलसी का चौरा
बहुत ठीक है दुखी नहीं है
सबसे बात कर रहा हँसकर
सुगना अन्तर्मुखी नहीं है
अभी खिड़कियाँ खुली हुई हैं
ठहरे नहीं
हवा से कह दो।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*
मो. 9977121221

राधेश्याम शुक्ल
(26 अक्टूबर 1942)

राम-जुहारी के

साथ लिए पहचान
गए दिन
'राम-जुहारी' के

बूढ़े दिवस
खोजते फिरते
सूरज मनमीते,
किरन, मुँडेरे बैठे
साँझ तक
उदासियाँ चीते।

चिढ़ा रहे
काले गुलाब, मुँह
उतरे हैं चेहरे,
पीली चिट्ठी
पीले चावल,
पान-सुपारी के।

रौंद गई
तहजीबी नजरें
वान्या फुलवारी,
हिरना-वन में
उतर पड़े
सरगम के व्यापारी।

हँस-मुरैले
बने 'बहेलिया'
पीपल-पात झरे,
साँप-सँपोले
करते-फिरते
खेल मदारी के।

सम्पर्क : *हिसार (हरियाणा)*
मो. 9466640106

आचार्य भगवत दुबे
(18 अगस्त 1943)

भूखे भील गये

न्याय माँगने, गाँव हमारे
जब तहसील गये
न्यायालय,
खलिहान, खेत, घर
गहने लील गये

लिया कर्ज कुटकी, कोदों की
फसल गई बोई
फलीभूत आशा के होते
लगा रोग कोई
सांड तकादों के
लठैत खेतों में ढील गये

गिरवी रखा अँगूठा
करने बेटी का गौना
छोड़ पढ़ाई
हरवाही करने
निकला छौना
चिन्ताओं के बोझ
सुकोमल काँधे छील गये

कभी न छँट पाया
जीवन से विपदा का कुहरा
राजनीति का इन्हें
बनाया गया सदा मुहरा
दिल्ली
लोककला दिखलाने
भूखे-भील गये।

सम्पर्क : *जबलपुर (म.प्र.)*
मो. 9993400950

डॉ. शान्ति सुमन
(अनंत चतुर्दशी 1944)

शहर की आँखें

सोती नहीं शहर की आँखें
किरचें हैं इतनी
आसमान से बादल की है
जैसे आन ठनी

जिस खिड़की से होता
खुशबू का आना-जाना
बया ने शुरू किया है
फिर से घोंसला बनाना

दिन की खबरों में छपती है
भीतर ताना-तानी

जगह माँगती रहती
अब रोशनी हाथ जोड़े
चैन की जगह न मिली
खुद को ही कितना तोड़े

इन सपनों वाली आँखों की
खोई हीरकनी

छाँहों में शीतल भी
लगता था जो भूल गये
रहती उम्मीद समय में
हम हँसना ही भूल गये

हवाओं के रुखों पर छाई
बदली बहुत घनी।

सम्पर्क : *जमशेदपुर (झारखण्ड)*
मो. 9430917356, 8789390597

अनूप अशेष
(7 अप्रैल 1945)

हाथ कटे हर बार

धान कटे कि गेहूँ कटे
कोदों कटे कि ज्वार
हमें लगे भइया
हम ही कटे
हाथ कटे हर बार।

पानी गिरे कि पसीना गिरे
मोती गिरे कि नगीना गिरे
दु:ख में माटी
गोंद खिलाये

नीम कटे कि बबूल कटे
बेर कटे कि उजार
हमें लगे भइया
हम ही कटे
हाथ कटे हर बार।

रिश्ते बोये कि चेहरे बोये
ऊसर बोये कि गहरे बोये
सभ्यों के अधनंगे
शहर में
गली बोये कि ककहरे बोये।

बस्ती कटे कि नारे कटे
आखर कटे कि अँधियार
हमें लगे भइया
हम ही कटे
हाथ कटे हर बार।

सम्पर्क : *सतना (म.प्र.)*
मो. 9424934472

नचिकेता
(23 अगस्त 1945)

गीत की जरूरत

क्या जरूरत है नहीं अब
गीत गाने की
क्या हुई अनुभूति
कलियों की चटक की है
किसलयों में हुई सिहरन की
सिहक की है
क्या न है चाहत
अधर के मुस्कुराने की

क्या कभी
पहली जुताई की दरक देखी
क्षीरमुख शिशु-होंठ में
होती थिरक देखी
दूब से सीखी
कला क्या लहलहाने की

डबडबाई आँख में क्या
झाँककर देखा
हींड़ता है
आँत को वह बवण्डर देखा
क्या सुनी आवाज
दुख के कसमसाने की।

सम्पर्क : *पटना (बिहार) मो. 9835260441*

हृदयेश्वर
(10 जनवरी 1946)

गोपीचंदर

शहर बने तुम कहाँ भटकते गोपीचंदर!
बच्चों को लौटा दो उनका हरा समंदर!

खेल बंद कबसे बच्चों का
भूल गये वे हँसना!
बाल-सखा फिर तुझ-सा कोई
उन्हें मिला न अपना!
जब तक तुम थे बड़ी मौज थी
नये-नये थे मंजर!

तुम क्या गये (?) गाँव के सारे
सूखे-ताल-तलैया!
घर के भीतर मैना रोती
बाहर बिलखे गइया!
देखो, यह मरघट कैसा पसरा है
सबके अन्दर!

बहुत अकेले हैं ये बच्चे
मिलो कभी अनजाने!
जैसे मिले पतंग हवा से
मिलकर लगे पताने!
नदी तोड़ तटबंध दौड़ती जाये
सूने पाँतर!

कोई केन्द्र रचो फिर ऐसा
जिसमें भुवन समाये!
देह पवन में, पवन अगिन में
आपस में मिल जाये!
सात सुरों के घेरे में बँध नाचे
सकल चराचर!

चुप अधरों को बानी दे दो गोपीचंदर!
बच्चों को लौटा दो उनका हरा समंदर!

सम्पर्क : *बैशाली (बिहार)*
मो. 9801171876

सुभाष वसिष्ठ
(4 नवम्बर 1946)

छलक गई धूप बूँद

छलक गई धूप बूँद
सूरज के जाम से
फैल गये सड़कों पर
शब्द कुछ अनाम से

चिन्तन के जालों सी
उलझीं गलियाँ लेटीं
दर्प-गन्ध ओढ़ रहीं
ना हो जिससे हेटी

कागज के फूल उगे
जीवन आयाम से

चटके कुछ शब्दों को
जोड़े अनगाया मन
छितराये लक्ष्य लिये
फिरते जीवन के प्रण

उलझ रही दृष्टि-डोर
शंकित परिणाम से

बतियाती फर्जों से
रह-रह कर चमक-दमक
घहराकर उफन रही
भीतर की घुटी कसक

जीवन तो रीत गया
जुड़े रहे नाम से।

सम्पर्क : *नई दिल्ली*
मो. 9971839177

डॉ. वीरेन्द्र आस्तिक
(15 जुलाई1947)

सैक्स उतर आया हिंसा पर

बालाओं का करता मर्डर
दुराचार की खबरों से है
पेपर लथपथ
महिलाओं का सड़कों पर है
आंदोलन-रथ

कोमल-कोमल
हाथों में है
गैंगरेप का खूनी बैनर

वहीं सड़क के एक किनारे
आदिम जोड़ी,
पुरुष
प्रकृति की गूँथ रहा है
श्यामल वेणी

दृश्य देखकर
खलिश बढ़ी जो
वही दृगों से
निकली चू कर

सड़कों-भीड़ों के
रव में वह
स्मृति नत्थी
घर आकर भी
चैन मिला क्या
सुलझी गुत्थी

कौन सदी थी
कौन गली थी
आए हैं उस
क्षण को खोकर

सम्पर्क : *कानपुर (उ.प्र.)*
मो. 9415474755

विजय राठौर
(15 मार्च 1950)

कुछ तो बोलें

मुर्दों जैसा
चुप रहना, क्यों
कुछ तो बोलें

सारे सपने टँगे हुए हैं
अलगनियों पर
मुँह खोला तो सिर्फ
निकलता है पीड़ित स्वर
हम अपनी फरियाद
कहाँ पर लेकर जाएँ
राजनीति संक्रमित
उसे सौ डिग्री का ज्वर

अपने भीतर झाँकें
खुद को कम मत
तोलें

कंकर फेंकें ठहरे जल पर
लहर उगाएँ
चौराहों पर आज क्रांति के
कोरस गाएँ
अँधियारों का करना है प्रतिवाद
हमेशा
इसकी जिम्मेदारी पहले
स्वयं उठाएँ

जितने हैं मुँह बंद
सभी के
ताले खोलें

मिलजुल कर सोचें
कोई तो सूत्र मिलेगा
जोर लगाएँगे तो स्थिर
तंत्र हिलेगा
सूने-सूने बागों जैसा
जीवन सूना
नए जोश का पानी दें तो
फूल खिलेगा

आएँगे सब
बात करो
तो मिश्री घोलो।

सम्पर्क : *जाँजगीर जिला-चौवा (छ.ग.)*
मो. 9826115660

डॉ. योगेन्द्र दत्त शर्मा
(30 अगस्त 1950)

याद आया

बहुत अरसे बाद
बचपन याद आया!
शीष पर आशीष वाले हाथ
वचनामृत पिता के
अर्थ-से खुलते हुए
आचार वाली संहिता के
नेह भीगा सूक्तिमय संवाद
सावन याद आया!
खींचती-सी जिन्दगी का ताप
भीगी छुअन माँ की
वत्सला वह छाँह
ममता की बनी प्रतिमूर्ति झाँकी
पोंछता मन का गहन अवसाद
आँगन याद आया!
हँसी, मस्ती, छेड़खानी
ठिठोली भाई-बहन की
खुशबुएँ उड़तीं उमड़ते प्यार की
अंतर्दहन की
उठाता-सा छरहरा उन्माद
दरपन याद आया!
छंद, लय, सुर, ताल
रंगों राग में डूबा हुआ घर
और मन में पनपते अनजान-से
कुछ अनकहे डर
घोलता सुकुमार-सा आस्वाद
सहजन याद आया!

डॉ. ओम प्रकाश सिंह
(6 दिसम्बर 1950)

नदी चुपचाप है

यह नदी चुपचाप है
कुछ बोलती नहीं,

कुछ हवाओं ने लिखे हैं
रेत पर किस्से
जो कभी थे जिन्दगी के
अनुभवी हिस्से,
यह नहीं संवेदनाएँ
खोलती नहीं,

अब नये संघर्ष का
स्वागत लगी करने
लहर की आवृत्तियों को
फिर लगी धरने,
यह नदी तूफान के क्षण
डोलती नहीं,

पर्वतों के मर्म को जो
तोड़ती चले
बस्तियों के दर्द को भी
जोड़ती चले,
यह नदी विष को अधर पर
घोलती नहीं।

सम्पर्क : *रायबरेली (उ.प्र.) मो. 9984412970*

जगदीश पंकज
(10 दिसम्बर 1952)

सामने जब शव पड़े हों

आ गईं विस्थापितों की झुग्गियों तक
अल्प-विकसित सोच की
कल्पित कथाएँ।

व्यर्थ की आश्वस्तियाँ
भीगी हुई हैं
लार टपकाती व्यवस्था के समय से
भोगने को जो विवश
हर त्रासदी को
डर रहे हैं वे किसी अनजान भय से

जिस जगह उपवास चूल्हे कर रहे हों
उस जगह 'सामान्य सब'
कैसे बतायें!

जिस समय पर
बौद्धिक उलझे हुए हों
देश के पर्यावरण की गुत्थियों में
वह समय किस ओर
जाने को खड़ा है
स्वयं अपनी राख लेकर मुट्ठियों में

हैं जहाँ सौन्दर्य के निर्माण शोभित
वहाँ उजड़े चित्र भी
किसको दिखायें!

एक विकसित राष्ट्र सबको दीखता है
चमचमाते दृश्य के
विज्ञापनों में
नागरिक भौंचक खड़ा ही देखता है
मैं कहाँ इन खिलखिलाती
धड़कनों में

सामने जब शव पड़े हों हसरतों के
आँखें-आँसू रोक
कैसे मुस्कुरायें!

सम्पर्क : *ग़ाजियाबाद (उ.प्र.)*
मो. 08860446774, 8851979992

बृजनाथ श्रीवास्तव
(15 अप्रैल 1953)

रिश्ते नदी नाव के

धरती की
खाली कोख हुई
सूख गये हैं कुएँ गाँव के

बहुत दिनों से
कोई बादल
उतरा नहीं हमारे आँगन
पूरे घर को
रसमय कर दे
खुश हो जायें सबके तन-मन
सुबह मुँडेरी
पर कौओं के
मुखर नहीं हैं बोल काँव के

दिन, वे भी
कितने सुंदर थे
जब घन आते थे अषाढ़ में
माघ-पूस में
सिकुड़ गई जो
सावन में थी नदी बाढ़ में
रुक जाते थे
भादों में तब
कुछ दिन रिश्ते नदी नाव के

मौसम ने कुछ
पलटी मारी
या मेघराज नाराज हुए
नदी, झील, पोखर सब सूखे
और प्यास से मरते अँखुए

छेड़छाड़ की
प्रकृति नटी संग
हार गये अब दिवस छाँव के।

दिनेश प्रभात
(6 फरवरी 1955)

और तुम्हारी अलग कहानी

अपना एक अलग किस्सा है
और तुम्हारी अलग कहानी
तुम काटा करते पेड़ों को
हम देते पौधों को पानी

तुम आँधी हो, मिट्टी जैसे
मन का संवेदन क्या समझो
तुमने भींचीं सिर्फ मुट्ठियाँ
बाँहों का बन्धन क्या समझो
तुम्हें शौक बारिश बनने का
अपनी चाहत रेगिस्तानी

देवदार से कैसे मिलती
भला कुंडली इक बरगद की
इधर विरासत सघन छाँव की
उधर वसीयत ऊँचे कद की
प्यार तुम्हारे लिये व्यर्थ है
अपने लिये स्वार्थ बेमानी

आते-जाते हर मौसम का
हम स्वागत करने के आदी
और तुम्हारा लक्ष्य रहा है
केवल सुविधाओं से शादी
इस खाते में सिर्फ समर्थन
उस खाते में आना-कानी

हम पहाड़ हैं, पर्यटकों को
गर्मी में ठंडक देते हैं
हम हैं झोंके सिर्फ प्रेम के
बस दिल पर दस्तक देते हैं
हम करते हैं बस सहायता
तुम करते हो मेहरबानी

तेज हवा में उड़ जाते हैं
सूखे पत्ते, सूखे तिनके
हमें सुनामी देने वाले
साँस नहीं लाये हम गिनके
तुम करते हो राज सुखों पर
हम करते दुख पर सुल्तानी।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*
मो. 9926340108

पूर्णिमा बर्मन
(27 जून 1955)

कोयलिया बोली

शहर की हवाओं में
कैसी आवाजें हैं
लगता है
गाँवों में कोयलिया बोली

नीलापन हँसता है
तारों में
फँसता है
संध्या घर लौट रहा
इक पाखी तकता है
गगन की घटाओं में
कैसी रचनाएँ हैं
लगता है
धरती पर फगुनाई होली

सड़कों पर नीम झरी
मौसम की
उड़ी परी
नई पवन लाई है
मलमल की ये कथरी
धरती के आँगन में
हरियल मनुहारें हैं
लगता है
यादों ने कोई गाँठ खोली...।

सम्पर्क : *लखनऊ (उ.प्र.) मो. 9415427172*

माणिक विश्वकर्मा 'नवरंग'
(7 फरवरी 1955)

चाँदी काट रहे हैं

चाँदी काट रहे हैं मिलकर
गंगा तट पर पंडे

औरों की ख़ातिर होता है
शनि का प्रकोप भारी
ये जब चाहें तब आती है
शुभ-मुहुर्त की बारी
इनको फर्क नहीं पड़ता है
संडे हो या मंडे

मृत्यु लोक से स्वर्गलोग का
सौदा नित करते हैं
ठगते हैं जीवित लोगों को
रोज़ स्वयं मरते हैं
अपनाते हैं मोहित करने
नये-नये हथकंडे

अक्सर जो जाते हैं करने
पूर्व पुरुष का तर्पण
अपना सबकुछ बेच-बाचकर
कर आते हैं अर्पण
नाम गिनाकर सातों भय का
दुहते हैं मुस्तंडे

भेष में ज्ञानी के घाटों पर
मिलते हैं अज्ञानी
आगे आना नहीं चाहते
त्यागी अरु बलिदानी
जिनको भोग लगाना था वो
थोप रहे हैं कंडे।

डॉ. श्याम सनेही लाल शर्मा
(30 अक्टूबर 1955)

बचपन का गाँव

सपने में
आया है
बचपन का गाँव।

पत्थर की
नगरी में
दर्द के पहाड़।
मन-वन में
गूँज रही
शेर की दहाड़।

सपनों के
वृक्षों की
दहक रही छाँव।

शब्द सभी
गूँगे हैं
अर्थ बेजुबान।
धरती पर
रेंग रहे
घायल इंसान।

रेतीला
जीवन है
फिसल रहे पाँव।।

सागर से मिलने को
नदिया बेचैन।
इच्छा की
करवट ले
रोती है रैन।

काँप-काँप
जाती है।
कौओं की काँव।।

हलचल के
पनघट पर
मरघट का वास।
देहरी के
आर-पार
पसरा संत्रास।

सोने की
लंका अब
फेंक रही दाँव।।

सपने में
आया है
बचपन का गाँव।।

सम्पर्क : *फिरोजाबाद 283203 (उ.प्र.)*
मो. 9826630029

डॉ. सतीश चन्द्र शर्मा सुधांशु
(1 मार्च 1956)

छाते तनावों के

चाहता है मन कहीं जाना
किस तरह जायें?
राह में काँटे बिछे हैं
भेदभावों के।
यहाँ नगरों में नहीं मिलता
कहीं सद्भाव।
आम जन में भाव बस बहता
सदा अलगाव।
हम हथेली एक से कैसे
बजाएँ तालियाँ,
हाथ में छाते सभी के
हों तनावों के।
जाति-मजहब के कबीलों में
बँटे सारे।
मृत हुई संवेदना रिश्ते
हुए खारे।
गृहस्थी की ठेलगाड़ी खींच
पाएँ किस तरह,
रास्ते चारों तरफ हों
जब अभावों के।
आम जन के प्रश्न की पुस्तक
किनारे पर पड़ी।
कर्णधारों तलक ने न एक
भी पंक्ति पढ़ी।
चाह तो अभिमन्यु बनने की
सभी की है।
ज्ञान हो न हो व्यूह भेदन
के दाँवों के।।

सम्पर्क : *बिसौली-243720 (बदायूँ)*
मो. 8394034005

श्रीमती मधुप्रसाद
(जनवरी 1956)

चौमासा

अम्बर ने भेजा पुरवा को,
देने जग को आमंत्रण।
आने वाला दूल्हा सावन,
अनुप्राणित धरती दुल्हन।।
पूछ रही हैं कलियाँ वन से,
पागल क्यों घूमे तितली।
हँस-हँस महावृक्ष बतलाए,
अभिमंत्रित इच्छा मचली।।
इन्द्र धनु ही बाँधे सेहरा,
द्वार-चार करता आँगन।
लिए नगाड़े मेघा दल हैं,
बिजली के पाँवों छागल।।
चूड़ा पहनाता है उपवन,
हरियाली रंगती आँचल।।
झरना ताल तलैया पोखर,
करते प्रेमिल संप्रेषण।
पात-पात अभिसिंचित बूँदें,
अलबेली माटी की गंध।
ढोल-मँजीरे बजा गा रही,
कजरी चैती के अनुबंध।।
द्वार-द्वार जैसे शहनाई,
दिशा-दिशा है अनुनादन।
दर रुकाई कितनी अनुरंजित,
बाँध तोड़ती है नदिया।
राग सोहनी की ठुमरी में,
सागर का परिधान सिया।।
युगों-युगों से बहती जाए,
करने को प्रिय के दर्शन।
प्रेमग्रंथ का कठिन ककहरा,
चार मास का चौमासा।
कैसे पढ़ पाएँगी ऋतुएँ
जब उत्सेकी अभिलाषा।।
बढ़ा रही पेंगे तरुणाई,
भावों का उत्कर्ष विलक्षण।।

सम्पर्क : *अहमदाबाद (गुजरात)*
मो. 9558424788

जय चक्रवर्ती
(15 नवम्बर 1958)

न्यू-इण्डिया है ये

एक हाथ में बाइक, दूजे में
मोबाइल है
न्यू-इण्डिया है ये इसका
'लाइफ-स्टाइल' है,

नहीं 'फेस-टू-फेस' कहीं
मिलता कोई अपना
फॉलो होता सिर्फ
फेसबुक पर हरेक सपना
'मेल' और 'मैसेज' में सिमटे
सब रिश्ते-नाते

आभासी-चेहरों पर
आभासी-स्माइल है,

टीवी की आँखों में बसने की
लेकर आशा
सीख रही पीढ़ी
संस्कारों की नूतन भाषा
हेलो, हाय, टाटा,
ओके वाली 'मेमोरी' से
हुई 'डिलीट'
प्रणाम-नमस्ते वाली 'फाइल' है,

चढ़ा मीडिया के कन्धों
बाजार-शिकारी है
शयनकक्ष से पूजाघर तक
इसकी यारी है
गाँव-शहर 'मार्डन' हुए सब
बदल गये चेहरे

जो जितना लकदक
उतनी ऊँची 'प्रोफाइल' है...।

सम्पर्क : *रायबरेली (उ.प्र.)*
मो. 8440486068

रामकिशोर दाहिया
(29 जुलाई 1962)

मुँह में जमे दही

कौन लड़ाता हम दोनों को
इसका पता चले

कील निकालें घुसी बुद्धि की
बिगड़ी बात बने
पीर भले ही घनीभूत हो
छतरी नई तने

जीना हद में नहीं चाहता
रुकना साँस भले

द्वेष-भाव की आग बुझाते
नम होते कुहरे
काहे एक धुरी को घूमे
समझौते दुहरे

नाचें नई धुनों को लेकर
खलता तुम्हें खले

टीस पुरानी उसी द्वेष की
जब-तब उभर रही
चाह दृष्टि कहती है लेकिन।
मुँह में जमे दही

एक गगन का सूरज ऐसा
चढ़कर नहीं ढले

सम्पर्क : *कटनी (म.प्र.), मो. 9752539896*

शीला पांडे
(30 जनवरी 1968)

हम उजाले बेच आए

आँधियों के संग
अँधेरों ने
करी कुछ मंत्रणायें ...
हम उजाले बेच आए

धूप की छाया दिखाकर
सूर्य बनने के हुनर सब
कंकड़ों की हलचलों को
'ह्वेल' गिनने के हुनर सब

सर्दियों संग कोहरों ने
जा निभायी मित्रतायें...
हम दुशाले बेच आए

शाक भाजी में छुपाकर
तामसिक आहार करना
दान पेटी की तिजोरी
में सभी व्यापार भरना

घुन अकालों ने परोसा
अन्न को दीं यान्त्रणाएँ...
हम गुशाले बेच आए

स्वयं को नटराज कहते
नर्तकों की टोलियाँ सब
हाथियों के शीश धारे
गर्दभों की बोलियाँ सब

निज स्वरों के साथ
कानों ने निभायी शत्रुताएँ ...
हम मिसालें बेच आएं।

सम्पर्क : *लखनऊ (उ.प्र.)*
मो. 9935119848 , 9140262314

राजकुमार महोबिया
(2 नवम्बर 1972)

रेशे-रेशे लील गई

मरी धान के
बदरे जैसे
गए दूर
झटकारे हम।

सींच पसीना
माटी साने
बनी नहीं कोई मूरत।
अहसानों के
गल-गुहार पर
बुती बिड़ी पाई सूरत।।

आम गिरेगा...
के आश्वासन
पड़े रहे मुँह
फारे हम।
मरी धान के
बदरे जैसे...।

आशा कलम
गुलाब, हाथ में
काँटे जन्मी, छील गई।
परती किस्मत
विश्वासों के
रेशे-रेशे लील गई।

बहलावों पर
आँख मूँदकर
अपना ही घर
बारे हम।
मरी धान के
बदरे जैसे...।।

बदी मजूरी पर
बखरी के
गोबर-घूरे ढोये हम।
सूरज लाद
कपार रोज ही
आधी रोटी पोए हम।।

कुकुर-बिलारी
जैसे सबके
द्वार गए
दुत्कारे हम।
मरी धान के
बदरे जैसे..।।

घुट्टी भर सुख
के बदले में
थाली भर दुख का कसका।
चिकना-चुपड़ा
लेप बाह्य तो
मुटका मार भितर मसका।।

जहर पगी
मिसरी बालों पर
भेद बिना
मन हारे हम।
मरी धान के
बदरे जैसे..।।

सम्पर्क : *उमरिया (म.प्र.) मो. 9893870190*

डॉ. अरुण तिवारी
(29 अगस्त 1973)

भाइयो-बहनों!

वोट दो, चाहे मरो सब, बात इतनी जान लो,
भाइयो बहनो।।
है अघोरी भूख मेरी बिलबिला सकती नहीं...

आग बखरी में लगी आँगन बुलउवा चल रहा है।
नाचती लँगड़ी बुआ को देख नउआ जल रहा है।।
चौधरी पगड़ी सँभाले, टुन्न होकर, कह रहा है...
भाइयो बहनो।।
आग तो चौपाल का छप्पर जला सकती नहीं।

भेड़िये हैं, मेमनों को कर रहे हैं आज सानी।
लोमड़ी को कम न समझो, भेड़ियों की खास नानी
गाँव भर शमशान करके गिद्ध हँस कर कह रहा है
भाइयो बहनो।।

मुकुट को ये जन-चितायें, कुछ हिला सकती नहीं
गेरुए, नीले, हरे सौ साँप गर्दन कस रहे हैं।
ये, कोरोना, एक से हैं लाश गिन-गिन हँस रहे हैं।।
लाशखोरी कुर्सियों के पाँव चाटें और कहते,
भाइयो बहनो।।
नीति क्या? यदि आपदा अवसर दिला सकती नहीं।

सम्पर्क : कानपुर (उ.प्र.) मो. 8299455530

डॉ. अवनीश सिंह चौहान
(4 जून 1979)

विज्ञापन की चकाचौंध

सुनो ध्यान से
कहता कोई
विज्ञापन के पर्चों से
हम जिसका निर्माण करेंगे
तेरी वही जरूरत होगी
जस-जस सुरसा बदनु बढ़ावा
तस-तस कपि की मूरत होगी

भस उड़ती हो
आँख भरी हो
लेकिन डर मत मिर्चों से

हमें न महँगाई की चिंता
नहीं कि तुम हो भूखे-प्यासे
तुमको मतलब है चीजों से
मतलब हमको है पैसों से

पूरी तुम बाजार उठा लो
उबर न पाओ खर्चों से

बेटा, बेटी औ, पत्नी की
माँगों की आपूर्ति करोगे
चकाचौंध से विज्ञापन की
तुम सब आपस में झगड़ोगे

कार पड़ोसी के घर आई
बच न सकोगे चर्चों से।

सम्पर्क : *मथुरा (उ.प्र.)*
मो. 9456011560

संजीव वर्मा 'सलिल'

नया लिखें

आज नया/इतिहास लिखें हम
अब तक जो बीता सो बीता
अब न आस-घट होगा रीता
अब न साध्य हो स्वार्थ सुभीत
अब न कभी लांछित हो सीता
भोग विलास
न लक्ष्य रहे अब
हया, लाज, परिहास
लिखें हम

रहे न हमको कलश साध्य अब
कर न सकेगी नियति बाध्य अब
स्नेह खेद श्रम हो आराध्य अब
कोशिश होगी सतत् साध्य अब
श्रम-पूँजी का भक्ष्य
न हो अब
शोषक हित खग्रास
लिखें हम

मिलकर काटें तम की कारा
उजियारे के हों पौ बारा
गिर-उठ बढ़कर मैदाँ मारा
दसं दिश गूँजे श्रम जयकारा
पीड़ा सहकर कोशिश लब पर
त्रास दूर कर हास लिखें हम

सम्पर्क : *जबलपुर (म.प्र.)*
मो. 9425183244

विजय वागरी 'विजय'

पश्चिम की आँधी

पश्चिम की/आँधी शहरों से
गाँवों तक आई
जिस दिन से आई
बर्बादी का मौसम लाई

कहाँ गयी?
पहचान हमारी
मर्यादित परिपाटी की
तिनका-तिनका
बिखर गयी
तहजीब हमारी माटी की
गली-गली
बारूद बिछी है
घर-घर कुटिलाई
नैट-चैट,
टी.वी. मोबाइल
का जुनून लादे सिर पर
राम रसोई,
अन्त:पुर तक
विज्ञापन की गिद्ध नजर
लील गयी
सभ्यता हमारी
शुचिता-सच्चाई
ऊँचे-ऊँचे
महल देखकर
झूठी विरुदावलियों के
कितने आज
दुखी हैं पुरखे
सम्प्रति वंशावलियों के
खोज रही
स्वर्णिम अतीत
का वैभव अमराई।

सम्पर्क : *कटनी (म.प्र.)*
मो. 9669251319

नरेन्द्र दीपक

दर्द नंगे पाँव...

पूरे मुहल्ले में यही बस एक चर्चा है,
कल दर्द नंगे पाँव मेरे घर चला आया,

जश्न था घर में, किसी की याद आई थी,
इक पुरानी दास्ताँ फिर छटपटाई थी,
मैं सहम कर यक् ब यक् बाहर निकल आया,
ख़ूबसूरत था समाँ, हल्की जुन्हाई थी,

पीपल तले उससे ज़रा-सी बात क्या करली,
नाराज़ सारा गाँव, मेरे घर चला आया।
फिर भटकने लग गया मेरा पराया मन,
अनमने लगने लगे सब द्वार, घर, आँगन,
एक मद्धम आग सी सुलगी कहीं भीतर,
मैं पिघलने लग गया, बन कर स्वयं ईंधन,

देखते ही देाते सपने बिखरने लग गये,
कुछ इस तरह बिखराव मेरे घर चला आया,

मुश्किल बहुत मुश्किल किसी का टूटकर जुड़ना,
पर कटे पंछी का ज्यों आकाश में उड़ना,
प्यार तो अंधा कि अंधी प्यार गी गलियाँ,
अंधे को कहाँ सूझे कि कब किस मोड़ पर मुड़ना,

प्यार का दुश्मन हुआ सारा जहाँ यारो,
हारा हुआ दाँव मेरे घर चला आया।

सम्पर्क : *भोपाल (म.प्र.)*
मो. 9425011510

सोनी सुगंधा
(5-2-1984)

निहारे अश्रुपूरित नैन!

जाने कब आएँगी खुशियाँ
कब पाएँगे चैन
निहारे अश्रुपूरित दो नैन... !
ना कोई यद्यपि ना ही तथा है
मेरी व्यथा जस राम कथा है
बिन मौसम ही सावन रीता
वन वन सारा जीवन बीता
दिवस अवस ही बीते साथी,
काटे न कटे रैन
निहारे अश्रु पूरित नैन...

चाहत का कुछ मोल नहीं है
कोई मिला दिल खोल नहीं है
जल बिच कब की मीन पियासी
पसरी चारों ओर उदासी
उस तट तड़प रहा मन पागल
इस तट तन बेचैन
निहारे अश्रुपूरित नैन... !

साँसों ने इक आस गढ़ी है
कब आओगे प्यास बढ़ी है
जीवन डगमग डोल रहा है
चुप होकर कुछ बोल रहा है
मौन की भाषा समझोगे कब
कब समझोगे बैन...
निहारे अश्रु भरे दो नैन।

सम्पर्क : *जमशेदपुर (झारखंड)*

डॉ. राज गोस्वामी

सूरज को आने दो

मत बंद करो खिड़की दरवाजे तुम
द्वार खड़े सूरज को आने दो।

आते हैं सब पनघट पर ही
प्यास बुझाने दो।
वो ना जाता पास किसी के
कभी मनाने को।

तुम्हें जगाने आये नारायण
ऐसा शुभ नक्षत्र न जाने दो।

कितना भी चाहो ना बनता
कभी रेत का घर।
कुछ भी तो हल नहीं निकलता
मारो पत्थर सिर।

कोई झूठ की धरे फिरे गठरी
मिथ्या अश्रु बहाये उसे बहाने दो।

जितना जिसके भाग्य लिखा है
उतना मिलता है।
उससे भी ज्यादा मिल जाए
बड़ी सफलता है।

बिन इच्छा के कर्म किये जाओ
फिर जो होना है हो जाने दो।

सम्पर्क : *दतिया (म.प्र.)*
मो. 9229688096

अनामिका सिंह 'अना'

अम्मा की सुध आई

शाम सबेरे शगुन मनाती
खुशियों की परछाईं
अम्मा की सुध आई।

बड़े सिदौसे उठी बुहारे
कचरा कोने-कोने
पलक झपकते भर देती
थी नित्य भूख के दोने

जिसने बचे-खुचे से अक्सर
अपनी भूख मिटाई
अम्मा की सुध आई।

तुलसी चौरे पर मंगल के
रोज चढ़ाए लोटे
चढ़ बैठीं जा उसकी खुशियों
जाने किस परकोटे

किया गौर कब आँखों में थी
जमी पीर की काई
अम्मा की सुध आई।

पूस कटा जो बुने रात-दिन
दो हाथों में फंदे
आठ पहर हर बोझ उठाया
थके नहीं वो कंधे

एक इकाई ने कुनबे की
जोड़े रखी दहाई
अम्मा की सुध आई।

बाँधे रखती थी कोंछे हर
समाधान की चाबी
बनी रही उसके होने से
बाखर द्वार नवाबी

अपढ़ बाँचती मौन पढ़ी थी
जाने कौन पढ़ाई
अम्मा की सुध आई।

सम्पर्क : *फिरोजाबाद (उ.प्र.)*
मो. 9639700081

राहुल शिवाय

गुलाब का कलम

हाथों में
मैंने गुलाब का
कलम रखा है
खोज रहा हूँ
धरती इसको कहाँ रोप दूँ

घर के जिस
कोने में
तुलसी सूख रही है
उस कोने में
यह पोषण
कितना पायेगा
जिस बरगद के
नीचे धूप
नहीं आती है
क्या यह
अपनी बाँह
वहाँ पर लहरायेगा

जहाँ सबों ने
अपना-अपना
हरम रखा है
खोज रहा हूँ
धरती इसको कहाँ रोप दूँ
इस घर में
धरती से ज्यादा
चट्टाने हैं,
क्या इसकी
कोमल जड़ को वे
बढ़ने देंगे
जहाँ रोज
पत्थर पर पत्थर
बोते हैं सब
वहाँ इसे क्या
कोमल मन को
गढ़ने देंगे।

जहाँ हृदय ने
कृत्रिमता का
भरम रखा है
खोज रहा हूँ
धरती इसको कहाँ रोप दूँ

सम्पर्क : *बेगूसराय (बिहार)*
मो. 8240297062

रंजन कुमार झा

हावी है बेचैनी

उत्थानों के पथ में राहें
हैं ढलान की
डगरे के बैगन सी गति है
नौजवान की

डिग्री लेकर हाथों में वह
गाँव शहर बौराता
एक अदद रोजी की खातिर
दिवस रैन टौआता

गहन निराशा में मुँह तकता
आसमान की

काबिल है पर तलवा उसको
नहीं चाटने आता
प्रतिभाओं को पीस रहा है
अब पैसों का जाँता

पग-पग पर उड़ रहीं धज्जियाँ
संविधान की

कभी हताशा में चुनियाता
अवसादों की खैनी
किसी तरह कैरियर बन जाए
हावी है बेचैनी
जीवन की हर घड़ी लगे ज्यों
इम्तिहान की।

सम्पर्क : *बेगूसराय (बिहार)*
मो. 9504809769

गरिमा सक्सेना

झूठी क्रांतियाँ

जी रहा है आज का युग
नित्य कितनी भ्रान्तियाँ

धूप जाकर माँगती है
अब उजाला दीप से
मोतियों ने दम्भ में
कर दी बगावत सीप से
चुन लिये हैं हर किसी ने
मन मुताबिक ध्वज यहाँ
चाहतीं क्या-क्या बदलना
नित्य झूठी क्रांतियाँ

अब विचारों की जमीनें
बँट गयी हैं वर्ग में
वाम, दक्षिण जुड़ गया
हर नाम के उपसर्ग में
मेघ आँखों के यहाँ
परतंत्र होकर घूमते
जा रहे उस ही दिशा में
जिधर अंध आँधियाँ

पुल बनाना छोड़कर हम
खाइयाँ ही गढ़ रहे
वक्त कहना चाहता कुछ
हम अलग कुछ पढ़ रहे
शोर सुनकर शोर करना
बन गई आदत यहाँ

चाहते ऊपर पहुँचना
हम उतरकर सीढ़ियाँ।

सम्पर्क : *बैंगलोर (कर्नाटका)*
मो. 7694928448

डॉ. मंदाकिनी शर्मा

नवगीत कोश

मैंने इस पुस्तक को एक सरसरी दृष्टि से देखा तो मुझे आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी का स्मरण हो आया। आचार्य शुक्ल जी ने – 'वह प्रत्येक मानव स्थिति में अपने को ढालकर उसके अनुरूप भाव का अनुभव करें।' – कहते हुये साहित्यकार के कर्म का निर्धारण किया है और उन्होंने, स्वयं ने अपने साहित्य सृजन के अन्तर्गत इस अवधारणा को प्रमाणित भी किया। डॉ. यायावर जी का 'नवगीत कोश' भी कवि कर्म की इस अवधारणा को पूरा करता है। इस पुस्तक का आद्योपांत अध्ययन करने पर पाठक को एक ही समय में साहित्य की नवगीत परंपरा साथ-साथ समीक्षा और साक्षात्कार जैसी विधाओं का भी सम्यक ज्ञान मिल जाता है।

पाँच खण्डों में विभक्त यह पुस्तक 640 पृष्ठों में नवगीत और नवगीतकारों से पाठक को बहुत ही व्यवस्थित रूप में परिचित करवाती है। डॉ.यायावर का यह श्रम साध्य शोध इस दृष्टि से भी आचार्य शुक्ल को स्मरण करने का हेतु बन जाता है। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के महत्त्वपूर्ण कार्यों में से एक कार्य 'शबद सागर' का निर्माण किया जाना था। इस कार्य को सम्पादित करने में शुक्ल जी ने जिस भूमिका का निर्वहन किया इसे आज भी साहित्यकारों की प्रज्ञा बड़े आदर के साथ स्मरण करती है। शब्द सागर की भूमिका को जिस प्रकार शोधपरक, समीक्षापरक और इतिहासपरक बिंदुओं से संयुक्त कर आचार्य जी ने लिखा ठीक उसी प्रकार डॉ. यायावर जी ने भी 'नवगीतकोश की भूमिका लिखी। पुस्तक का यह प्रस्तावना खण्ड गीत के शब्दार्थ, स्वरूप, परम्परा जैसे आधारभूत तथ्यों का उद्‌घाटन करते हुये हमें नवगीत की संभावना से परिचित करवाता है। गीत और नवगीत के बीच की ऐतिहासिक संधि का यह प्रस्तावना लेख या दीर्घ निबंध न केवल साहित्य अनुरागियों के लिये बल्कि शोध के क्षेत्र में नवोन्मेष के लिये कटिबद्ध परिश्रम की शोधार्थियों के लिये भी बड़ा महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है। 92 शीर्षकों में विभाजित कर डॉ.यायावर जी ने अपनी इस प्रस्तावना में नवगीत के, गीत के साथ, नई कविता के साथ जो तालमेल संबंधी बिंदु हैं उन्हें उभारा है तथा गीत और नई कविता के शिल्पगत सौंदर्य, भाषा लालित्य एवं भावलोक की दृष्टि से नवगीत के साथ विभिन्नता के सारे पहलुओं को भी उजागर किया है। ये कार्य भी आचार्य शुक्ल की हिंदी शब्द सागर की भूमिका जैसा ही है जो बाद में हिंदी साहित्य के इतिहास नाम से एक मील का पत्थर जैसी पहचान बनने में समर्थ हुई। डॉ. स्नेही जी की यह प्रस्तावना भी आगत पीढ़ियों में ऐसी ही पहचान बनायेगी ऐसी (नवगीत के इतिहास के संबंध में) शुभेच्छा है। साहित्य को प्रौद्योगिकी के साथ

संधि करना चाहिये-आज यह विचार हर ओर में स्वर पकड़ रहा है। संभवत: इसी समायानुकूल माँग को ध्यान में रखकर डॉ. यायावर जी ने गीत के आभासी दुनिया में अस्तित्व विकास की सामग्री भी इस प्रस्तावना खण्ड में प्रस्तुत की है। फेसबुक तथा वाट्सप जैसे लोकप्रिय आभासी पटलों पर नवगीत की पाठशाला, गीत, सलिला, गीतकार सूक्तियाँ, नवगीत चर्चा, सजल, सर्जना, संवेदनात्मक आलोक इत्यादि समूह नवगीत को विकासोन्मुखी बनाने हेतु क्रियाशील हैं। इस प्रस्तावना खण्ड के माध्यम से ही साहित्य का अध्ययन करने वाला पाठक वर्ग श्री रामकिशोर दाहिया, डॉ. राकेश सक्सेना, संतोष कुमार, डॉ. अनिल गहलौत, श्री संजीव वर्मा सलिल, संध्या सिरे कल्पना, मनोरमा जैसे नवगीतकारों के नाम और काम से सम्मुख हो पाता है। ये सभी नाम वे नाम हैं जो नवगीत की प्रौद्योगिकी के साथ संगत बनाने के लिये संकल्प क्रियाशील हैं।

पुस्तक के द्वितीय खण्ड को है। उपखण्डों में विभक्त कर डॉ.यायावर जी ने दो भिन्न-भिन्न बिंदुओं से नवगीत संग्रहों का ब्यौरा प्रस्तुत किया है। प्रथम उपखण्ड में एकल नवगीत संग्रह को हिंदी वर्णमाला के अनुरूप व्यवस्थित किया है तथा द्वितीय उपखण्ड में समवेत संग्रहों को वर्णमाला क्रम में दिया है। पुस्तक का द्वितीय खण्ड जब ध्यान से पढ़ा तो डॉ. यायावर के धुनी होने के प्रमाण आँखों के सामने तैरने लगे। 602 नवगीतकारों की पुस्तक का नाम, पृष्ठ संख्या, मूल्य, नवगीतों की संख्या, प्रकाशन वर्ष और प्रकाशक का यथा संभव पूरा-पूरा पता इकट्ठा करना कोई सरल कार्य नहीं है। इसी प्रकार सामूहिक नवगीत संग्रहों ने संग्रहों की अवधारणा बनाने वाले, संकलन, संपादन करने वाले, प्रकाशन वर्ष, पृष्ठ संख्या, सम्मिलित गीतकारों की नाम सूची, प्रकाशक का पता एवं संकलन की विशेष टीप या भूमिका लेखन जैसे बिंदुओं पर एक-साथ काम करना साहित्य की कठिन तपस्या करना जैसा है। यायावर जी ने इस माध्यम से साहित्य का सृजन करने वाले वर्ग तथा उसका प्रकाशन करने वाले वर्ग दोनों का समानांतर सम्मान किया है।

पुस्तक का तृतीय खण्ड भी दो उपखण्डों में विभक्त है- प्रथम में डॉ.यायावर जी ने भारतीय नवगीतकारों का सामान्य परिचय यथा-उपनाम, शिक्षा, जन्मतिथि, जन्मास्थान, व्यवसाय, पुस्तक लेखन संबंधी जानकारी और संपर्क पता एवं क्रमांक को वर्णमाला के अनुरूप व्यवस्थित किया है इसी शैली में दूसरे उपखण्ड को भी प्रवासी नवगीतकारों के संबंध में आकार प्रदान किया गया है। इस बहाने डॉ.यायावर जी ने हिंदी नवगीत के प्रसार को मलेशिया, संयुक्त अरब, अमीरात, कनाडा, अमेरिका और आस्ट्रेलिया तक में खोज लिया है। ये प्रयत्न भारतीयों के लिये इस दृष्टि से भी गौरव का विषय है कि हम संकल्प लेते समय जिस भरतखण्डे, जम्बूदीपे की बात करते हैं वह आज भी प्रकारोत्तर से सत्य है। भारतीय मनीषा या चिंतन की संतति विश्वव्यापी है।

पुस्तक का चतुर्थ खण्ड जो कि नवगीत पर हुये समीक्षा कार्यों की दृष्टि से प्रकाश डालता है। तीन उपखण्डों में विभक्त है। उपखण्ड में यायावर जी ने 903 ऐसे समीक्षा ग्रंथों का विवरण प्रस्तुत किया है जो कि प्रकाशित हो चुके हैं। इस खण्ड के अध्ययन से हमें नवगीत के सशक्त हस्ताक्षर वीरेन्द्र मिश्र, सोम ठाकुर, विष्णु विराट, महेन्द्र भटनागर जी जैसे नवगीतकारों की सृजनधर्मिता और व्यक्तित्व से परिचित होने का अवसर मिला है। उपखण्ड में 75 ऐसे समीक्षा ग्रंथों का उल्लेख है जो अभी अप्रकाशित हैं। इस

खण्ड को डॉ. यायावर जी ने शोधार्थी निर्देशक, विश्वविद्यालय, वर्ष और शोध प्रबंध शीर्षक जैसे बिन्दुओं में व्यवस्थित किया है। उपखण्ड 'स' में 58 ऐसी पत्र पत्रिकाओं का समावेश हुआ है जो नवगीत और गीत के प्रसार में सतत् सहयोग प्रदान कर रही हैं। पत्रिका एवं पत्र के संपादक, अवधि, पता एवं विशेष योगदान को रेखांकित करती हुई सामग्री कोश निर्माता की लगन और कार्य के प्रति समर्पण को व्यक्त करने में पूरी तरह समर्थ है। नवगीत कोश का पंचम खण्ड में 11 प्रश्नों के माध्यम से यायावरजी ने नवगीत लेखक के सशक्त हस्ताक्षर डॉ. श्रीराम परिहार, सोम ठाकुर, इन्हीं पर मधुकर अष्ठाना जी के नवगीत संबंधी चिंतन एवं वैचारिक सामग्री का संतुलित तथा व्यवस्थित लेखा प्रस्तुत किया है। ये सब वर्तमान में नवगीत लेखन कर रहे नवगीतकारों के प्रतिनिधि पूर्वक हैं।

परिशिष्ट के रूप में स्व. राजेन्द्र प्रसाद सिंह जी का पत्र तथा डॉ. बनवीर प्रसाद शर्मा जी का 'नवगीत का उपसंहार' शीर्षक लेख पुस्तक को समुचित निष्कर्ष तक पहुँचने में सहायता प्रदान करता है।

समग्रत: डॉ. रामसनेही लाल शर्मा यायावर जी के 'नवगीत कोश' को आद्योपांत अध्ययन करने पर मेरे अंदर एक सुखद अनुभूति का संचार हुआ। मन सोचकर उमंगित है कि आने वाली पीढ़ियाँ इस एक कोश को अध्ययन करने पर साहित्य की साक्षात्कार जैसी विधा से भी परिचित हो सकेंगी। परिशिष्ट का समावेश शोधकर्त्ताओं को दिशा निर्देश देते हुये संकेत करता है कि किस प्रकार हम विषय विस्तार से बचते हुये अपने शोध से संबंधित सामग्री को संकल्पित कर सकते हैं।

'नवगीत कोश' में एक बात जो डॉ. यायावर जी की असदाशयता प्रकट करती है, वह है कुछ नवगीतकारों के संबंध में (समीक्षा खण्ड के अंतर्गत संपूर्ण जानकारी संभवत: संपर्क सूत्रों के असहयोग के चलते) नहीं उपलब्ध करवा पाये। यथा-वीरेन्द्र मिश्र जी पर केन्द्रित समीक्षा ग्रंथों में यह अनुपस्थिति आकुल करते हैं। फिर भी इस बहुत थोड़ी सी अनुपस्थित सामग्री को यदि अपवाद स्वरूप स्वीकार किया जाये तो संपूर्ण 'नवगीत कोश' अद्वितीय बन रहा है। यह लेखक की अथक साहित्य साधना का प्रियदर्शी स्तंभ है और आगे भी ऐसा ही पुण्य सृजन उनके द्वारा साहित्य जगत के लिये किया जाता रहेगा। इसी शुभ अभिलाषा के साथ डॉ.यायावर को प्रणाम।

सम्पर्क : *ग्वालियर (म.प्र.)*
मो. 7512378567

राजा अवस्थी

है छिपा सूरज कहाँ पर

नवगीत कविता अपनी यात्रा के सातवें दशक में है और इसी अवधि में गद्य कविता ने अपने कई नाम-रूप बदले, किंतु नवगीत कविता अपने इसी नाम और चुनौतियों के साथ अपने यात्रा-पथ पर अग्रसर रही। इस यात्रा में नवगीत कविता ठीक वैसी ही नहीं रही, जैसे वह डॉ. शिव बहादुर सिंह भदौरिया या राजेंद्र प्रसाद सिंह के साथ थी। युग बदला, तो कवि का युगबोध भी बदला। कविता की चुनौतियाँ और जरूरतें भी बदली। कविता को देखने-पढ़ने और समझने का दृष्टिकोण भी इन्हीं बदली हुई चुनौतियों और युगबोध के आधार पर स्थित होता है। गरिमा सक्सेना बिल्कुल युवा नवगीत कवयित्री है। इनका पहला नवगीत कविता संग्रह है छिपा सूरज कहाँ पर अभी हाल ही में आया है। इस संग्रह की कविताओं को भी इसी बदले समकालीन युगबोध, चुनौतियों और उनकी अभिव्यक्ति के आधार पर देखा-परखा जाना चाहिए। 136 पृष्ठों की इस किताब में गरिमा की कुल 53 नवगीत कवितायें संकलित हैं।

'है छिपा सूरज सरज कहाँ पर' की नवगीत कविताओं को पढ़ते हुए, जो एक बात स्पष्टत: समझ आती है, वह यह कि गरिमा सक्सेना सजग रचनाकार हैं और अपने आसपास के जीवन, जीवन-स्थितियों, भाव-संवेदनाओं के प्रति संवेदनशील हैं। यही कारण है कि इनकी कविताओं में ग्राम्य-संवेदना से अटे-पटे दृश्यों के स्मृति चित्र हैं। इन आत्मीय दृश्य-चित्रों में आ चुके और आ रहे बदलाव के दृश्य-चित्र हैं। इस बदलाव के साथ छीजते आत्मीय सम्बन्धों और भीतर तक पसर रहे एकाकीपन व तद्जनित अवसाद के दृश्य है। राजनीति और सत्ता के दोगले चरित्र को अनावृत करने के साथ लगातार अभाव, पीड़ा, संत्रास और उम्मीदों को टूटते देखने को विवश मनुष्य को वे अपनी कविताओं के केन्द्र में रखती हैं। यह सब करते हुए वे जीवन से हरापन गायब होने के बीच समाधान के गीत लिखते हुए समाधान के सूत्र भी देती हैं। उम्मीद और संकल्प का यह स्वर मनुष्य के संकल्प पर कवि के विश्वास को दिखाता है। वे लिखती हैं-

'अँधियारे पर कलम चलाकर/सूरज नया उगायें/उम्मीदों के पंखों को/विस्तृत आकाश थमायें/धूप नहीं लेने देते जो/बरगद के साये/उन्हीं बरगदों की जड़ में हम/जल देते आये/युगों-युगों के इस शोषण की/आओ बदलें रीत।'

गरिमा सक्सेना का कवि मन भारतीय संस्कृति के मूल आधार गाँव से इस तरह जुड़ा है, कि वह गाँव के सुख में सुखी होती हैं। और गाँव के दुख में बेचैन। पारिवारिक सामाजिक समीकरणों के जिस बदलाव की आहट हमें बीसवीं सदी के छठवें दशक से तीव्र हुए औद्योगिकीकरण और उसके कारण गाँव के शहर की ओर पलायन के कारण हमें दिखाई-सुनाई पड़ने लगी थी वह बदलाव आज अपने विकराल रूप में दिखाई पड़ने लगा है। इतना विकराल, कि वह भीतर तक मनुष्य को तोड़ रहा है। खाली कर रहा है। पहले के पलायन में व्यक्ति गाँव लौटना चाहता था, किंतु पलायन के लिए शापित आज का युवा गाँव में पीछे छूट चुके माता-पिता को भी महानगर लाकर अपने पलायन में उन्हें भी शामिल कर लेता है। किंतु, इसी क्रम में उन माता-पिता का भी सब कुछ टूट-छूट जाता है। मुश्किल यह है कि इस यंत्रणा को झेलने के सिवा उनके पास कोई और दूसरा विकल्प बचता नहीं। ऐसी स्थितियाँ गरिमा सक्सेना की नवगीत कविताओं में पूरी आर्द्रता के साथ उतर कर आती हैं। देखें-

'अम्मा आँखों की स्याही से/नया नहीं कुछ लिख पाती है/जब से आई शहर/सुआ-सा/रहता है यह मन पिंजर में/ठहरी हुई नदी-सी अम्मा बस खुद में ही खो जाती है। अम्मा जिसके स्वप्न गाँव में बार-बार अँखुआते थे/शहर हवा के साथ तैर कर/भागे-भागे आते थे/हुए स्वप्न खंडहर पर अम्मा/दीपक रोज जल आती है।'

'है छिपा सूरज कहाँ पर' में संकलित नवगीत कविताओं से गरिमा, जिस सूरज की तलाश में निकली हैं, वह सूरज स्त्री-अस्मिता का भी है और उस अस्मिता को चोट पहुँचाने वाले चेहरें को अनावृत करने वाले और अस्मिता रक्षा के लिए खड़े रहने वाली जीवटता का भी है। पुरुष सत्तात्मक समाज में पूरी ताकत से दखल देती स्त्रियों का स्वर बनकर गरिमा पूरी पुरुष सत्ता को कटघरे में खड़ा कर देती हैं। देखें-

'सिसक रहीं मन की इच्छाएँ/सपने सभी जले/हम बागों के फूल जिन्हें खुद/माली ही मसले/नर-गिद्धों के सम्मुख हम सब/बस मांसल टुकड़े।'

इतना ही नहीं, वह यह भी कहती हैं, कि वह हमीं हैं, जो प्रतिरोध खड़ा कर सकती हैं। वे अपने समकालीन स्त्री-समाज को एक तरह से ललकारते हुए उससे प्रश्न करती हैं, कि इस प्रतिरोध के लिए यदि हम नहीं, तो फिर कौन आएगा?यहीं वे यह भी समझती और कहती हैं, कि हमें तो बस! सत्ता तक पहुँचने के लिए सीढ़ी की तरह इस्तेमाल किया गया है, किंतु अब हमें इसका प्रतिरोध करना है। वे लिखती हैं-

'सत्ता-सुख की पृष्ठभूमि हम/बनकर सिर्फ रहे/प्रश्नों के दावानल में हैं/उत्तर रोज दहे/हम बिन प्रतिरोधों के/अक्षर कौन गढ़े।'

इस तरह हम गरिमा सक्सेना को पूरे विश्वास और साहस के साथ प्रतिरोध के लिए आमंत्रण देते हुए पाते हैं।

'ढूँढ़ते हैं/है छिपा सूरज कहाँ पर/कब तलक हम बरगदों की छाँव में पलते रहेंगे/जुगनुओं को सूर्य कहकर/स्वयं को छलते रहेंगे/चेतते हैं/जड़ों की जकड़न छुड़ाकर। चीखते हैं/आइए संयम भुलाकर। ...तोड़ते हैं/स्वयं पर हावी हुआ डर।'

गरिमा सक्सेना जिस समय और समाज में रह रही हैं, उसके कई-कई चेहरों में एक चेहरा प्रकृति

का मानवकृत विनाश, जीवनदाई, जलस्रोतों, नदियों की दयनीय दशा एवं लगातार प्रदूषित हो रहे समूचे पर्यावरण का है, तो दूसरा चेहरा उन जीवन स्थितियों का भी है, जहाँ सत्य की पूछ परख नहीं है, झूठ ही प्रतिष्ठित किया जा रहा है। जरूरी मुद्दों से आमजन का ध्यान भटकाने के लिए हंगामा खड़ा किया जाता है। लाखों भूखे पेटों के बीच हजारों टन सड़ता हुआ अनाज है। आश्वासन का ऐसा छद्म गढ़ा जाता है, कि सारा जन-मन चुप हो जाता है। ये केवल समाज की ही स्थितियाँ नहीं है, अपितु इनका भोक्ता होने के कारण ये मनुष्य की भी जीवन स्थितियाँ हैं। और इन जीवन स्थितियों को गरिमा पूरी नवता, मौलिकता और आधुनिकता से भरकर कविता में व्यक्त करती हैं। उनकी यह नवता युगबोध से भरी और भाषा के स्तर पर भी दिखाई पड़ती है। उनकी कविताओं में ज्ञानात्मकता संवेदना से सम्पृक्त होकर आती है-

'इस दुनिया को कब भायी है/मन पर कोई क्रीज। जीवन के सच दिखलाते हैं/दाग पड़े गहरे/मगर बने प्रोफाइल पिक्चर/दाग-मुक्त चेहरे/पतझड़ बीता लेकिन मन ने/बदली नहीं कमीज। चटक-मटक कवरों के नीचे/बिकी पुरानी चीज। ...चुप रहना-सहना सिखलाया/ओढ़े रहे कमीज़।'

यद्यपि यहाँ कुछ शब्द हिंदी के नहीं हैं, तथापि इनके प्रयोगों से संप्रेषणीयता बढ़ी हैं। किंतु, इस तरह के प्रयोग अधिक नहीं करना ही ठीक होगा। एक पंक्ति और देखते हैं-

'कैसे मानें सत्य, ट्रेंड में जब जुमला है।' इस तरह के अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग भाषा को विकृत करते हैं। इनसे बचना चाहिए। इस तरह के शब्द प्रयोग तब तक नहीं करना चाहिए, जब तक ऐसा करना अनिवार्य न हो।

हमारे समय का एक बड़ा सच यह है, कि जो हमारा अन्नदाता है उसके बारे में अच्छी नीयत से कोई नहीं सोचता। न वह, जो उसके उगाये अन्न, फल, सब्जी से अपना पेट भरता है और न वह, जो उसकी उपज से अपनी तिजोरी भरता है। उसकी त्रासदी इतनी बड़ी है, कि उसका ठीक-ठीक अनुमान भी नहीं है। वह इसे सह नहीं पा रहा और आत्महत्या जैसे कदम उठा लेता है। गरिमा इस बात को इस तरह कहती हैं-

'इस सूखे में बीज न पनपे/फिर जीवन से ठना युद्ध है। पिछली बार मरा था राजू/हल्कू भी झूला फंदे पर/क्या करता इक तो भूखा था/दूजा कर्जा भी था ऊपर/घायल कंधे मन है व्याकुल/स्वप्न पराजित समय क्रुद्ध हैं।'

गरिमा सक्सेना की नवगीत कविताओं में गाँव बार-बार आता है। उन्नति के नाम पर गाँव की पहचान समझी जाने वाली निश्चल आत्मीयता का खो जाना, आम-पीपल के पेड़ों का कट जाना, हेलमेल की जगह आपसी मनमुटाव, लड़ाई-झगड़े के दृश्य उन्हें क्षुब्ध करते हैं। यह सब अधिकाधिक भौतिक समृद्धि की अंधी लालसा के कारण हो रहा है। तो इस तकनीकी युग या कहें माइक्रो तकनीकी समय में जी रही पीढ़ी के सपनों में रुपये कमाने की लालसा और भौतिक सुविधाओं के उपभोग की भूख ने कब्जा जमा रखा है। फलत: इस पीढ़ी की दिनचर्या ऐसी हो गई है, कि उनकी जिंदगी किसी कैदी की तरह हो गई है। दिन-रात सिर्फ काम! काम! और काम! अपने लिए और अपने संबंधों के लिए वक्त ही नहीं बचता। इस कारण अवसाद जैसी कई समस्याएँ इनके जीवन में आम हैं। गरिमा इस समस्या को बड़ी सहज भाषा और लहजे में कहती हैं-

'दौड़ रहे धन की चाहत में /बने वक्त के बंदी हम। ओले, धूप व बारिश पहली/भूले उन स्वादों को चखना/दिन कैदी ए.सी. कमरों के/कब देखा सूरज का ढलना/पैरों तले सुकून रौंदकर/छूने चले बुलंदी हम। संडे से कुछ वक्त चुरा कर/रिश्तों की करते तुरपाई /जैसे-तैसे जोड़ गोंठ कर/खुशियों की करते भरपाई/अवसादों पर लगा न पाये/फिर भी क्यों पाबंदी हम।'

गरिमा की कविता में आया सत्य अनुभूत सत्य है, इसीलिए वे छोटी-छोटी बातों पर गहराई से और सहजता से लिख पाती हैं। इस अनुभूत सत्य में व्याप्त करुणा का एक और नवगीत देखें-

'दफ्तर के चक्कर काट-काट/टेंशन में रहते बाबूजी। है पता नहीं कुछ फाइल का/हो गए रिटायर साल हुआ/जो हाथ में आए विक्रम के/पेंशन ऐसा बेताल हुआ/नित नये अड़ंगे दुत्कारें/क्या-क्या ना सहते बाबूजी।' इस नवगीत को पढ़ते हुए बरबस परसाई जी की कहानी 'भोलाराम का जीव' साकार हो उठती है।

संघर्षशील समाज भी इस व्यवस्था में निरूपाय होकर अभाव, पीड़ा और संत्रास सहना ही अपनी नियति मान लेता है। 'जितना है उतने में ही बस/मन को समझाना। चुप रह रोज देखते ढहते साहस की दीवार।' हमारे समय में भूख, बेरोजगारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, अन्याय-अत्याचार, पीड़ित किसान, शोषण आदि जितनी समस्यायें हैं, उन सभी को गरिमा अपनी नवगीत कविताओं का विषय बनाती हैं। कलाकार, कवि, सृजनधर्मी मन सदैव लोकमंगल की ही कामना करता है। उसके सृजन का उद्देश्य भी यही होता है। गरिमा सक्सेना भी इसी लोकमंगल की कामना से भरी हुई हैं। तभी तो वे लिखती हैं-

'तेल भरे सबके दीपक हों/छा जाये हर ओर उजाला। सभी वर्ग के लिए खुशी हो/हटे सुखों से दुख का ताला।' और 'कब तक हम दीपक बालेंगे/हमको सूर्य उगाना होगा। पीड़ाओं में प्रतिरोधों का/स्नेहिल लेप लगाना होगा। मन की आँच रहे ना मन में/हमको तन सुलगाना होगा।

इनके नवगीतों की भाषा बिल्कुल आम है। लोक के शब्दों के प्रयोग हैं तो, किन्तु वे भी इस तरह आए हैं कि किसी भी बोली-क्षेत्र के पाठक को अपने ही लगेंगे। वे जिस भाषा को रोज बरतती हैं, उसी में लिखती हैं। उसी में जीती हैं। सूर्य उगाने की अभिलाषी कवयित्री गरिमा सक्सेना का यह है छुपा सूरज कहाँ पर नवगीत कविताओं का संग्रह अपने नवगीतों के कथ्य शिल्प,भंगिमा, लय, प्रवाह, युगबोध व सहज-सरल भाषा के बूते अवश्य ही पढ़ा, गुनगुनाया और सराहा जाएगा, ऐसा मेरा विश्वास है। उन्हें बहुत-बहुत शुभकामनाएँ। बधाई।

सम्पर्क : *कटनी (म.प्र.)*
मो. 9131675401

डॉ. इंदीवर पांडे

सूरज है रूमाल में

शीला पांडे द्वारा संपादित सूरज है रूमाल में सद्य प्रकाशित गीत काव्य का संकलन है। इस संकलन में कुल चालीस कवयित्रियाँ संकलित हैं। शीला पांडे का दावा है कि ये कवयित्रियाँ नवगीत लेखन की दिशा में अग्रसर हैं।

शीला पांडे छान्दस कविता के प्रति समर्पित कवयित्री हैं। इनकी रुचि भारत की 5000 साल पुरानी छान्दस काव्य परंपरा को निरंतर नवीनता की ओर उन्मुख करने की रहती है। इसलिए इनकी रचनाओं में नवगीत के बीज पल्लवित और पुष्पित होते रहते हैं। यह इनकी निष्ठा का ही परिणाम है कि इन्होंने 400 पृष्ठों की यह बृहद पुस्तक संपादित की है। इस पुस्तक के दो भाग परिलक्षित होते हैं जिन्हें आमुख और गीत के वर्गों में रखा गया है। आमुख के खंड में कवियत्री और संपादक शीला पांडे का कहना है गीत ने जब नवगीत स्वरूप में पदार्पण किया उन दिनों से महिलाएँ नवगीत लिख रही हैं जहाँ कुछ महिला कवयित्रियों को नवगीत के बारे में संज्ञान था वहीं कुछ अनुकरण के माध्यम से इस दिशा में आई थीं। संपादिका ने उन महिलाओं को चुना है जिनके लेखन में गीत लीक से हटकर नया होने की ओर अग्रसर हुआ है। इस संकलन में इन्होंने श्रेष्ठ और वरिष्ठ महिला रचनाकारों के साथ बिल्कुल उभरती हुई नई पौध को भी स्थान दिया है। इन सब लोगों का लेखन नवीनता की ओर तो अग्रसर है ही इनकी विशेषता यह है कि यह नवीनता गीत की आत्मा को बिना आहत किए लायी गयी है। संकलन में संकलित पहली कवयित्री अनामिका सिंह अना हैं।

इनकी रचनाओं में व्यंग्य, जीवन की भोगी और झेली हुई अनुभूतियाँ, लोक जीवन की विसंगतियाँ आदि प्रस्तुत की गई हैं तो अरुणा दुबे ने राजनीति की विसंगति को बड़े सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है। उनकी रचनाओं की मुहावरेदारी आकृष्ट करती है-

'सावन के अंधे राजा की हरे काँच की आँखें हैं
जितनी उजली देह कहीं ज्यादा उजली पोशाकें हैं
लोकतंत्र की सुंदर ट्रे में/जनता कटी सुपारी है' - (अरुण दुबे)

संकलन में संकलित यशोधरा राठौर समकालीन नवगीतकारों में युग सापेक्ष दृष्टिबोध रखने वाली नवगीतकार हैं। इनकी रचनाओं में नगर बोध और ग्राम बोध समान रूप से परिलक्षित होता है। इनकी चिन्ता मानवीय मूल्य के खो जाने की है। आंचलिक परिवेश और विशेष तौर से आदिवासी जीवन की अनुभूतियाँ इन्हें प्रभावित करती हैं। आदिवासी पठारों से घरों तक उतरने वाली धूप जितनी आहलादकारी है उतनी ही जीवन के बोध में ऊष्मा का संचार करने वाली है। वनवारी जीवन की चहक इस धूप से शुरू होती है और पहाड़ों से होती हुई जब घर-आँगन में उतरती है तब ऐसा लगता है जैसे वह बिटिया के गालों को चूम रही है। एक चित्र -

'झीलों के सीने में/छिप गुदगुदी लगाती
मँजराई तुलसी से/जी भर कर बतियाती
हरी दूब सी लहक रही है/धूपू सुबह की'
(यशोधरा राठौर)

कवयित्री शहरी या नगरीय विसंगति को उभारने में भी सफलता प्राप्त करती है।

मंजूलता श्रीवास्तव कोमल भावनाओं की कवयित्री हैं गाँव, घर, खेतों की फसलें उन्हें जितना आकृष्ट करती है उतना ही ग्रामीण जीन की विसंगतियाँ छल, छद्म, षड्यंत्र और विश्वासघात सालता है।

राजकुमारी रश्मि वरिष्ठ नवगीतकार हैं इनकी रचनाएँ भी अच्छी बन पड़ी हैं। इनमें नये कथ्य, बिम्बधर्मिता और प्रतीकात्मकता इन्हें एक अच्छा नवगीतकार सिद्ध करती हैं।

मधु शुक्ला मंचों का एक प्रतिष्ठित नाम है इनकी भावनाएँ जितनी कोमल हैं उतनी ही संवेदनशील हैं। बढ़ती हुई पर्यावरण समस्या, जमीन का कम होता जलस्तर जब इन्हें अनुबिद्ध करता है तब वे गा उठती हैं-

'सूखी नदिया, झील पियासी/पानी माँगे ताल
मौसम के डर चढ़कर नाचे/फिर अगिया बेताल'

आगे यह स्थिति कितनी दर्दनाक है जो हमें पानी की दुर्भिक्ष की ओर ढकेल देने वाली है।

इसका एक यथार्थ-

'झुलसे पंख लिए गौरैया/दुबकी घर के कोने
टिके पेड़ से हाँफ रहे हैं/ये बेबस मृगछौने
मरी बिचारी सोन मछरिया/ऐसा पड़ा अकाल'
(मधु शुक्ला)

'मरी बिचारी सोन मछरिया' के प्रतीक द्वारा आम जीवन की विवशता लाचारी और साँस टूट जाने की संभावित प्रक्रिया का अर्थ पूर्ण चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

मालिनी गौतम जीवन के जटिल यथार्थ को गहराई से महसूस करने वाली कवयित्री हैं। गीतों को पारंपरिक लीक से हटाकर उसमें नई प्रावत्ता भरने का अच्छा प्रयास करती हैं। कवयित्री प्रतीकों और बिम्बों के प्रयोग में भी नवीनता लाने का प्रयास करती हैं। गीतों का कथ्य आस-पास के चित्रों और जीवन में रोजमर्रा की घटित होने वाली स्थितियों से उठाती हैं-

'अवसादों की रेल खचाखच/गम से भभक रही
पीड़ा के सिग्नल देखे/आँसू की भीड़ सही
सरे राह दुख के नर्तन/का मंजर आम हुआ'
(मालिनी गौतम)

इनके अतिरिक्त रजनी मोरवाल, रेनू द्विवेदी, मिथिलेश दीक्षित के गीत भी अच्छे बन पड़े हैं। मधु प्रधान रोमांटिक भावों की गीतकार हैं तो ग्रामीण जीवन और उनकी फसलों के मोती पर मन लुभाती हैं। औरतों के दुख दर्द को उघाड़ना उनकी प्रकृति में है लेकिन गाँव की श्रमशील, औरतों का उल्लास उनके रूमानी मन को खूब आकृष्ट करता है-

'भरी बखारी धान कूटती/मन ही मन कुछ गाती धनिया
चंचल लोल किलोलें करते/बछड़ों को दुलराती मुनिया
गली-गली में धूम मचाते/टेसू के पुतले देखे हैं'
(मधु प्रधान)

इस विशद संग्रह में संकलित सभी गीत प्राय: अच्छे बन पड़े हैं। दरअसल गीत सघन अनुभूतियों की संवेदना और उसके मानसिक दबाव से निकलता है। ये अनुभूतियाँ जब फूटती हैं तो शिल्प, पहचान और निकष की सीमाओं को तोड़ देती हैं। इसलिए आंतरिक मनोभावों के उद्दाम उद्वेग ने परिधिजन्य नवगीत की सीमा को लाँघ करके कहीं रूमानी भाव बोध, कहीं लोक जीवन का हर्ष-उल्लास, उसकी विसंगतियाँ, उसकी दर्दनाक आर्थिक स्थिति, नगरीय परिवेश का छल, छद्म, आम आदमी के जीवन की व्यथा कथा तथा जीवन और राजनीति के विद्रूप के साथ ही जीवन के भावुक क्षणों को भी कवयित्रियों ने अभिव्यक्ति दी है।

संकलन की अंतिम कवयित्री शीला पांडे हैं जो इस ग्रंथ की संपादिका हैं। शीला पांडे के गीत बहुरंगी गुलदस्ते की तरह हैं। इनके भीतर जितना माधुर्य है उतनी ही वेदना और टीस। उन्होंने सरल और सहज भाषा में अपने कथ्य को प्रस्तुत किया है। भाषा में मुहावरों के प्रयोग, व्यंग्य, चुभते हुए व्यंग्य उपस्थित करने लगती है। इनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता विसंगतियों के बोध से जीवन के विद्रूप को उपस्थित करना है। पुरा बिम्बों के माध्यम से अभिव्यक्त एक चित्र -

'देवता होंगे तो होंगे/शिव गले के हार हम हैं
विष्णु की शैय्या संभाले/जग नदी पतवार हम हैं

है धतूरे-सी ही फितरत/क्या पता है आदमी को
दक्षिणा दिलवाइये/दर्शन से तरने के दिवस हैं'

शीला पांडे नारी के जीवन और उसकी विसंगति को अभिव्यक्त करने में एक विद्रोही तेवर उपस्थित करती हैं। नारी जवीन की संवेदना को उसके यथार्थको गहराई से आत्मसात करती हैं और उसकी प्रस्तुति बहुत सिधाई और सरलता से प्रस्तुत करती हैं। दरअसल अपनी सारी विसंगतियों को

झेलते हुए, सबसे संघर्ष करते हुए कभी वह माचिस की तीली की सीलन सी लगती है, कभी पंछी सी पिंजरे में बंद दिखती है। फिर भी उसमें अदम्य साहस और सृजन की जिजीविषा होती है–

'ठुम्मक-ठुम्मक कदम बढ़ाती/चलती अपनी चाल में
हिम्मत की लाठी लटकातीं/सूरज है रूमाल में'
(शीला पांडे)

सूरज औरू रूमाल के प्रतीक द्वारा शीला बिल्कुल नये तेवर में बात को बड़ी गहराई से रखती हैं। रूमाल जो इतनी छोटी सी चीज है, उससे मुँह भी नहीं ढका जा सकता, किन्तु सूरज के ताप से झुलसते तन के स्वेद बिंदु को वही झेलता है। औरत की छोटी सी रूमाल केवल साधारण से उपयोग की ही चीज नहीं, बल्कि उसका श्रम और साहस है, जो उसके भीतर की वह उद्दाम जिजीविषा है, जो किसी भी ताप को अपने में समेट सकती हैं, उसे रोक सकती है। शायद इसीलिए उन्होंने संग्रह का नाम सूरज है रूमाल में रखा है जो इस बात का प्रतीक है कि औरत केवल फैशन की डमी ही नहीं है बल्कि फैशन सत्यम शिवम सुंदरम का प्रतीक है। इसलिए औरत के उपयोग की बहुत साधारण सी चीज भी उसकी आंतरिक ऊर्जा का प्रतीक है। जिसके सामने सूरज जैसा जाज्वल्यमान ग्रह भी बौना हो जाता है। संग्रह की सभी कवयित्रियों की कविताएँ ऐसी ही उर्जा का संचार करती हैं।

इस संकलन के माध्यम से शीला ने सचमुच ही सूरज को रूमाल में बाँधा है क्योंकि हिंदी गीत कविता और गीत कविता ही क्यों, समूची कविता के इतिहास में केवल महिलाओं की काव्य ऊर्जा को इस तरह पूरे हिंदुस्तान का प्रतिनिधित्व करने वाले संकलन के रूप में यह पहला प्रयास है। इसलिए कालांतर में इनके प्रयास को मील के पत्थर की तरह याद किया जाएगा।

सम्पर्क : *वाराणसी (उ.प्र.)*
मो. 8707301780

डॉ. मधुर नज्मी

हिन्दी नवगीत का वर्तमान परिदृश्य

गीत अपनी जनबोधी राम-सत्ता में साहित्य का बेशकीमती माध्यम रहा है और आज भी अपनी पुरअसर भावाभिव्यक्ति में कमोवेश शीर्षता को संस्पर्शित कर रहा है। यह बात दीगर है कि उसी गीति-विधा की कोख से जन्मी हिन्दी ग़ज़ल इसकी रंगिमा की साहित्यिक रंगत दे रही है। पत्र-पत्रिकाओं से लगाकर दूरदर्शनी अवसरों और काव्य समारोहों में ग़ज़ल काव्य-रूप की विस्तृति है। नयी कविता ही की तरह आज गीतों में दुरूहता आ गयी है। अतिशय वैचारिकता के चलते आज के गीत और नवगीत 'आम आदमी' में 'खास' आदमी की समझ के परे होते जा रहे हैं। रचनाकार भाषाई संक्रमण के जाल में फँस गया है। रचनाकार की मानसिकता ऐसे मोड़ पर है, जहाँ वह अपना रास्ता स्वयं तय नहीं कर पा रहा है। रचनाकार गुमराही के आलम में यह तय नहीं कर पा रहा है कि आखिर उसके जीवन की एक विधा क्या हो। ऐसे में वह अनेकशः विधाओं में मुँह मारने लगा है। कोई भी रचनाकार एक या दो विधाओं में समर्पित संकल्पित मन से ईमानदारी से, काम कर सकता है। कई-कई विधाएँ उसे उलझा देती हैं। आज अनेक गीतकार अपने लेखन में ग़ज़लमुखी होते जा रहे हैं। नवगीतकार नवगीत का दामन छोड़कर ग़ज़ल जीवन की मुखातिन हुए हैं। नवगीत के अधिवाक्य न्यास को ग़ज़ल में ले आकर ग़ज़ल के शिल्प को दोषमुक्त कर रहे हैं। कुछ नवगीतकारों ने हिन्दी ग़ज़ल को साथ भी लिया है।

नवगीत, गीत का अग्र विकास है- तकरीबन हर अच्छा गीत-ग़ज़ल का अग्रशः विकास है। अनेक गीतों के मुखड़े किसी अच्छी ग़ज़ल का मतला है-अधिसंख्य गीतों को पढ़कर यह धारणा बलवती होती है। उदाहरण के तौर पर एक गीत देवेन्द्र कुमार बंगाली का देखें :-

'एक पेड़ चाँदनी जगाया था आँगने
फूले तो आ जाता एक फूल माँगने।'

डॉ. शम्भुनाथ सिंह के बाद में तादाद में नवगीत ज्यादा लिखे तो गये किन्तु गुणवत्ता में कमतर रहे। उनके साथ के कुछ आज भी नवगीतकार हैं किन्तु उनके लेखन की दिशा नवगीत की नहीं रही। वे एक ही समय ग़ज़लकारों की पंक्ति में भी बने रहने का मोह छोड़ न सके। नवगीत के 'पैटर्न' से अपने को खारिज महसूस करने लगे। शंभुनाथ सिंह, अपनी अस्वस्थता के बावजूद इस नगर से उस नगर तक प्रतिभाओं को तलाशते रहे और उन्हें भरपूर सम्मान देकर प्रकाशित भी किया। 'नवगीत दशक' जो उनके

संपादन में आया, कुछ उनकी जिद के नाते भी नाम समाहित हो गये जो कहीं से भी नवगीतकार नहीं थे कुछ 'श्रेष्ठ' नवगीतकारों को जान बूझकर नवगीत दशक में नहीं रखा गया। एक संपादक के नाते यह डॉ. शंभुनाथ सिंह का अधिकार था। डॉ. शम्भुनाथ ने उन बड़े नवगीतकारों को भी नवगीत दशक में छोड़ दिया जो नामधारी थे। कुछ नवगीतकार जो अपने सुख्यात उपनाम के नाते भी साहित्य में पहचान रखते थे। उनसे उनका उपनाम हटाकर नवगीत दशक और नवगीत अर्द्धशती में शामिल कर लिया। डॉ.उमाशंकर तिवारी जो डी.जी.एस.के पी.जी. कॉलेज में हिन्दी विभाग अध्यक्ष थे, बाद में प्राचार्य पद को सुशोभित किया उनके प्रयास से नवगीत पर मऊ में एक सेमिनार हुआ, जिसमें देश के सुख्यात गीतकार, नवगीतकारों की सह-भागिता रही। आयोजन काफी सफल रहा किन्तु विरोध करने वालों ने यहाँ तक कहा- 'नवगीत कविता की जमीन पर तृतीय कोटि की नागरिकता का नाम है।' किसी ने तो यहाँ तक कहा कि डॉ. शंभुनाथ सिंह स्वमेव रसिक उपनाम से कविता करते रहे हैं, उन्हें क्या अधिकार है कि किसी को उपनाम छोड़ने को बाध्य करें। डॉ. शंभुनाथ सिंह ने नवगीत के लिये जो अवदान दिया है वह साहित्य में अमर है और नवगीत की स्थापना का बुनियादी सूत्र है।

नयी कविता के सूत्रधार अज्ञेय से प्रभावित डॉ. शंभुनाथ सिंह ने नयी कविता भी लिखी थी। 'माध्यम मैं' रेशा-रेशा कविता उनकी नयी कृति उनके लेखन का प्रमाण है। 'नवगीत' पर नयी कविता के प्रभाव से इंकार नहीं किया जा सकता। अज्ञेय के जीवन में नयी कविता काल छितरा में लगी थी किन्तु नवगीत शंभुनाथ जी के बाद उस अवस्था में नहीं रह सका जैसा उनके काल खण्ड में था। डॉ. शंभुनाथ जी के बाद उस अवस्था में नहीं रह सका जैसा उनके काल-खण्ड में था। डॉ. शंभुनाथ सिंह को उनके अनुसार 'खलीफा' संज्ञा से उनकी अनुपस्थिति में विभूषित करते थे। उनके बाद खलीफा बनने की लालसा ने नवगीत का बहुत अहित किया। किसिम-किसिम के वैचारिक आन्दोलन नवगीत के नाम पर सृजनाकृति पाने लगे आयोजन जब भी किसी विधा-विशेष को लेकर हुए हैं। उससे उस विधा का अहित ही हुआ है। मिसाल के तौर पर मार्क्स वादी आंदोलन की स्थितियों-परिस्थितियों को समझा जा सकता है। आन्दोलन तात्कालिक लाभ तो देते हैं किन्तु उनका दूरगामी अभाव समाप्त हो जाता है। साहित्य एक सम्बद्ध कोई भी विचार-धारा बेकार नहीं होती उसको अमल में जाने की कमजोरी से विधा आहत होती है। मॉर्क्सवादी नज़रिया जो भारतीय परिदृश्य और परिवेश में अवतरित हुआ, उसने आम और खास लोगों का दूर-दूर का कोई सरोकार नहीं था। कुछ सरोकार भी था तो वह भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल था। परिणामत: आज पूरे परिदृश्य से ही वह गायब नजर आता है।

उसके अनुयायी कमोबेश आज भी हैं किन्तु उनकी स्थिति 'अकाल में सारस जैसी है। नयी कविता से प्रभावित होकर लिखे गये नवगीत आज भी काफी दूरूह और समझ के परे हैं। छायावादी कविता की तरह के नवगीत आज भी चलन में हैं। कुछ नवगीत में आज भी 'द्रविड़ प्राणायाम' हो रहा है। हिन्दी कविता आज भी छायावादी परिधि से निकल नहीं पायी है। छायावादी कविता का परिवर्तित रूप गीतों नवगीतों में आज भी देखा-परखा जा सकता है। हिन्दी साहित्य में 'अनेकश: वाद' आये। विलुप्त हुए और चले गये किन्तु उसकी प्रभावान्विती ने हिन्दी-उर्दू दोनों ही कविता 'बाद' शैलियों को बल दिया है। समीक्षक भले ही इस पंक्तिकार की इस बात को न माने किन्तु 'छायावाद' के असर से समूचा साहित्य

पुरअसर हुआ है। वादों में सिर्फ छायावाद ही देर तक साहित्य में ठहर सका है। वर्तमान हिन्दी कविता का समूचा परिदृश्य छायावादी रंगिमा से अलग नहीं हो सकता है। सिर्फ छायावाद की भाषाई गरिमा से साहित्य का विराट हिस्सा भरपूर हुआ है। विविध खेमों-शिविरों में बँटी हुई कविता सिर्फ नाराबाजी होकर रह गयी। व्यंग्यकार कविता में लिखने लगे। इस नाराबाजी से कविता की प्रज्ञा अवबाधित हुई है।

नवगीत के प्रचार-प्रसार में सर्वाधिक योगदान इसके रचनाकारों का रहा है क्योंकि नवगीत की समीक्षाएँ भी नवगीतकारों ने ही लिखीं। नवगीत की तात्विकता को नवगीतों के रचयिता समीक्षक जानते भी थे और उनकी मंशा में कोई खोट नहीं थी। घोषित रूप से समीक्षा के लिये जाने-समझे जाने वाले समीक्षकों ने नवगीत जैसी रसगर काव्य विधा को हाशिए पर डाल दिया। डॉ. शंभुनाथ सिंह, डॉ. रामदरश मिश्र, डॉ.वेद प्रकाश अभिताभ, पारसनाथ गोवर्द्धन जैसे जानकार। समीक्षकों ने नवगीत के लिये अपनी समीक्षाओं में अपना श्रम किया। नवगीत के लिये डॉ. देवेन्द्र नाथ शर्मा 'इन्द्र' के भी अवदान को भुलाया नहीं जा सकता। अन्य काव्य विधाओं की तरह नवगीत भी संकटापन्न स्थिति में है। नवगीत का गुजरा हुआ कल लाने के प्रयास वाराणसी के डॉ. राजीव सिंह, डॉ. शंभूनाथ सिंह के सुपुत्र देश के विभिन्न नगरों में आयोजन करके कर रहे हैं किन्तु उन्हें भरपूर सहयोग नहीं मिल पा रहा है। नवगीतकारों की अनमनस्कता इसके मूल कारणों में है। अधिसंख्य नवगीतकारों की लेखकीय दिशाएँ बदल गयी हैं। यह बदलाव भी एक मजबूत कारण है कि नवगीत अपने पूर्व फॉर्म में नहीं आ पा रहा है। अब डॉ. शंभुनाथ सिंह जैसा संगठनिक व्यक्तित्व भी नवगीत में नहीं है। बचे-खुचे नवगीतकारों के अपने-अपने गोवर्द्धन हैं जो पुरोधा बनने की ललक से अँगुलियों पर उठाये हुए हैं। एक गत्वर विधा का इस कदर डूबना या डूबने के हाशिए पर होना साहित्य के लिये सांघातिक है। डॉ. कुमार रवीन्द्र सुविख्यात नवगीतकार के नवगीत की काव्य पंक्तियाँ वरिष्ठ साहित्यकारों पुरखों की स्मृति को ताजा करती हैं:-

तुम पुरखों की पूछ रहे हो
वे घर-घर खुशबू बोते थे।

सम्पर्क : *मऊ (उ.प्र.)*
मो. 9369973494

संजय सिंह यादव

रूमान का प्रतिनिधि संकलन : मेंहदी और महावर

हिन्दी कविता की समृद्ध परम्परा रही है। इस परम्परा में छायावादी युग तक कविता व गीत विधा के लेखकों में कोई अन्तर नहीं रहा। जो कवि गीत लिखते थे उन्होंने कवितायें भी लिखीं। छायावाद के पश्चात् जब तथाकथित मुक्त छंद का प्रयोग करने के बहाने से कविता को छंदविहीनता की ओर अग्रसर किया जाने लगा तो वहाँ से गीत कविता से अलग माना जाने लगा। गीत की प्रमुख विशेषता या गुण उसकी गेयता है जो कि मुक्तछंद की कविताओं में यदि असंभव नहीं तो मुश्किल अवश्य है। छायावाद के पश्चात् हिन्दी साहित्य वादों का साहित्य हो गया। हिन्दी कविता में भी प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, नकेनवाद जैसे अनेक वादों का उदय हुआ। इन वादों से कविता की उन्नति व विकास में चाहे जो परिणाम रहे हों। परन्तु इन सबने एक सम्मिलित घोषणा यह अवश्य कर दी कि आज के समय की वस्तुस्थिति को गीतों के द्वारा नहीं व्यक्त किया जा सकता है। वर्तमान समाज की जटिलताओं को व्यक्त करने में गीत असमर्थ है। इसके अतिरिक्त गीत मर चुका है, गीत मात्र भावुकता का नाम है, गीत में स्व की अनुभूतियाँ ही हैं, जैसे नारे भी उछाले गये।

इन सब स्थितियों को गीतकारों ने चुनौती के रूप में लिया और इस विधा में परम्परागत रूप से चले आ रहे कथ्य, शिल्प, शब्दावली व परिस्थितियों में परिवर्तन करना प्रारम्भ किया। इन्हीं परिवर्तनों ने इसे गीत से नवगीत की ओर उन्मुख कर दिया। नवगीत गीत के क्रमागत विकास प्रक्रिया का निकष है। जिसके अंकुर छायावादी गीत में दिखाई देते हैं और वर्तमान समय में स्वयं एक वटवृक्ष के रूप स्थापित हो गया है।

इस अंकुर को वटवृक्ष बनाने की प्रक्रिया में अनेक नवगीतकारों ने अपने नवगीतों के माध्यम से खाद, पानी दिया है। जिस प्रकार एक पौधे के वृक्ष बनने की प्रक्रिया में सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान उसके शैशवकाल में होता है, उसी प्रकार नवगीत के शैशवकाल में उसको समृद्ध करने वाले नवगीतकारों में एक महत्त्वपूर्ण नाम है-उमाकांत मालवीय।

उमाकांत मालवीय का जन्म मुंबई में हुआ परन्तु उनकी कर्मस्थली इलाहाबाद रही। उनके साहित्य सृजन में इलाहाबाद का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। काव्य-क्षेत्र में मुख्य रूप से मालवीय जी ने नवगीत विधा को अपनाया। उनकी प्रसिद्धि का मुख्य आधार भी उनके नवगीत ही हैं। मेंहदी और महावर को उन्होंने मुख्यतः गीत-कविताओं का संग्रह कहा है। इसका कारण शायद उस समय नवगीत शब्द का

कृति : मेंहदी और महावर, प्रकाशक : साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद, संस्करण-1963

उतना प्रयोग ना होना रहा होगा। वस्तुत: ये गीत-कविताएँ नवगीत की आधारभूमि हैं। प्रस्तुत संकलन उनके साहित्य जीवन की प्रारम्भिक रचनाओं का संकलन है। इसलिए ही इसे डॉ. सुरेश गौतम ने उनके त्रिमुखी भाष्य की सुबह कहा है।'

प्रस्तुत संकलन के गीतों में मुख्य रूप से रूमान से भरे गीत हैं। 'रूमान' शब्द के साथ अपने सम्बन्ध को वह नवगीत दशक में इस प्रकार व्यक्त करते हैं 'रूमान' मेरे निकट मूल्य है। रूमान के अभाव में कविता या किसी कलाकृति का निर्माण तो क्या, जन्म या संभावना ही असंभव है। तथाकथित आधुनिकता के अतिरिक्त मोह में लोग रूमान का नाम सुनकर ही नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं। (सिंह शम्भुनाथ, नवगीत दशक-1, पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1982 पृ. 82) इस नाक-भौं सिकोड़ने का कारण वह यह मानते थे कि रूमान शब्द का अर्थ केवल 'यौन नैतिकता' तक रूढ़ हो जाना ही इसका मुख्य कारण है। बहुधा उनका यह मानना तर्कसंगत भी है। हिन्दी साहित्य में प्रेम के विभिन्न आयामों को दर्शाते हुए अनेक सुन्दर ग्रन्थ लिखे गये हैं। परन्तु तथाकथित आधुनिकता के वाहकों ने इसका अर्थ मात्र देह तक सीमित कर दिया। इसको उन्होंने अपने आगे आने वाले रचना संकलनों यथा 'सुबह रक्त पलाश की' व 'एक चावल नेह-रींधा' में और स्पष्ट कर दिया है और रूमान शब्द के विभिन्न पक्षों को उजागर किया है।

भारतीय वाङ्मय में शृंगार के दो पक्ष रहे हैं, संयोग व वियोग। हिन्दी साहित्य में जितना स्थान संयोग या मिलन को मिला है, उतना ही वियोग या विरह को भी मिला है। प्रस्तुत संकलन में भी इन दोनों पक्षों को समान रूप से व्यक्त किया गया है।

संयोग व मिलन के विभिन्न पक्षों को व्यक्त करते हुए अनेक नवगीत इस संकलन में सम्मिलित हैं। प्रिय के साथ मोहक सम्बन्धों के क्षणों को उद्धृत करता है यह नवगीत-

'अधरों के नव दीप्त कंगूरन' (पृ. 33)

उसी प्रकार जब प्रेमी युगल साथ होता है तो जीवन की विभिन्न क्रियाएँ यथा भूख, नींद समाप्त सी हो जाती है। इन सुखद क्षणों में मनुष्य इस भौतिक संसार से कट सा जाता है। इसी प्रकार की एक रात्रि को कवि पलकों में ही काटने का आह्वान करते हुए कहा रहा है-

'पावस की रात है लुभावनी, आओ इसे पलकों में काट दें' (पृ. 47)

सांसारिक जीवन में अनेक क्षण ऐसे आते हैं जिन्हें मनुष्य याद रखता है। वह जीवन पर्यन्त उन्हें याद करके सुख का अनुभव करता है। इस प्रकार के क्षणों में प्रिय के साथ बिताये क्षणों का अनुपम स्थान होता है। ये यादें सदैव जीवन्त रहती हैं। इनकी ताजगी सदैव बनी रहती है-

'आज भी ताजी, आगे भी रहेगी
समर्पण की गंध भीनी रात' (पृ. 20)

जब प्रिय से मिलन होना है तो ऐसा लगता है कि संसार में समय चक्र बहुत तेजी से घूम रहा है। प्रिय के साथ बिताये क्षण सदैव कम लगते हैं। और प्रिय जब जाने लगता है तो उसे और रुकने का आग्रह समस्त संसार में मिलता है। भारतीय जनमानस में उसे पूर्ण करने के लिए विभिन्न प्रकार की सौगन्धों, उलाहनों व तर्कों का प्रयोग करने का अद्‌भुत प्रचलन रहा है।

'सेज आमन्त्रण सुनो सीमन्तिनी (पृ. 69)'

प्रस्तुत गीत में कवि प्रिय को सलवटों, बालों की लटें जिनमें उसने अँगुलियाँ फिरायी हैं, स्पर्श से उपजे रोमांच की आहटों की सौगन्ध देकर ना जाने का आग्रह कर रहा है। परन्तु यही प्रिय के आने के इन्तजार में ऐसा प्रतीत होता है कि वक्त रुक सा गया है। समय की गति थम गई है। प्रत्येक क्षण वर्षों की भाँति लगता है। एक लम्बी प्रतीक्षा के उपरान्त जब प्रिय सम्मुख आता है तो सभी स्वप्न पूर्ण होते प्रतीत होते हैं –

'अवतरित सम्मुख हुए जब, / चिर प्रतीक्षित स्वप्न आये। (पृ. 52)'

संयोग के समान ही वियोग भी रूमान का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। संयोग के समान ही वियोग के भी अनेक पक्षों को इस संकलन के गीतों के माध्यम से प्रकट किया गया है। प्रिय के विदेश या दूसरे स्थान पर जाने पर उसकी याद आती है। इस विरह पीड़ा में वह अपने प्रिय को ढूँढ़ता रहता है :-

'सुजि साँकल कसमस कस प्राण कसे / ओ अन्तर्व्यापी किस देश बने' (पृ. 25)

विरह का संताप कुछ ऐसा होता है कि मनुष्य प्रिय के बिना स्वयं को अधूरा समझने लगता है। उस समय उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। चाहे वे साँवले बादलों से आच्छादित दिन हों या साँवली रातें हों। यदि प्रिय नहीं है तो सभी सौगातें निरर्थक हैं। यदि प्रिय साथ है तभी उसे बादलों की आवाजें, बारिश की रिमझिम अच्छी लगती है। अन्यथा यह सब केवल शोर है–

'साँवले दिन / साँवली रातें। / तुम नहीं तो कुछ नहीं भाते।' (पृ. 44)

इसी विरह वेदना को व्यक्त करते हुए कहते हैं प्रिय के बिना चारों ओर सन्नाटा बिखरा है। मन की चाहत घायल पड़ी है। क्योंकि उस मन को राहत देना वाला प्रिय साथ नहीं है। यह विरह वेदना के पल काटने और भी मुश्किल हो जाते हैं जब प्रिय की याद आने लगती है। प्रिय के साथ बिताये क्षण याद आते हैं तो ऐसा लगता है कि वह क्षण दुख रहे हैं–

अंकि अनगिन / चुम्बन दुखते।
जब–जब भुजपाशों में / बीते क्षण आ रुकते। (पृ. 41)

रूमान के अतिरिक्त अन्य सम्बन्धों व सामाजिक घटनाओं का भी सुन्दर वर्णन इस संग्रह में मिलता है। भारतीय समाज व संस्कृति में भाई–बहन के रिश्ते पर अनेक प्रसंग हैं। जहाँ एक ओर इसे व्यक्त करने के लिए राखी का त्यौहार है। वहीं कुछ क्षेत्रों में बहनों के बच्चों की शादी में भाई द्वारा भात भरने की परम्परा भी है। जब बहन शादी के पश्चात् ससुराल चली जाती है तो उसके लिए अपने भाईयों से मिलन के क्षणों का वर्णन करते हुए लिखते हैं जब भाई मिलने आते हैं तो बहन कि आँखों से खुशी के आँसू बहने लगते हैं। उसके धैर्य का बाँध टूटकर गंगा–जमुना उसकी आँखों से बहने लगती है–

बहिन घर वीरन आये हैं, / नयन जल भर–भर लाये हैं। (पृ. 42)

इसी प्रकार विभिन्न तीज–त्यौहारों का वर्णन करते सुन्दर गीत इस संकलन में हैं। जहाँ एक ओर वह लक्ष्मी मैया कि पूजा के लिए कहते हुए घर के द्वार उसके लिए खोलने हेतु कह रहे हैं। इस गीत में वह एक नव विवाहित को लक्ष्मी के रूप में व्यक्त करते हुए वर्णन कर रहे हैं। भारतीय समाज में सदैव से ही नवविवाहिता को लक्ष्मी का अवतार माना जाता है। इस लक्ष्मी को घर लाने के लिए पुरखों ने कितने गौरी गणेश की पूजा की है। उसका भी वर्णन इस गीत में है–

खोलो री! बंद द्वार– / लक्ष्मी घर आई हैं। (पृ. 23)

वहीं दूसरी ओर वह होली का वर्णन करते हुए फागुन में ही सावन को ला रहे हैं। जब कवि चित्रकारी की कल्पना पिचकारी और बदली को उसे लाने वाली व्यक्त करते हैं तो उनकी बिम्ब शक्ति का भी आभास होता है। साथ ही होली के त्यौहार में गाये जाने वाले राग-फाग व चारों ओर खेतों में फैली बासंती चुनरी का भी वर्णन है।

साहित्यिक प्रतिमानों पर इस संकलन को विवेचित करने से पूर्व इसके प्राक्कथन- बात बोलेगी, हम नहीं, में उनके द्वारा व्यक्त दो वक्तव्यों को समझना आवश्यक है। वह कहते हैं मैं तथाकथित ऋजुता, स्निग्धता के दुराग्रह के छोर पर श्रृंगार आधिक्य और जनपदीय शब्दों की भरमार से उपजी लिजलिजाहट या चिपचिपाहट का समर्थन मैं नहीं करता। (पृ. 8) वहीं एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं- मेरा व्यक्तिगत मत है कि भाषा को सहज बनाने के लिए प्रचलित शब्दावली के अतिरिक्त जनपदीय बोली के अक्षय कोष का उपयोग होना चाहिए। (पृ. 10)

सतही तौर पर देखने पर यह दोनों कथन विरोधाभासी हैं। परन्तु यदि हम इन्हें गहराई से अध्ययन करें तो इन वाक्यों में ही वह लक्ष्मण रेखा है। जो लोक गीतों को नवगीत से अलग करती है। लोक बोली के शब्दों को प्रयोग करते समय यह सावधानी रखनी चाहिए कि वह ना बन जाये। स्वयं मालवीय जी ने अपने गीतों में-चौथ, विकइयाँ, छइयाँ, पुहुडाकर, पनघट, अक्षतवर्षा आदि शब्दों का प्रयोग किया है परन्तु कहीं भी इस लक्ष्मण रेखा को लाँघा नहीं है।

मालवीय जी ने अपने गीतों में बिम्बों के रूप में अधिकांश में प्रकृति चित्रण का प्रयोग किया है कहीं-कहीं पर उन्होंने पौराणिक आख्यानों से भी पात्रों को लिया है-

'मिली दमयन्ती, / विरहणी नल की' (पृ. 248)

प्रयोग के स्तर पर इन्होंने दो शब्दों, तीन शब्दों वाले गीत भी इस संकलन में हैं। साथ ही कुछ गीत दो व तीन शब्दों के मिश्रण में भी हैं परन्तु अधिकांश गीत लम्बी पंक्तियों से सुसज्जित हैं।

जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है। यह संग्रह मालवीय जी का प्रथम, नवगीत संग्रह था। इसके पश्चात् नवगीत परम्परा को सुदृढ़ व सबल बनाने के क्रम में इनके दो अन्य नवगीत संग्रह 'सुबह रक्त पलाश की' व एक चावल नेह रींधा का भी अमूल्य योगदान हैं। साथ ही नवगीत दशक में संकलित गीत व समय-समय पर उनके द्वारा लिखे गये लेखों ने भी नवगीत को नवगीत बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। नवगीत के विषय में उनका सदैव यह मत रहा है कि -'नवगीत, नयी कविता के विकास-क्रम के समानान्तर काव्य विधा है, नयी कविता विरोधी कोई अभियान नहीं। (सिंह शम्भुनाथ, नवगीत दशक-1 पराग प्रकाशन, दिल्ली, 1982 पृ. 81) वह सदैव मठ, शिविरों के विरोधी रहे हैं। उनके काव्य में भले ही रूमान से ओत-प्रोत गीत अधिक हों परन्तु वह सिर्फ रूमान के कवि नहीं थे। नवगीत विकास यात्रा में उनका योगदान डॉ.सुरेश गौतम के इस वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है- 'आज नवगीत जिस दिशा में अपना आलोक फैला रहा है। उसकी प्रथम किरणों में उमाकान्त मालवीय का नाम सुरक्षित है।' (गौतम सुरेश काक परिदृश्य : अर्द्धशती-खण्ड-2 पृ. 216)

सम्पर्क : *फगवाड़ा (पंजाब)*
मो. 8717084005

डॉ. गंगाप्रसाद 'गुणशेखर'

नवगीत वाङ्मय

नवगीत के समर्थ आलोचक और युवा नवगीतकार अवनीश सिंह चौहान के संपादन में आया हुआ 'नवगीत वाङ्मय' हमारे सामने है। इसमें मुख्य रूप से नौ समकालीन रचनाकारों के नौ-नौ नवगीत संकलित हैं। इसके मुख्य भाग को 'नवरंग' नाम दिया गया है। इस संग्रह का 'समारंभ' शम्भुनाथ सिंह, शिवबहादुर सिंह भदौरिया और राजेंद्र प्रसाद सिंह जैसे नवगीतकारों से किया गया है, जो नवगीत की आधारशिला रखने वालों में अग्रणी रहे हैं। इस संग्रह के अंत में सुप्रसिद्ध गीतकार-संपादक दिनेश सिंह का 20 पृष्ठीय आलोचनात्मक आलेख और अवनीश सिंह चौहान द्वारा लिया गया मधुसूदन साहा का साक्षात्कार नवगीत को समझने में बहुत सहायक है।

इस संग्रह की बहुत बड़ी खासियत मुझे यही लगी कि नवगीतकारों व उनके नवगीतों के संचयन और संकलन का आधार गुणवत्ता है, सत्ता या रिश्ता नहीं। इसमें संपादक न तो कहीं से मोह ग्रस्त दिखता है और न ही किसी खास विचार अथवा भावधारा के प्रति आग्रह या दुराग्रह से बोझिल। इस संग्रह के प्रकाशन का उद्देश्य जानने के पूर्व संपादक का मंतव्य भी जानना ज़रूरी है। संपादक कहता है कि 'आज नवगीत जीवन के सतरंगी अनुभवों को उकेरने की एक सशक्त एवं प्रतिष्ठित विधा है। ऐसी विधा, जो न केवल मानव के सुख-दुख, हर्ष-विषाद को व्यंजित करती है, बल्कि उसकी संघर्ष-गाथा को भी सुमधुर स्वर देती है। कहीं देश-दुनिया की वर्तमान व्यवस्था और उसकी विसंगतियों के प्रति खीझ, आक्रोश, प्रतिरोध का स्वर, तो कहीं जीवन के उत्स की मोहक छवियाँ; कहीं प्रेम, प्रकृति, करुणा का भाव, तो कहीं सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों का जयघोष; कहीं सत्य की खोज, शिवम् की साधना एवं सौंदर्य की उपासना, तो कहीं 'तत् त्वम् असि' का उद्घोष-सब कुछ तो है आज के नवगीत में। किंतु इस सब को जानने-समझने के लिए भावक के पास सम्यक दृष्टि होनी चाहिए, जिससे रचनाकार के 'हृदय-पक्ष' एवं 'बुद्धि-पक्ष' के साथ 'हेतु-पक्ष' का सम्यक दर्शन हो सके और इस प्रकार स्वस्थ, सुखी एवं समृद्ध समाज के निर्माण का सपना साकार हो सके।'

इस संग्रह की सार्थकता को जानने-समझने में इसमें दिए गए आलेख की अपनी एक महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट भूमिका है। नवगीत की अग्रिम पंक्ति के आलोचक दिनेश सिंह का 'गीत की संघर्षशील जयी चेतना' शीर्षक से लिखा गया यह आलेख गीत-नवगीत के सागर में गोते लगाने वालों के लिए प्रकाश-स्तंभ है। इसमें वे स्पष्ट रूप से यह स्वीकारते हुए देखे जाते हैं कि 'आज हिंदी गीत की चर्चा करने का अर्थ है रागबोधी कविता की ऐसी आनुशांगिक रचना की चर्चा करना, जिसके लिए कभी कविता समीक्षकों की नज़रों में समकालीन लेखकीय दायित्वों की चिंता करना बहुत जरूरी नहीं रहा। .... संघर्षशील जयी चेतना गीतों के अर्थांतों से खुद-ब-खुद फूटे और धनात्मक रूप से जीवन की ऊर्जस्वित अर्थ-ध्वनियों से आवेशित कर उसे अपने

पुस्तक : नवगीत वाङ्मय, प्रकाशक : आथर्सप्रेस, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष : 2021
पृष्ठ : 174, मूल्य : रु. 350/, संपादक : अवनीश सिंह चौहान

आप ही सफल कर सके। यह तथ्य इधर के गीतो की सभावना में त्वरा के साथ उभरने लगा है।'

दिनेश सिंह सच ही कहते हैं कि गीतिकाव्य की लंबी यात्रा में बहुत सारी वर्जनाओं सहित भाषा-शिल्प की घेराबंदी टूटी है और नवगीत अपनी त्वरा के साथ उभरने लगा है। मेरी दृष्टि में अब नवगीत गीतिकाव्य परंपरा का समृद्ध रूप होकर भी अतीत के व्यामोह से पूर्णत: मुक्त है। इस मुक्ति की प्रक्रिया में छंद-राग-भाषा और शिल्प आदि के तटबंध टूटे भले हों, पर घाट नष्ट नहीं हुए हैं। शायद इसीलिये नवगीत अपनी जगह से फिसला नहीं है और समय की धड़कनों के साथ धड़कते हुए अपने पथ पर गतिशील है। नवगीत के संदर्भ में अर्नेस्ट फिशर के हवाले से दिनेश सिंह कहते हैं- 'रचना में समकालीनता से आगे की चेतना कितनी है, यह उसका महत्त्वपूर्ण पक्ष है, गीत का संदर्भ उठाया जाए तो हम आज भी आधुनिकता से उत्तर आधुनिकता तक की दौड़ लगा सकते हैं। अपने इसी चरित्र के चलते नवगीत के बिंब और प्रतीक नूतन हुए हैं। उसकी भाषा में तकनीकी दुनिया के शब्द धड़ल्ले से प्रयुक्त हो रहे हैं।'

इस संकलन का आरंभ ही 'समारंभ' खण्ड से है, जिसमें ('नवरंग खण्ड' में भी यही क्रम है) जन्म वर्ष को आधार मानते हुए जिन तीन प्रतिनिधि नवगीतकारों को स्थान दिया गया है, वह समय व समाज सापेक्ष विवेक की दृष्टि से उचित ही है। मेरी निजी राय में उसमें यदि राजेंद्र सिंह को सबसे पहले स्थान दिया जाता तो नवगीत के विकास-क्रम को अधिक महत्त्व मिलता, फिर भी संपादक की अपनी दृष्टि होती है।

शम्भुनाथ सिंह जिस 'समय की शिला पर नवगीत की नवीन भंगिमाएँ रचते हैं, उसका प्रकाशन 1968 ई में हुआ, जबकि नवगीत की इन प्रवृत्तियों के आंशिक दर्शन राजेंद्र प्रसाद सिंह के 'मादिनी' (कविता संग्रह, 1955) में ही हो जाते हैं। आगे चलकर वही इस त्रयी में इन नवीन प्रवृत्तियों और शिल्प वाले गीतों को सबसे पहले सन 1958 ई में 'गीतंगिनी' में नवगीत की संज्ञा से भी अभिहित करते हैं, जबकि डॉ शिवबहादुर सिंह भदौरिया तो ('पुरवा जो डोल गयी', धर्मयुग, 1953 से चर्चा में आकर) 1982 ई में प्रकाशित प्रथम 'नवगीत दशक' (सं.- शम्भुनाथ सिंह) में अपनी संपूर्ण आभा व प्रभा के साथ नवगीत को रचते हुए मिलते हैं।

संपादक ने बड़ी सूझ-बूझ से शम्भुनाथ सिंह के बहुचर्चित नवगीत 'समय की शिला पर मधुर चित्र कितने/ किसी ने बनाए, किसी ने मिटाए' की जगह 'सोन हँसी हँसते हैं लोग' जैसे प्रतिनिधि गीत को लिया है। इसके अलावा जो दो और महत्त्वपूर्ण नवगीत हैं उनमें- 'देश हैं हम' तथा 'रोशनी के लिए' शीर्षक गीत हैं। इसी तरह से शिवबहादुर सिंह भदौरिया के 'पुरवा जो डोल गई', 'नदी का बहना मुझमें हो' तथा 'जी कर देख लिया' जैसे बहुचर्चित नवगीत संग्रह में रखे हैं। राजेंद्र प्रसाद सिंह के नवगीतों में 'अर्थ मेरा क्या', 'बीच में सड़क हुई खत्म' और 'मैं नयी सभ्यता की देही' से अपने समय के प्रतिनिधि नवगीतों को स्थान दिया है। यहाँ (और आगे भी) संपादक बराबर सचेत और सजग है।

इसलिए गीतों के चयन का आधार केवल उनकी या उनके रचयिता की लोकप्रियता नहीं, आपतु प्रातिनिधिक चेतना और जनपक्षधरता तथा उपादेयता है।

वस्तुत: जिनके लिए यह संकलन निकाला गया है, वे 'नवरंग' खंड में हैं और उसके प्रथम नवगीतकार हैं गुलाब सिंह। इनके गीतों में जीवन का राग मुखर है। इस जीवन राग में 'दरवाजे पर गाय (भाती/ घर में रक्षित आग' और 'आँगन में तुलसी का बिरवा/ मन में जीवन राग।' यह सब हमारी

भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि प्रतीक हैं। इस प्रकार यह हर घर को प्रयाग-सा पवित्र तीर्थ बनाना चाहते हैं और उस घर के भीतर ऐसा वातावरण सृजित करना चाहते हैं जहाँ 'छंदों में जीने के सुख संग/ शब्दों की विभुता/ दर्द और दुख भी गाने की/ न्यारी उत्सुकता/ भाव, कल्पना, संवेदन/ ले भीतर बसा प्रयाग।' गुलाब सिंह कल्पनाओं के इस यूटोपिया में खो नहीं जाते, बल्कि वह यथार्थ का भी अवगाहन और अवलोकन विवेकपूर्ण और तर्कसंगत दृष्टि से करते हैं- 'शब्दों के हाथी पर ऊँघता महावत है। गाँव मेरा लाठी और। भैंस की कहावत है।' इसका वह केवल भोक्ता या मूकदृष्टा भर नहीं है, बल्कि इसके विरुद्ध वह विद्रोही स्वर भी अपनाता है। उसके इस विद्रोही स्वर को 'पत्ते' शीर्षक नवगीत में देखा जा सकता है- 'हम तुम्हारे बाग के/ टूटे हुए/ छूटे हुए पत्ते/ जलेंगे तो आग होंगे।'

सृजन में नवता के आग्रही संग्रह के दूसरे नवगीतकार मयंक श्रीवास्तव नवगीत को पारंपरिक गीत का परिष्कृत रूप मानते हैं और साथ ही उसे रूढ़िग्रस्त होने से बचाने वाला भी। इसीलिए वे ठप्पे से कहते हैं - 'अपनेपन की किरण/ कहीं देखी होगी। इसके बाद नयन में आए होंगे हम।.../ सृजन हमारा/ कुछ तो बोल रहा होगा। इसके बाद कथन में आए होंगे हम।' इस सृजन में असल जिंदगी कहीं अलक्षित न रह जाए, इसके लिये भी रचनाकार सजग है- 'आग लगती जा रही है। अन्न-पानी में/ और जलसे हो रहे हैं। राजधानी में।

कवितावादियों की बहस के ठीक बीचोंबीच चुपचाप 'लाल टहनी पर अड़इहुल' के फूल खिलाने वाली शान्ति सुमन ने नाना अवरोधों-विरोधों से गुजरते हुए इस विश्वास के साथ अपने चरण रोपे कि- 'गाँव की पगडंडियों में राजपथ होंगे कई।' वे 'गोबर-माटी सने हाथ की भाषा' को सलीके से पढ़ते हुए 'पसीने' की 'चकमक बूँद पहने साँवली देह' वाले श्रम का सौंदर्य-शास्त्र रचती हैं। वे जीवन को संजीवनी बिंबों से रचना चाहती हैं- 'तुम भाभी के जूड़े का पिन/ भैया की मुस्कान/ पोर-पोर आँगन के/ लाल महावर-सी निखरो।' यह कहकर वे 'खेत में जलती फ़सल-सी जिंदगी को उसकी झुलसन से बचाना चाहती हैं और उसे भीतर बाहर दोनों तरफ़ से रंगीन करना चाहती हैं। इसीलिए वे अपने समय और समाज की वेदना को पूरी ईमानदारी से पढ़ और स्वर दे सकने वाली कवयित्री बन सकी हैं।

नवगीत को पुराने गीत की भाषा-शिल्प और संवेदना की रूढ़ियों से मुक्त करके नवीन कथ्य, लय और शब्द विन्यास से लैस करने की वकालत करने वाले राम सेंगर 'जन से कटे, मगन नभचारी' द्वारा नब्ज देखे जाने का मुखर विरोध करने में संकोच नहीं करते। हवा-पानी पराए होने पर भी वह जीवन-लहर की 'लय' पकड़ने की कवायद करते हैं। सृजन की इस यात्रा में वे भूख को पहले स्थान पर रखना पसंद करते हैं। इस पहल में वे पेट के लिए बाँस पर चढ़ी पुरुष प्रधान समाज की दोयम दर्जे वाली स्त्री जाति की प्रतिनिधि नटी का चित्र उतारना नहीं भूलते- 'चढ़ी बाँस पर नटनी भैया/ अब क्या चूँघट काढ़े।'... 'काम करेगी तभी लगेंगे/ रोटी के गुन्ताई।' इसी भूख के मारे सीमांत किसान की बाढ़ में बही हुई दुनिया भी नवगीतकार की नज़रों से अछूती नहीं है- 'कोठा गिरा/ झमाझम ऐसे मेहा बरसे/ भैंस मर गयी/ मठा-दूध को बच्चे तरसे/ दाने-दाने पर साह ने/ नाम लिखाया है।'

नई कविता ने अस्तित्त्ववाद गले लगाया, पर हिंदी की अन्य विधाएँ (नवगीत विधा को छोड़कर) इससे गुरेज़ करती रहीं। इस दृष्टि से नचिकेता नवगीत के ऐसे तुर्क हैं जिन्होंने नवगीत के भीतर इस गूंज को सुना ही नहीं, डंके की चोट पर कहा भी कि 'अस्तित्ववादी जीवनदृष्टि के प्रभाव और प्रवाह में लिखे

गए गीत ही नवगीत हैं।' सबका अस्तित्व में बने रहना आवश्यक है। कोई भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वह चाहे स्त्री हो या पुरुष। बच्चा हो या बूढ़ा। इसलिए कि बच्चे देश और समाज का भविष्य होते हैं। इसलिए बच्चों के भविष्य का चिंतन भी जरूरी है। बच्चों पर छाए संकट के बादल गीतकार के मन को वैसे ही बहुत मथते हैं जैसे 'कुहरे से ढकी सड़क पर बच्चों को काम पर जाना' समकालीन नई कविता के वरिष्ठ कवि राजेश जोशी को। वे इसे एक हादसा मानते हैं और उसे विवरण की तरह लिखने-पढ़ने वालों को अच्छी नज़र से नहीं देखते। नई कविता के बरक्स हाथ हिलाता खड़ा नवगीत भी वर्ग चेतना के प्रति उतना ही सजग और सचेत है। इसलिए वह समाज को आगाह करना चाहता है- 'खबरदार! खबरदार!/ बच्चे हैं- हँसने-गाने दें। बच्चे हैं तो/ दुनिया में रंगीनी है। बासमती चावल की/ खुशबू भीनी है। इनकी चाहत को/ पाँखें फैलाने दें' और 'नयी सृष्टि का/ बीहन हैं- अँकुराने दें।' नवगीतों में अस्तित्व की ऐसी 'बीहड़ पक्षधरता' बहुत कम देखने को मिलती है। नचिकेता का काव्यकर्म न 'यश से' है और न 'अर्थ' से, वह तो विशुद्ध जनवादी तेवर लिए है। इसलिए वे जैसा देखते हैं, वैसा लिखते हैं- 'महुआ बेच/ अन्न के दाने आयेंगे घर में/ मीठे फल के स्वाद भरेंगे/ हलचल अंतर में/ बेटी के तन पर/ उबटन लहराने वाले हैं।'

प्रस्तुत संग्रह के छठे नवगीतकार वीरेंद्र आस्तिक गीत और नवगीत में काल का अंतर मानते हैं। उनका मानना है कि आस्वाद के स्तर पर गीतों को नवगीतों से अलग किया जा सकता है, जैसे- छायावादी भावबोध का गीत यदि आज रचा जा रहा है, तो वह गीत ही है, नवगीत नहीं है। ये ऐसे समर्थ गीतकार हैं जिन्होंने नवगीत के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण सृजन किया है। इन्होंने 'नायक' शीर्षक गीत में राजनीति, समाज और साहित्य को बड़ी कुशलता से एक साथ रखा है- इसी में दलित समाज है और गरीबी और अमीरी भी है, स्लमडॉग है और बनिया भी। दलित जीवन की विसंगति को रखते हुए वीरेंद्र आस्तिक कहते हैं-

'तुम नायक मेरी कविता के/ जबर बना कर तुमको सीढ़ी/ आसमान पर चढ़ जाते हैं और 'उपन्यास सम्राट बने वो/ जस के तस तुम धनिया-गोबर/ तुमको पढ़-पढ़ हुए यहाँ पर/ बड़े नामवर, बड़े मनीजर। तुम ही तो 'स्लमडाग' तुम्हीं पर। लोग पुरस्कृत हो जाते हैं।' आलोचना कर्म के भीतर व्यापे बंदरबाँट से आस्तिक आहत हैं। इसीलिए 'अंधा बाँटे रेवड़ी/ अपने-अपने को देय' जैसी लोकोक्ति को भलीभाँति समझकर आलोचकों पर तंज करने से भी नहीं चूकते हैं। जिंदगी की रिक्तता में अर्थ भरने के लिए पेड़ों से बतियाने और वनवासी बन जाने की इच्छा वाले कवि के यहाँ मृगछौनों के साथ कुलेल करती प्रकृति है, अगरु मिश्रित हवा भी है। इसीलिए तो कवि कहता है- 'गीत लिखे जीवन भर हमने/ जग को बेहतर करने के/ किंतु प्रपंची जग ने हमको/ अनुभव दिए भटकने के/ भूलें, पलभर दुनियादारी/ देखें, प्रकृति छटाएँ।'

जहाँ बड़े से बड़े व्यक्तित्व विषम परिस्थितियों के डर से समय को बली मानकर उसके सामने धनुष-बाण रख नत-मस्तक हो जाते हैं, वहाँ वीरेंद्र आस्तिक ऐसी परिस्थितियों को धीरज और दूर-दृष्टि से बदल डालने की हिम्मत दिखाते हैं- 'धीरज, दूर-दृष्टि, आशाएँ-7 मन के घोड़ों की क्षमताएँ अन्तर संकल्पों का दीया/ ज्योतित होती हैं इच्छाएँ। हम न समय से अब तक हारे/ हम न अभी हैं मरने वाले।'

'नवगीत' (यह गीत के नये स्वरूप का द्योतक है, जो कथ्य, शिल्प, शब्द और छंद की दृष्टि से पारंपरिक गीतों से अलग है) नाम को सार्थक मानने वाले बुद्धिनाथ मिश्र नवगीत के सरोवर में यह गुनगुनाते हुए बार-बार मिलते हैं कि 'मैं वहीं हूँ जिस जगह पहले कभी था। लोग कोसों दूर आगे बढ़ गए

हैं और 'शाल-वन को पाट, जंगल बेहया के/आदतन मुझ पर तबर्रा पढ़ गए हैं।' शायद इसीलिये अंधे भौतिक विकास की लू से झँवाए समय से कवि मन बहुत आहत है। इस विकास के चलते 'हर दुकान पर कोका-कोला, पेप्सी की बौछार। फिर भी कई दिनों का प्यासा मरा राम औतार/ कोशिश की पर नागफाँस को तोड़ न पाया भाग/ अब भी उँगली पर चुनाव का लगा हुआ है दाग/ भूख-प्यास से मरता कोई?/ यह तो था संजोग।' लुप्त होती अपनी ग्राम्य संस्कृति भी कवि चेतना को कुरेदती हुई मिलती है। इसीलिए वह सत्ता के उन मेलों-ठेलों और खेलों से बहुत नाराज़ है जिनसे खेती-किसानी का नाश हुआ और कर्ज तले दबे किसानों को आत्महत्याएँ करने को विवश होना पड़ा- 'पशु-मेले की जगह/ हुआ ऋण मेलों का उत्सव/ दस में सात चढ़े देवों पर/ हाथ लगा पल्लव/ घर के बीज सड़े कुठलों में/ खेत हुए बंजर/ सत्यानाशी नये बीज ने/ छीन लिया गौरव/ कौन मुनाफा कितना लूटे। ठनी दलालों में।'

'नवगीत अपनी नई भंगिमा, नए शिल्प और लोकचेतना के साथ आधुनिक युगबोध से अनुप्राणित है' को मानने वाले आधुनिक परंपरा के संवाहक कवि डॉ. विनय भदौरिया का बदला हुआ गाँव इन्हें पीड़ा देता है और उन्हें अपने पुरनियों की नेह भरी याद सालती है। इसीलिए ये गाँव से बिना कटे अपनी परंपरा से जुड़े रह सके हैं- 'वैसे पुरखों की देहरी से/ अब भी वही लगाव हमें/ मजबूरी में पड़ा छोड़ना/ भइया अपना गाँव हमें।' विनय भदौरिया के यहाँ शृंगार अपनी संपूर्ण नवीनता के साथ विद्यमान है- 'पार हुए सोलह बसंत हैं। मस्ती-मस्ती में/ अल्हड़ता के किस्से चर्चित/ बस्ती-बस्ती में/ यौवन की मादकता ज्यों/ गदराये महुआ की।' शृंगार से आगे जाते हुए वे आज के सत्य को कुछ इस प्रकार से उद्घाटित करते हैं 'जुगनुओं को मिल रहा सम्मान/ वक्त के सूरज सहे अपमान/ युग को क्या हुआ है।'

'गीत और नवगीत' की 'अपनी-अपनी मठाधीशी' से आहत इस संग्रह के अंतिम नवगीतकार रमाकांत नवगीत को आन्दोलनधर्मी मानते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में वे तर्क भी देते हैं कि 'नवगीत पारंपरिक और नितांत आत्मपरक होते जाते गीत की आँखें खोलने और नये, बदले समय, समाज की ओर देखने का एक आग्रही अभियान था। यह अभियान चला भी नवगीत नाम से। नवगीत में सामाजिक सरोकारों का होना तो ठीक है, पर कइयों ने बिम्ब और प्रतीकों की भरमार को ही नवगीत मान लिया, भले ही ये बिम्ब और प्रतीक अनसुलझे ही रह जाएँ और यदि पहेली बूझने जैसी माथापच्ची से कुछ खुलें भी तो कोई साबुत अर्थ और तथ्य न दे सकें।' कोरी कल्पना की हवाई उड़ान पर कटाक्ष करने वाले इस नवगीतकार के लिए जीवन का यथार्थ बड़ा कटु है- 'हर सुबह उठना/ समय को ताकना फिर/ एक कोल्हू बैल वाला/ हाँकना फिर।' सर्वहारा के टूटे हुए सपनों को रेखांकित करते हुए वे कहते हैं- 'प्यासों के घर पानी/ कैसी बातें करते हो/ पानी का अधिकारी सागर/ पानी की अधिकारी नदियाँ/ रेगिस्तानों के नसीब में/ अब तक आयीं सूखी सदियाँ/ हे गरीब, तुम कल मरते थे। अब भी मरते हो।'

कुलमिलाकर, नवगीत के प्रति संपादक की समर्पण वृत्ति, निष्ठा और उसमें लगा श्रम सराहनीय है। नवगीत के प्रेमियों, अध्येताओं और शोधार्थियों के लिए यह संकलन संग्रहणीय, उपयोगी और स्वागत योग्य है। यदि इसी ईमानदारी से अन्य लोग भी आगे और संग्रह लाएँ तो नवगीत की दशा और दिशा तय करने में सुगमता रहेगी।

सम्पर्क : *सूरत (गुजरात)*
मो. 8000691717

R.N.I.३०९९३/७६

आज़ादी का अमृत महोत्सव

साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल

वर्ष 2021-22 में प्रकाशित पुस्तकें

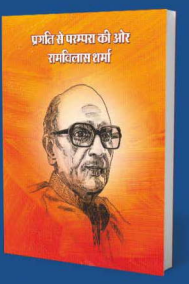

प्रगति से परम्परा की ओर रामविलास शर्मा
संपादक : डॉ. विकास दवे
सह संपादक : प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी
संपादन सहयोग : श्री राकेश शर्मा
मूल्य : रुपये 300/-

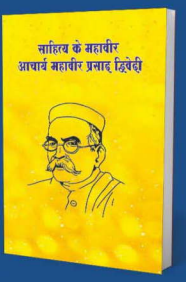

साहित्य के महावीर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी
संपादक : डॉ. विकास दवे
सह संपादक : प्रो. कृष्ण गोपाल मिश्र
संपादन सहयोग : डॉ. मुकेश कुमार मिश्र
मूल्य : रुपये 300/-

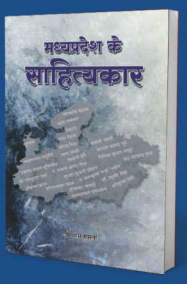

मध्यप्रदेश के साहित्यकार
लेखक : डॉ. प्रेम भारती
प्रधान संपादक : डॉ. विकास दवे
मूल्य : रुपये 200/-

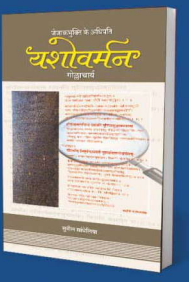

यशोवर्मन गोल्लाचार्य
लेखक : सुनील सांधेलिया
प्रधान संपादक : डॉ. विकास दवे
मूल्य : रुपये 450/-

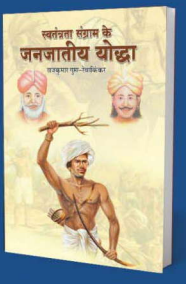

स्वतंत्रता संग्राम के जनजातीय योद्धा
लेखक : राजकुमार गुप्ता-रेवाकिंकर
सह लेखक : डॉ. रश्मि खरया
प्रधान संपादक : डॉ. विकास दवे
मूल्य : रुपये 200/-

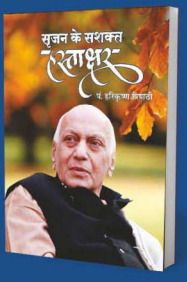

सृजन के सशक्त हस्ताक्षर
लेखक : स्व. पं. हरिकृष्ण त्रिपाठी
प्रधान संपादक : डॉ. विकास दवे
संयोजन : डॉ. अभिजात कृष्ण त्रिपाठी
मूल्य : रुपये 400/-

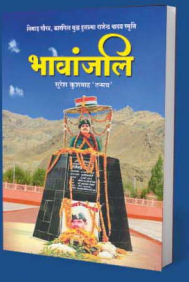

भावांजलि
लेखक : श्री सुरेश कुशवाह 'तन्मय'
प्रधान संपादक : डॉ. विकास दवे
मूल्य : रुपये 150/-

साहित्य अकादमी

मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, बाणगंगा, भोपाल (म.प्र.)